Cat no. 27102
16/01/2013

सुबह के देवता

Subah ka Devta

लेखक

अभयकुमार 'यौधेय'

Abei kumar Abhy

The Indian Publicati
Ambala
Chawni

प्रकाशक

द्दी इण्डियन पब्लिकेशन्स

अम्बाला छावनी

अपनी ओर से

शिवालक की घाटियों में रहने वाले ग्रामीणों की दन्त-कथाओं के अनुसार पता चलता है कि विक्रम की १३ वीं शती के अन्त में वहां पर एक शक्तिशाली गणतंत्र की स्थापना हुई जिसमें किसी भी प्रकार की मुद्रा (Currency) निषिद्ध थी। आदान-प्रदान प्रणाली (Barter System) द्वारा वहां के निवासी अपना कार्य सफलता से चलाते थे।

वह गणतंत्र एक साम्राज्य को समाप्त करके बना था। और १४ वीं शती की समाप्ति पर यवनों द्वारा नष्ट कर दिया गया। खोज करने पर उस गणतंत्र का नाम 'मुक्ति-प्रदेश' भी मिला है। उसका निर्माता था पहले राज्य का महासामन्त तथा उसकी सहायिका थी वहां की राजकुमारी अंजना देवी।

कुछ और छानबीन करने पर शशांक नामक एक सत्यनिष्ठ एवं कर्मठ कवि का भी उल्लेख मिलता है। डा० स्टीफन का कहना है कि साम्राज्य को तोड़कर गणतंत्र बनाने में सहस्रों प्राणियों का रक्त बहा तथा क्रूरता और विभीषिका का नग्न-नृत्य भी वहां पर प्रचुर मात्रा में हुआ।

इसके अतिरिक्त उपन्यास का कथानक ऐतिहासिक है यह जानते हुये भी मैंने प्रस्तुत पुस्तक में कुछ ऐसे पश्चिमी विद्वानों के उद्धरण अपने विषय की पुष्टि के लिये दिये हैं जो उस समय से बहुत बाद इस संसार में आये।

इतिहास के प्रति मैंने जानबूझ कर धृष्टता की है किन्तु उपन्यास आज के युग के लिये है और जिस आदर्श की सिद्धि का प्रयास किया गया है उसे बल देने के लिये मैंने यह अन्याय किया है। अधिकतर पात्र भी कल्पित हैं किन्तु पाठकों को उपन्यास निःसंदेह रुचिकर प्रतीत होगा।

—अभयकुमार यौधेय

भूमिका

श्री यौधेय का नाम हिन्दी कथा प्रेमियों के लिए नया नहीं है। उनकी कृति का परिचय मैं समझता हूं, स्मृति से ही हो जाना चाहिये था--परन्तु, वह एक संक्रान्ति-कालीन लेखक हैं। और संक्रान्ति-काल के लेखक को नित्य नव-चेतनाओं के आलोड़न में निरन्तर अपनी स्थिति परिवर्तित करनी पड़ती है। इस भांति वह कोण ही नहीं बदलता, दृष्टिकोण भी बदलता है। जब मान्यताएं बन रही होती हैं, तो चारों ओर सब कुछ नया नया रहता है, और युग की यही नवीनता साहित्य-कार के हृदय में घर कर लेती है। इस लिए कहें कि वह भी प्रति पल नया ही रहता है। नई समस्या, नई चेतना, नव्य स्फूर्ति तथा नवीन बल से विजय करने के लिए वह अपने अस्त्र बदला करता है। अतः आश्चर्य नहीं कि उसकी कृतियों में एकरूपता, समरसता व ऋजुता का अभाव दृष्टिगोचर हो। मैं इसे गुण भी नहीं मानता। यदि लेखक को अपने युग का प्रतिनिधित्व करना है तो उसमें परिवर्तन ही वांच्छनीय है। फिर विगत काल के लेखकों की अपेक्षा आज के कलाकार का कार्य यों भी कठिन है। उसे ढले ढलाये चेहरे जिन में सर्वदेशीय अनुरूपता रहती है, आज नहीं मिलते। वर्तमान संघर्ष जिस अनुपात में प्रकृति को बदलता है उसी अनुपात में वह आकृति भी बदल डालता है। आजकल नए नए चरित्र सम्मुख आते हैं, नई नई घटना। इनसे पहचान करना और इनकी चित्र कृति उपस्थित करना सहज नहीं जैसा पहले कभी था। इसके लिए जीवन प्रवाह का अध्ययन चाहिए और अध्ययन भी बंधे बंधाये विज्ञान के नियमों के अनुसार नहीं, क्योंकि समाज सम्बन्धी अनुसन्धान किसी प्रयोगशाला में प्राप्त भौतिक मानों

के अनुसार नहीं होते । अतः जीवन के प्रति सहृदयता और सहानुभूति ऐसे अध्ययन के लिए अपेक्षित है ।

श्री 'यौधेय' कथाकार और कवि दोनों हैं । और कवि में हृदय तथा अनुभूति तत्व की प्रधानता रहती ही है । अतः यह स्वीकार करने में कठिनाई न होनी चाहिये कि उन्होंने हमारी वर्तित समस्याओं को ठीक समझा है, ठीक ठीक पहिचाना है, तथा उनकी पूर्तियां देने में हृदय और मस्तिष्क का योग बैठा कर घोर परिश्रम किया है । उनके चरित्रों में यह कर्मठता विद्यमान है । दयालु चौधरी और शशांक विशेष रूप से इसके उदाहरण हैं। नारी पुरुष का अर्धांग मानी गई है । किन्तु अंजना आज कल की उक्ति के अनुसार कोमल अर्धांग ही नहीं अपितु श्रेष्ठ कोमल अर्धांग है । वह पुरुष के कौतूहल को जगाकर उसका उचित समाधान देने वाली शक्ति है । कोमल अंजना कठोर कर्म की प्रेरक है । नारी का यह रूप सचमुच आकर्षक और श्रद्धा समर्पण के योग्य है --'मनुज का हृदय अन्तरिक्ष के विस्तार से नापा जाना चाहिये......' ऐसी उदात्त भावना यदि मनुष्य मात्र का भाग हो तो संसार में किस बात का अभाव रह सकता है । फिर अंजना ही के शब्दों में इससे, 'हमारा भविष्य निःसंदेह उज्ज्वल होगा ।' ऐसे ही चरित्र जीवन की जटिल पगडण्डियों पर ज्योति-शलाका लिए भविष्य का मार्ग दर्शन करेंगे । मेरी यह निर्भ्रान्त आस्था है । इसी में कृती की सिद्धि है ।

घटना और चरित्र का तस्वीर और चौखटे जैसा साथ है । तस्वीर सुन्दर अवश्य होती है परन्तु उस सौन्दर्य की रक्षा और उसे ओप देने का कार्य चौखटे का है । इसी लिये किसी अच्छे उपन्यास को सहज ही यह कह सकना कि वह घटना प्रधान है अथवा चरित्र प्रधान कुछ सरल बात नहीं है । सफल लेखक जहां चरित्रों का विकास करने में अपना कौशल प्रकट करता है वहां वह घटनाओं को भी कौतूहल

और प्रवाह की ऐसी परिपाटी में वर्णन करता है कि कथा के अन्त तक पाठक की रुचि तो बनी रहती है, साथ ही अनेक स्थलों पर वह श्वास रोककर यह सोचने लग जाता है—अब क्या ?

'सुबह के देवता' के लेखक को यह कौशल प्राप्त है।

मेरा विश्वास है कि इस उपन्यास के पाठकों को इसमें उपयोगिता और मनोरंजन का समानुपातिक मिश्रण मिलेगा और यह हमारे रुग्ण समाज के लिए एक जीवनप्रद रसायन सिद्ध होगा।

मेरठ

कृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र'
हिन्दी विभाग, मेरठ कालिज

सुबह के देवता

अमावस्या के अन्धकार में मनुष्य ठोकरें खा खा कर सचेत हो गया। अन्धकार उसे अपनी पूर्ण शक्ति द्वारा दबा रहा था; उसने साहस किया। अपनी समस्त शक्ति और बुद्धि से काम लेकर ऊपर को उछला तो तमिस्त्रा-पट फट गया, वह देदीप्यमान सूर्य की भांति दीख पड़ा; ...

उसके नवोदय की झलक प्राची पर पड़ी; वह भी लाल हो गई। किसी ने कहा कि उसे जागृत मानव से प्यार हो गया और प्रथम मिलन में लजा कर लाल हो गई, पर यथार्थवादी ने उसे नवोत्साह और नवोदय के रंग से रञ्जित कहा।

गिरि शृङ्खलाओं के बीचों बीच भुजंगप्रयात मार्ग दूर तक जा निकलता था। पौह फटने को थी कि एक पथिक चुपचाप उस पर चला जा रहा था। कुछ देर चलने के पश्चात् वह अचानक रुका, कुछ क्षण इधर उधर देखा फिर सड़क छोड़ कर नीचे की ओर चल दिया। कोई एक फर्लाङ्ग नीचे जाकर उसे एक झरना दिखाई दिया। जल-प्रवाह तीव्र था। उसे आगे बढ़ने को मार्ग न मिला। वह पीछे लौट कर दूर एक चट्टान पर जा खड़ा हुआ। इतने में प्राची की गोद में से सूर्य ने अपना मुंह निकाला। उसकी पहली किरणें उस पर पड़ीं; सुन्दर गौरवर्ण सुगठित शरीर, लम्बे बाल, मोटी मोटी आंखें, अंग प्रत्यंग से जैसे रस झर रहा था। फटे पुराने चिथड़ों से लिपटा हुआ वह पथिक एक सुन्दर युवती थी; नाम था उसका अंजना। आकृति और साधारण व्यक्तित्व से वह एक अच्छे घर की देवी प्रतीत होती थी; पर उसको इस प्रकार फटे पुराने चिथड़ों में लिपटी देख कर एकाएक निर्णय कर देना कठिन हो जाता यदि पीछे से एक घुड़ सवार उस के पास न आ पहुँचता। घुड़ सवार ने घोड़े से उतर कर उसे पुकारा—

"राजकुमारी जी !"

"तुम लौट जाओ सामन्त ! अंजना के लिये राज महलों में कुछ

शेष नहीं रह गया। मेरा सर्वस्व इन्हीं पर्वत-श्रेणियों में कहीं खो गया है। मैं जब तक उसे किसी भी रूप में न पा लूंगी वापिस न लौटंगी।"

"परन्तु राजकुमारी जी ! आप निश्चय क्यों नहीं कर लेतीं कि आपके पिता जी इस संसार में नहीं हैं।"

"महासामन्त ! पिता जी का भौतिक अस्तित्व भले ही न हो पर उनकी आत्मा अमर है। उनके वाक्य अभी तक मेरे कानों में गूंज रहे हैं। मुझे उन्हें किसी भी रूप में एक बार पाना है। आप जानते हैं वह मेरे मात्र पिता ही न थे, गुरु भी थे। उनका एक एक शब्द मेरे लिये एक रहस्य है और उनके वाक्यों का रहस्योद्घाटन ही मेरे जीवन का लक्ष्य होगा। जो भी कोई मेरा समाधान करेगा मैं अपना सर्वस्व उसके चरणों में समर्पित कर दूंगी।"

महासामन्त के दूरदर्शी नेत्रों ने राजकुमारी अंजना के नेत्रों में ध्यान से देखा तो पुलकित हो उठे। उन्होंने गद्गद् होकर और भी निकट आते हुये कहा—"बेटी ! इन बूढ़े नेत्रों ने तुम्हें सदैव ही एक अनोखे भाव से देखा है। प्रायः तुम्हें समझने का प्रयत्न किया है। पर, आज जो कुछ देख रहा हूं उससे मेरी छाती गौरव से फूल रही है। मैंने तुम्हें निःसन्देह अन्य राजकुमारियों से ऊंची माना था पर आज निश्चय हो गया कि तुम जैसी बलवती मानवी को पुत्री तो क्या माता कहकर पुकारने में भी संकोच नहीं होता।"

राजकुमारी ने अन्तरिक्ष में निमेष मात्र के लिये आंखें गाड़ लीं, फिर स्वस्थ होकर कहा—"महासामन्त ! जीवन की परिधि विशाल हो जाने से हमारा निर्माण भी विस्तृत हो जाना सम्भव है। मनुज का हृदय अन्तरिक्ष के विस्तार से नापा जाना चाहिये। जब भी कभी हमारी आँख असीम की ओर उठेगी और हम अपने अस्तित्व को उसी में लवलीन करने की साध में जागरुक हो उठेंगे तो हमारा भविष्य

निःसन्देह उज्ज्वल होगा।"

"धन्य हो राजकुमारी जी! तुम्हारे विचारों के प्रति कौन हृदय ऐसा होगा जो अकस्मात् नतशिर होने की आज्ञा न देगा। फिर भी बेटी! ममता विवश कर रही है कि तुम्हें संसार की क्रूर दृष्टियों से छिपा कर रक्खूं। तुम्हारा प्रत्येक अग्रसर पग उत्तेजक और काल की छाती चीरता हुआ दीख पड़ता है परन्तु तुम मेरे लिये अब भी वही नन्हीं कलिका हो जिसका शैशव मेरी इन भुजाओं में मचला था। जहां आज मैं तुम्हारे अंग प्रत्यंग में मध्याह्न के सूर्य की चमक और प्रचण्डता का अनुभव करता हूं, वहां आज से अठारह वर्ष पूर्व तुम्हारे नवोदय की लालिमा भी देखता हूं। अपने इस बूढ़े सामन्त को आज्ञा दो राजकुमारी! वह राजवंश के अन्तिम चिन्ह की क्या सेवा कर सकता है?"

राजकुमारी अंजना ने झुक कर बूढ़े सामन्त को प्रणाम करना चाहा; सामन्त ने उसके हाथ रोक लिये, सस्नेह सिर पर हाथ फेरने लगा। उसके नेत्र अश्रुप्लावित थे। राजकुमारी अंजना ने मुद्रा-परिवर्तन करते हुये कहा "महासामन्त! मुझे तुम्हारी सेवा की अपेक्षा तुम्हारा पथ-प्रदर्शन अपेक्षित है। जहां मेरा आत्मविश्वास मुझे मेरे उद्देश्य की ओर अग्रसर होने का साहस प्रदान करेगा, वहाँ तुम्हारी दीर्घ दृष्टि मुझे परोक्ष साधनों का अवलोकन कराएगी। निःसन्देह मेरा मार्ग अति दुष्कर एवं कंटकाकीर्ण सिद्ध होगा, और मेरे साथ साथ तुम भी उन कांटों से उलझे बिना न रह सकोगे; पर तुम्हारे सस्नेह व्यवहार ने मुझे प्रेरणा दी है कि यथासम्भव तुम्हारे सहयोग से विमुख न हो पाऊँ। परन्तु यहां से प्रस्थान करने से पूर्व हमें राजकुमारी वा महासामन्त की उपाधियों से अवकाश प्राप्त करना होगा। विधि ने यदि यह उपाधियां हम से छीन ली हैं तो हमें भी इन्हें जीर्ण वस्त्रों की भांति उतार फेंकना चाहिए और साधारण रूप में अपने व्यक्तित्व को

सुनाते। अंजना तो जैसे वहां के निवासियों की महारानी ही बन बैठी। किसी भी उत्सव अथवा गोष्ठी में सर्वप्रथम इन दोनों को अध्यक्ष बनना पड़ता। दुर्गाष्टमी का उत्सव मनाने के लिए निकटवर्ती अन्य बस्तियों के ग्रामीण भी उछलते-कूदते सम्मिलित हुए। तृतीय प्रहर के समय सभी को सम्बोधित करके दयालु चौधरी ने अपने कुछ विचार रखे। उसने कहा—

"बन्धुओ! आप लोगों की आत्मीयता और श्रद्धा ने हमें जीत लिया है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि युगों से हम यहीं पर रहते आये हों। जिन बातों को कपोल-कल्पित कहानियां समझकर कोई महत्व नहीं देते थे, वही कपोल-कल्पित कहानियां हमारे सम्मुख साकार होकर आन खड़ी हैं। वह कहानियां हैं इन पर्वत श्रेणियों में शताब्दियों से रहने वाले आप लोगों के सम्बन्ध मे। किस प्रकार इन विकराल पर्वतों का वक्ष चीर कर अन्न उत्पन्न किया जा सकता है; भयङ्कर आंधियों और तूफानों के बीच आपकी यह पर्णकुटियां अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए निरन्तर संघर्ष करती आ रही हैं। भले ही यह शस्य श्यामल उत्तुङ्ग शिखर दूर से दीखने में अतीव सुहावने जान पड़ते हैं; पर निकट आने पर ये अच्छे अच्छों के गत्यावरोध का कारण बन जाते हैं। धन्य हैं आप लोग जो ऐसी भयंकर अटवियों को अपना घर बनाये बैठे हैं। आप लोगों का साहस और परिश्रम सराहनीय है। किन्तु कोरे परिश्रम और साहस का कोई तात्पर्य नहीं रह जाता, जब तक उसे विशेष रूप से व्यवस्थित और प्रशासित न बना दिया जाए। यह ठीक है कि आप लोग अपने वर्तमान जीवन से सन्तुष्ट हैं, कि यह सन्तुष्टि विकास के पथ में एक भारी चट्टान की तरह होती है। विकसित होना अथवा आगे बढ़ना प्रगति है और प्रगतिशील बनना आज हमारा कर्तव्य है। विज्ञान के चमत्कार, नए नए आविष्कारों की सृष्टि व उपयोगी शिक्षा के विषय में जानकारी प्राप्त

करना भी आज के युग की मांग है; अर्थात् यह हमारे लिए आवश्यक है। हमें अपनी सीमाओं को फैलाना है, अपने सम्बन्धों को बढ़ाना है, अपने ज्ञान को परिपक्व बनाना है, तभी हम यथार्थ रूप में मानव कहला पायेंगे। मैं समझता हूं मेरी यह बातें आप लोगों के लिए अभी कौतूहल मात्र ही होंगी, किन्तु यदि आप लोग मुझे अवसर व सहयोग दें तो मैं आपको उन अमूल्य निधियों का धनी बनाने का वचन देता हूं जिन्हें पाकर आप सचमुच समृद्धिशाली बन जायंगे। दिन भर परिश्रम करके उदरपूर्ति कर लेना ही एकमात्र जीवन नहीं है, अपितु जीवन बहुत ही सारगर्भित एवं रहस्यमय है और इस रहस्यमय जीवन का रहस्योद्घाटन ही सच्चा सुख है। क्या आप लोग सच्चा सुख प्राप्त करना नहीं चाहते ?"

एक ग्रामीण ने एकाएक उठकर कहा—

"चौधरी ! हमारे पास इन बातों के लिए समय कहां है ? आठों पहर खून पसीना एक करके तो भर पेट खाद्य प्राप्त नहीं होता। यदि इन लम्बे चक्करों में पड़ गये तो क्या दशा होगी ? भूखों मरने की नौबत आ जाएगी।"

चौधरी ने शान्त स्वर में उत्तर दिया—

"इसका उत्तरदायित्व मुझ पर छोड़ो। इसके लिए ऐसी योजना का निर्माण किया जायगा जिससे यह दुष्कर कार्य भी सुगम बन जाएगा। किन्तु इसके लिए हमें सम्बद्ध होना पड़ेगा। योजना के कार्यवाहक मैं और अंजना बनने को तत्पर हैं। हमें केवल आपका विश्वास चाहिए, शेष हम दोनों संभाल लेंगे।"

इस पर एक वृद्ध ने श्रद्धापूर्वक कहा—"चौधरी ! हमें आप दोनों पर पूर्ण विश्वास है। हमारा अन्तःकरण जानता है कि गत चार मास से किस प्रकार आप तन मन से हमारे उद्धार के लिए जुटे हैं। हमारे अहोभाग्य, जो आप जैसे देवपुरुषों को हमारी चिन्ता हुई। यह बच्चे

अभी आपकी बातों को समझ नहीं पा रहे पर, हमें आप पर पूर्ण विश्वास है। हमारा, तन, मन, धन व धान्य आपकी सेवा में अर्पित है।"

दयालु चौधरी ने साहस बटोर कर पुनः अपना कथन चालू किया—"यदि यह बात है तो हमारी योजनायें सुन लीजिए। प्रत्येक बस्ती में एक एक पाठशाला खोली जायगी जिसमें बच्चे, बूढ़े, जवान, नर-नारी समान रूप में शिक्षा प्राप्त करेंगे। पारस्परिक द्वन्द्वों व सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए बस्ती बस्ती में पंचायत बनाई जायगी। उन पंचायतों के विशेष नियम होंगे, जिनका पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य होगा।"

एक ओर से एक व्यक्ति ने प्रश्न किया—"स्त्रियों को किस प्रकार शिक्षा दी जा सकती है? क्या उन्हें भी सब के साथ खुले मुंह पाठशाला में जाकर शिक्षा प्राप्त करनी होगी? इससे हमारी मर्यादा जाती रहेगी। हमारे यहां तो स्त्रियां पुरुषों से परदा करती हैं।"

चौधरी ने नम्र वाणी में कहा—"परदा परायों से होना चाहिए। ये हमारी अपनी ही बहु-बेटियां हैं। इस तरह इनके मुंह पर परदा डाल कर इन्हें मूढ़ बनाये रखने की चेष्टा बुरी है। आखिर ये भी विचार रखती हैं। इनके भी कुछ अधिकार हैं। क्या आपको यह अच्छा लगता है कि हमारी जननी शक्ति अबला व अकिञ्चन बनी रहे? संसार की अन्य महिलायें जबकि त्वरित गति से आगे बढ़ रही हैं तो इन्हें भी कुछ अवकाश देना चाहिए कि ये अपने दृष्टिकोण को दीर्घ बना सकें। भला आप बताइये कि उपज बढ़ाने के लिए आप लोग क्या करते हैं?"

एक ने कहा—"हम धरती को परिश्रम से तैयार करते हैं?"

चौधरी ने बात पकड़ते हुये कहा—"तो स्वस्थ व उत्तम सन्तानें उत्पन्न करने के लिए हमें जननी शक्ति का उद्धार करना होगा। बच्चे को सर्व प्रथम शिक्षा अपनी माता से मिलती है। माता के संस्कार उसके दूध में घुलकर बच्चे की नस-नस में संचरित होते हैं। यह उक्ति

वास्तव में ठीक है, 'जैसी धरती वैसा फल'।"

एकत्रित जन-समूह में इस प्रस्ताव पर आलोचना आरम्भ हो गई। अधिकतर लोग तो इसे पूर्ण रूप में न समझने के कारण चुप थे। उनके कानों में दयालु चौधरी की अन्तिम बात गूँज रही थी—'जैसी धरती वैसा फल' पर, कुछ एक को यह बात व्यर्थ प्रतीत हुई। वह नाक-भौं सिकोड़ कर कहने लगे-- "अरे भाई! इन नागरिकों के चक्कर में मत पड़ो। ये हमारी स्त्रियों को मेम साहब बना डालेंगे। दो जून जो रूखा-सूखा पका कर देती हैं, वह भी कहेंगी, हमसे नहीं होता। हम तो कहेंगे कि ये हमें हमारे हाल पर ही छोड़ दें। हम पर दया न करें। हम इसी अवस्था में प्रसन्न हैं। देख लेना भैया! यदि कुछ दिन और इन लोगों ने इसी तरह अपना प्रचार किया तो यहां भी शहरों की तरह झगड़े शुरू हो जायंगे।"

और कोई कहता—"नहीं भाई! दयालु चौधरी ठीक कहते हैं। इनके विचार बहुत अच्छे हैं। यदि हम लोग भली प्रकार से पढ़ लिख लें तो हमारे नेत्र खुल जायें। और नहीं तो कम से कम हम किसी की बात समझने योग्य तो हो जायें।"

और कुछ लोग तो दयालु चौधरी को अवतार ही मानने लगे। निदान कुछ समय की गड़ बड़ के पश्चात् वातावरण शान्त हुआ। कुछ वृद्ध ग्रामीणों ने अंजना व उसके पिता दयालु चौधरी के सम्मुख कर-बद्ध प्रार्थना की कि वे उनकी बस्तियों में अवश्य पधारें। सभा धीरे धीरे विसर्जित हुई और दोनों पिता पुत्री भी अपनी कुटी की ओर कुछ लोगों के साथ चल दिये।

——

२

रात्रि का प्रथम प्रहर लगभग समाप्ति पर था। छोटी सी पर्णकुटी में अपनी अपनी खटिया पर अंजना और दयालु चौधरी बैठे गत दिवस की कार्यवाही पर विचार विमर्श कर रहे थे कि अंजना ने कहा—"बापू ! तुम्हें क्या विश्वास है कि ये सर्वाङ्ग अनभिज्ञ प्राणी जिनके जीवन का उद्देश्य शताब्दियों से उदर-पूर्ति रहा हो, वे तुम्हारे इन स्वर्गिक स्वप्नों में विश्वास करेंगे ?"

दयालु चौधरी ने सांत्वना-पूर्ण वाक्यों में उत्तर दिया– "ये लोग सर्वाङ्ग अनभिज्ञ हैं, मूढ़ हैं, उद्दण्डता भी इनमें पर्याप्त है। पर, यह क्यों भूलती हो कि इनके मस्तिष्क एकदम कोरी तख्ती के समान हैं जो अंकित करोगी, अतीव ही स्पष्ट अंकित होगा। और फिर इनमें अपना विश्वास उत्पन्न करना हमारी अपनी साधना व निष्ठा का फल ही तो होगा। यदि हमें अपने ऊपर पूर्ण विश्वास है और हम सच्चे हृदय से इनका उद्धार करेंगे तो हमारी सत्यनिष्ठा की छाप इनके अन्तस्तलों पर लगे बिना न रहेगी। हमारा उद्देश्य उत्तम है। मार्ग दुर्गम अवश्य है पर उज्ज्वल है। हमारे पास कार्य-क्रम है और उसके लिए कार्य-क्षेत्र भी। केवल अपेक्षित हैं तो साहसी व सच्चे कार्यकर्ता। तुम्हें स्मरण है बेटी ! तुमने कहा था 'मनुज का हृदय अन्तरिक्ष के विस्तार से नापा जाना चाहिए।' तुमने असीम में लवलीन होने की भावना प्रकट की थी। लो अब वह समय आ पहुँचा है। असीम के रूप में यहां की अशिक्षित व भोली-भाली जनता हमारे सम्मुख खड़ी है। आओ हम इसमें लवलीन हो जाएं; निःसन्देह हमारा भविष्य उज्ज्वल होगा। हमें सफलता प्राप्त होगी।"

अंजना ने चिन्तित हुए पूछा—"तो बापू ! इसके लिए हमें क्या करना होगा ?"

चौधरी ने गम्भीर मुद्रा बनाते हुए कहा—"इसके लिए सर्वप्रथम हमें इन लोगों को इस योग्य बनाना होगा कि ये हमारी योजनाओं को समझ सकें। तभी इनका विश्वास हमें प्राप्त हो सकेगा और तभी ये हमें इस निर्माण-कार्य में सहयोग देंगे।"

अंजना ने दयालु चौधरी की बात का प्रतिवाद तो नहीं किया, पर कहने लगी—"बापू ! हमें यहां रहते लगभग एक वर्ष व्यतीत होचुका है। मैंने भली प्रकार से इन लोगों में घूम फिर कर देखा है। मैं तो अब तक निर्णय कर पाई हुँ कि ये लोग हमें केवल विचित्र प्राणी ही समझते हैं। वास्तव में यह हमें या हमारे विचारों को समझने की अपेक्षा हमें देव-प्रतिमा मानकर पूजा करने लग गये हैं। और इस मूढ़ उपासना का अन्त क्या जानते हो ? ये शिव की विषपान मुद्रा को केवल शिव भगवान मानकर प्रणाम करते हैं, उसकी अमर व परोपकारिणी भावना तक नहीं पहुँच पाते। इसलिए जब कभी कोई कार्य बिगड़ जाता है तो इनकी श्रद्धा और भक्ति दुम दबाकर भाग जाती है और ये मूर्ति को पृथ्वी पर पटकने के लिए आतुर हो उठते हैं। इनकी इस मूढ़ उपासना से मेरा दिल बैठा जा रहा है। मैं समझती हूं कि हमें यहां पर समय नष्ट न करके किसी बड़े नगर को अपना कार्य-क्षेत्र बनाना चाहिए।"

चौधरी ने शान्त भाव से कहा—"तो इनका उद्धार कैसे होगा ? क्या इन्हें इसी प्रकार अज्ञानता के अन्धकूप में रहने देने की सम्मति देती हो ? तब तो हमारा समस्त परिश्रम व्यर्थ जायेगा। नागरिक तो आगे ही जागे हुए हैं। तुम्हारे जागरण-संगीत का तात्पर्य तो यही है कि तुम सोतों को जगाओ। अलसित हृदयों में स्फूर्ति का संचार करो। तभी तुम्हारी कर्मठता कुछ रंग लाएगी।"

अंजना ने भाव परिवर्तित करते हुए कहा—"पर बापू ! जिन्हें तुम जगाना चाहते हो उनके पास तुम्हारी बातें सुनने के लिए अवकाश कहां है ? अधिक कहोगे तो वे लोग तुम्हारे निकट आना भी छोड़ देंगे।"

चौधरी ने स्मित-पूर्ण वाणी में कहा—"नहीं बेटी ! मैं इन लोगों को समझता हूं। मुझे विश्वास है कि हम यहां कार्य कर सकेंगे। विरोध प्रत्येक स्थान पर होता ही है। विरोधी को विरोध करने दो। उसे स्नेह-पूर्वक समझाओ, एक न एक दिन वह अवश्य तुम्हारा मित्र बन जायेगा।"

अंजना ने एकाएक सोचते हुए कहा—"मुझे तो इन लोगों से भय लग रहा है। अभी कल ही की तो बात है, भागवत कह रहा था कि चौधरी को सतर्क हो कर चलना चाहिए। विरोधी तत्व तुम्हें मिटाने की योजना बना रहा है। वह तुम्हारी सद्भावनाओं को कोरा पाखण्ड मानता है। वह तुम्हें······नहीं, नहीं······बापू ! हम यहां नहीं रहेंगे। कहीं और चलेंगे; वहां, जहां के लोग तुम्हारे विचारों को समझ सकें, तुम्हारी सेवा ग्रहण कर सकें।"

दयालु चौधरी ने किञ्चित् दृढ़ व गम्भीर होकर कहा—"अंजना ! मैंने अच्छी तरह सोच लिया है। हमें यहीं पर कार्य करना होगा। क्या तुम्हें अपने बापू पर विश्वास नहीं रहा ?"

अंजना ने गद्गद् होते हुए कहा—"यह क्या कह रहे हो बापू ! पर, फिर भी मैं······?"

"फिर भी क्या ? इस बूढ़े सामन्त पर विश्वास करो राजकुमारी ! मैं ऐसा कोई भी कार्य नहीं करूंगा जिससे तुम्हारे स्वाभिमान को ठेस पहुँचे। अब तुम सो जाओ। रात बहुत व्यतीत हो चुकी है और फिर हमें प्रातःकाल शीघ्र उठना है। पौह फटने से पूर्व ही लोग आ पहुँचगे। कल हमारे नए कार्य-क्रम का प्रथम दिवस होगा। तुम्हें पाठशाला में पढ़ाना चालू करना होगा और मैं आस-पास की सभी बस्तियों में पहुँचूंगा, तुम्हारा अग्रदूत बन कर। हमें कुछ और शिक्षक भी ढूंढ निकालने होंगे और यदि यहां पर न मिले तो शहर से लाने होंगे। अच्छा, सोने का प्रयत्न करो बेटी !"

× × ×

27998

शिक्षण-संस्थाओं व पंचायतों के निर्माण के उपरान्त दयालु चौधरी ने कृषि-उद्योग की ओर ध्यान दिया। उसकी योजना से इस बार जौ व मक्का की खेती बहुत ही अच्छी रही। जनता में दयालु चौधरी, गुरु और अजना, देवी की भांति मान्य हो गए। इसी प्रकार चार वर्ष व्यतीत हुए। पर्वतीय प्रदेश धन धान्य से परिपूर्ण हो गया। पाठशालाओं ने बड़े-बड़े स्कूलों के रूप धारण कर लिए। लोगों में सभ्यता घर करने लगी। गलियों और सड़कों की रूप-रेखा बदल गई। इतना होने पर भी अभी तक कुछ लोग विरोधी ही बने रहे और उनके विरोध ने भीतर ही भीतर यहां तक उग्र रूप धारण कर लिया कि एक दिन अकस्मात् कोलाहल हो उठा। चौधरी ने कुटी से बाहर आकर देखा तो स्तम्भित रह गया। दोनों दलों में लाठी चल रही थी। कुछ ही क्षणों में अनेकों प्राणी घायल हो गए। कभी कभी भयंकर कोलाहल में से छन कर आवाज़ सुनाई दे रही थी—

"हम दयालु चौधरी के प्राण लेकर लौटेंगे। इसने हमारे गृहस्थ बिगाड़ दिए। हमारी बहु-बेटियों को निर्लज्ज बना दिया। हट जाओ आगे से, नहीं तो हम रोकने वालों को भी मिटा देंगे। हट जाओ!!"

दयालु चौधरी अधिक समय न गंवा कर अंजना के पकड़ते पकड़ते उन रक्त के प्यासे और प्रतिहिंसा के पुतलों में जा कूदे और चीख कर बोले—"ठहरो!"

सभी जहां के तहां रुक गए। सभी की दृष्टि उसी पर केन्द्रित हो गई। उसने स्थिति को जांचते हुए गम्भीर स्वर में कहा—"इस प्रकार परस्पर लड़भिड़ कर अपनी शक्ति का ह्रास क्यों कर रहे हो? आपको मेरी सेवाएं अपेक्षित नहीं हैं तो मैं चला जाता हूं। मुझे तो सेवा करनी है। यदि आपको मेरी उपस्थिति खलती है तो मैं कल……।"

एक ओर से किसी ने तीखे स्वर में कहा—"चौधरी यहीं रहेंगे। इन्हें हमारी लाशों पर से होकर जाना होगा।" स्थिति प्रति पल बिगड़

रही थी। अंजना एक कोने में खड़ी यह तमाशा देख रही थी। उसके मस्तिष्क में कई बार विचार आया कि सम्मुख खड़े लोगों से कहे, "कृतघ्नो! बापू ने तुम्हारे सुख के लिए दिन का चैन और रात की नींद त्याग दी; और तुम क्या यह उसका पारितोषिक प्रदान कर रहे हो।"

लेकिन वह प्रयत्न करके भी कुछ बोल न सकी। भीड़ में से अनेकों विरोधी स्वर उठे और परस्पर टकराकर वातावरण में लवलीन हो गये। दोनों विरोधी दल एक दूसरे पर टूट पड़ने को व्याकुल हो रहे थे। हथियार तन गये। केवल विलम्ब था तो इस बात का कि कौन पहल करे।

एकाएक दयालु चौधरी दोनों दलों के ठीक मध्य में आ कूदे। उनकी तीक्ष्ण, गम्भीर दृष्टि बार बार दोनों दलों के मुखियों पर जा टिकती थी। सभी मौन थे। मृत्यु का सा स्तब्ध वातावरण हो गया। दयालु चौधरी ने एक बार अंजना की ओर देखा, फिर गम्भीर, पर दृढ़ स्वर में बोले—"मुझे दुःख है कि मैं आपका विश्वासपात्र न बन सका। मेरा मन्तव्य आप लोगों में फूट डालकर आपको दुर्बल बनाने का नहीं। मैं आपको सबल और सम्बद्ध देखना चाहता हूं। मेरे कारण आपका वर्षों से चल रहा मेल-जोल समाप्त हो जाये, इससे बड़ा मेरा दुर्भाग्य और क्या होगा? आपकी इच्छा के विरुद्ध मैं यहां कदापि नहीं रहूंगा। आपकी विकृत मुद्राओं को देखकर मुझे जो निर्णय करना था, वह कर चुका हूं। मुझे और अंजना को यहां से जाना ही होगा।"

चौधरी का संकेत पाकर अंजना भी उनके निकट आ गई। दोनों चलने को तत्पर हुए तो कुछ वृद्धों और युवकों ने आगे बढ़कर उनके पाँव पकड़ लिये और कहा—"नहीं बापू! आप नहीं जा सकते। यदि जाना ही है तो हम सब भी आपके साथ ही चलेंगे। जिन्हें आपकी आवश्यकता नहीं, वह यहां रहेंगे।"

फिर एक वृद्ध ने विपक्षियों की ओर देखते हुए कहा—"संभालो

अपना गांव, अपनी मर्यादा, हम जारहे हैं। लड़कर बड़े बनना नहीं चाहते। हमें बापू और अंजना देवी के विचार चाहिएं। उसके लिए हम आपको अपनी ज़मीन और घरबार तक सौंपे जा रहे हैं।"

यह कहकर सभी चुपचाप घरों की ओर चल दिये। विरोधी पक्ष वहीं खड़ा रहा। दयालु चौधरी और अंजना अभी तक वहीं खड़े थे एक कोने में।

कुछ क्षणों में लोग सपरिवार अपने सिरों पर गठरियां लादे गांव छोड़ने के लिए आ पहुँचे।

विपक्षियों ने जब गांव खाली होते देखा, तो सहम गये। कुछ नगण्य परिवारों को छोड़, बहु संख्या गांव छोड़ने को उद्यत थी। बापू के बहुत समझाने-बुझाने पर भी, वह अपने इरादे से विमुख न हुए। गोधूलि का समय होने को था, क्षुब्ध ग्रामीणों का दल अनिश्चित मार्ग पर अग्रसर हो उठा। अभी वे लोग कुछ ही दूर गये होंगे कि विपक्षियों के मुखिया ने भागते हुए आकर बापू के चरण पकड़ लिए।

——

अलमोड़ा के पश्चिमी भाग में एक संकीर्ण सी गली में एक छोटा-सा कच्चा पर साफ-सुथरा, लिपा पुता घर था। प्रतीची की ओर भागते हुए दिनकर की अरुणिम रश्मियाँ उसकी एक छोटी सी खिड़की में से भीतर प्रविष्ट हो रही थीं। इसी मध्यम प्रकाश में एक स्वस्थ युवक अपने जीर्णोद्धार में व्यस्त था। वह अपने कार्य में इस प्रकार मग्न था कि उसे यह भी विदित न हो पाया कि उसकी मां जो अपना लगभग साठवां वर्ष पार कर रही थी, खड़ी बड़े ध्यान से उसे देख रही है। युवक के स्पष्ट भाल पर श्रमकण उमड़ रहे थे। माँ ने निकट आकर अपने छोर से उसका मुंह पोंछते हुए कहा—"प्रवेश! चलो बेटा, कुछ खा लो। सूर्योदय से काम में जुटे हो। दो घड़ी तो विश्राम कर लिया करो।"

प्रवेश ने काम करते करते ही उत्तर दिया—"कुछ देर और ठहरो, माँ! आज बुआई करते करते इसका जोड़ हिल गया है। खाना खाकर फिर कुछ करने को जी नहीं चाहता। सोचा कि लगे हाथ इसे ठीक कर लूं। आज भी एक खेत की पूरी बुआई शशांक के हल से करके आया हूं। अभी वह भी इधर ही आता होगा। आज हम दोनों इकट्ठे ही भोजन करेंगे, माँ! हम दोनों ने निर्णय किया है कि साझी खेती की जाए। इस प्रकार मुझे मेरा एकाकीपन न अखरेगा और कार्य भी द्विगुणित उत्साह से हो जाएगा।"

मां ने कुछ क्षण विचार करने के पश्चात् पुत्र के सिर पर सस्नेह हाथ फेरते हुए कहा—"बेटा! साझा कर रहे हो, किञ्चित् सोच विचार कर कार्य करना। साझे में कभी कभी बिगाड़ हो जाने की सम्भावना हो जाया करती है।"

प्रवेश ने माँ की बात का अनुमोदन करते हुए उत्तर दिया—"शशांक को तो तुम अच्छी तरह जानती पहचानती हो। वह स्वयं

घाटा खा लेना स्वीकार कर लेता है, पर दूसरे को तो हानि पहुँचाने की भावना भी उसके हृदय में कभी आज तक जागृत होते नहीं दीख पाई। ऐसे स्नेहशील प्राणी पर तो संदेह करना उसके प्रति अन्याय होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसके साथ मेरी खूब पटेगी।"

अभी वे बातचीत कर रहे थे कि शशांक आ पहुँचा। शशाँक का जैसा नाम, वैसा ही उसका स्वरूप था। वह एक सदाबहार, सुवासित एवं विकसित प्रसून की भांति विचरता था। उसमें सबसे बड़ा गुण एक यह था कि वह दो ही बातों में किसी भी नवपरिचित से अपनत्व बढ़ा लेता था। उसके अड़ोसी-पड़ोसी मुग्ध हो उठते थे उसके सरस गीतों पर। जहां उसे परिश्रम के लिए स्फूर्ति प्राप्त हुई थी, वहां प्रकृति को सर्वाङ्ग सुन्दर देखने की दिव्य दृष्टि भी वरदान के रूप में मिली थी। उसके गीति-काव्यों में से अमृत झरता था। अच्छे पढ़ें-लिखे विद्वानों से लेकर निरक्षर ग्रामीण भी यदा-कदा उसके गीत गुनगुनाते रहते थे। बुआई के समय उसका मदिर स्वर थके-हारे श्रमिकों में नवोत्साह का संचार कर देता था। इसके अतिरिक्त वह बात का धनी था। सभी उसके वाक्य को ब्रह्मा का वाक्य कहते थे। प्रवेश का वह अन्तरंग मित्र था। यदि प्रवेश के सुगठित अवयवों से पुरुषत्व और स्वाभिमान टपकता था तो इसके श्वास-श्वास से परोपकार व जनसेवा की पवित्र-भावना मुखरित हो रही थी। गांव में जिस वृद्ध पंडित से इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की थी वह सदैव कहा करता था—"शशांक! प्रवेश तुम्हारा सहपाठी ही नहीं अपितु, तुम्हारे जीवन का प्रवेशद्वार भी है। कभी भी तुम्हें अपना वास्तविक स्वरूप निरखने की इच्छा हो अथवा जीवन-क्षेत्र में कूदने की अकांक्षा हो तो इसी द्वार में से प्रविष्ट होने का प्रयत्न करना। तुम्हें कभी असफलता नहीं होगी।"

शशांक को अपने सम्मुख खड़ा पाकर प्रवेश ने हल को यहीं छोड़ दिया और कहा --"चलो मां! बड़े जोर की भूख लग रही है, कुछ

खाने को दो। एक ही थाली में खा लेंगे हम लोग।"

माँ ने उठते हुए कहा--"लो शशांक ! तुम लोग जल्दी से हाथ मुंह धो डालो। मैं अभी रोटी बना लेती हूं, आलू का साग है। कहो तो कुछ हलवा बना लूं ?"

शशांक ने मां को बरबस बिठाते हुए कहा—"उठो प्रवेश ! आज रोटी हम बनाएंगे। रोज मां बना कर खिलाती है, आज तुम मां को बना कर खिलाओ, और देखो, मैं इस कार्य में तुम्हारी पूरी पूरी सहायता कर दूंगा।"

मां ने हंसते हुए कहा—"अच्छा-अच्छा, तुम ही बना लेना। अभी तो मैं एकदम स्वस्थ हूं। पांव के नाखून से लेकर सिर के बाल तक ठीक हैं मेरे। तुम से अधिक मजबूत हूं। नहीं विश्वास हो तो चौके में रोटिएं बनवा कर देख लो, तुम्हें जीत जाऊंगी।"

शशांक ने बात काटते हुए कहा—"मां ! यह क्या कहती हो ? कभी तुम्हें भी जीता जा सकता है; तुम तो मां हो—मां ! तुम्हारे तो अंशमात्र हैं हम लोग।"

प्रवेश ने श्रद्धा से मां की ओर देखा, फिर शशांक की आंखों में क्षणमात्र के लिए देखा और धीमे स्वर में कहा—"तुम बातें बहुत अच्छी बनाते हो शशांक ! किन्तु इस समय पेट में चूहे कूद-फांद कर रहे हैं। तुम्हारा क्या ठिकाना, वह जाओ भावना में तो अभी हो जाएगी कविता आरम्भ। भई, पहले इस पेट की सेवा सुश्रूषा हो ले, फिर सुनेंगे तुम्हारी ज्ञान-चर्चा। अभी कल इतना सा तो था, रोटी को लोती कहता था और आज चला है मां को बुद्धि का चमत्कार दिखाने।"

शशांक ने बात उड़ाते हुए कहा—"मैं तो चला चौके में, हलवा बनाऊंगा। तुम्हें यदि सचमुच भूख लगी हो तो चले आओ मेरे पीछे पीछे।" फिर माँ को सम्बोधित करते हुए बोला—"तुम बैठो मां !

आज अपने पुत्रों का भी कला-कौशल परख लो।''

मां के बहुत रोकने पर भी दोनों ने अपनी हठ न छोड़ी और खाना बनाने में जा जुटे। प्रवेश रायते के लिए दही बिलोने लगा और शशांक ने हलवा बनाना चालू कर दिया। मां ने उठ कर दिया जलाया और दूसरी कोठरी में चली गई।

× × × ×

खाने-पीने से अवकाश प्राप्त करके दोनों मित्र कोठरी के एक कोने में जा बैठे। शशांक ने वातावरण का दृष्टिकोण परिवर्तित करते हुए एकाएक प्रश्न किया—''प्रवेश! मेरे मस्तिष्क में प्राय: एक प्रश्न सदैव खटकता है कि जो शतियों से श्रम का बोझल जुआ अपने कंधों पर ढोने के अभ्यस्त हो गए हैं, क्या उन्हें कभी अपने अस्तित्व का आभास नहीं होता? एक ही पृथ्वी पर एक ही वर्ग के प्राणी भिन्न भिन्न चर्या में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। एक प्राणी दो घंटे थोड़ा सा कार्य करके अधिकाधिक सुखोपभोग करता है; दूसरों को साम-दाम, दण्ड-भेद द्वारा अपने प्रति विरुदावलियां उच्चारण करवाने का साधन बना लेता है; समाप्ति में वह अपनी बुद्धि के दुरुपयोग से उनका शोषण करता है। दूसरा विभात से सूर्यास्त तक अथक परिश्रम करके एक जीर्ण शाटिका भी प्राप्त नहीं कर पाता। इसी प्रकार पहला उन्हीं के श्रमसीकरों का पान करके दिनों-दिन विशालकाय बनता जाता है। उसके मस्तिष्क में वराङ्गनाओं का विवरणमात्र ही अहर्निश चक्कर काटता रहता है। उसके विपरीत दूसरा अपनी आर्थिक अव्यवस्था के संघर्ष में उलझता हुआ कंटकाकीर्ण वर्त्म पर अर्धविक्षिप्त सा चलता हुआ प्रतीत होता है। प्रवेश! क्या कभी मानव कहलाने वाला प्राणी इस असमानता और नैतिक विपन्नता का समाधान कर पाएगा? क्या उसे अधिकार के स्थान पर अपने कर्त्तव्य का ज्ञान भी हो सकेगा? जिससे भी बात करो वही अपने पाण्डित्य के प्रभाव से अनेकों ग्रन्थियों

खाने को दो। एक ही थाली में खा लेंगे हम लोग।"

माँ ने उठते हुए कहा--"लो शशांक ! तुम लोग जल्दी से हाथ मुंह धो डालो। मैं अभी रोटी बना लेती हूं, आलू का साग है। कहो तो कुछ हलवा बना लूं ?"

शशांक ने मां को बरबस बिठाते हुए कहा—"उठो प्रवेश ! आज रोटी हम बनाएंगे। रोज मां बना कर खिलाती है, आज तुम मां को बना कर खिलाओ, और देखो, मैं इस कार्य में तुम्हारी पूरी पूरी सहायता कर दूंगा।"

मां ने हंसते हुए कहा—"अच्छा-अच्छा, तुम ही बना लेना। अभी तो मैं एकदम स्वस्थ हूं। पांव के नाखून से लेकर सिंर के बाल तक ठीक हैं मेरे। तुम से अधिक मज़बूत हूं। नहीं विश्वास हो तो चौके में रोटिएं बनवा कर देख लो, तुम्हें जीत जाऊंगी।"

शशांक ने बात काटते हुए कहा—"मां ! यह क्या कहती हो ? कभी तुम्हें भी जीता जा सकता है; तुम तो मां हो—मां ! तुम्हारे तो अंशमात्र हैं हम लोग।"

प्रवेश ने श्रद्धा से मां की ओर देखा, फिर शशांक की आंखों में क्षणमात्र के लिए देखा और धीमे स्वर में कहा—"तुम बातें बहुत अच्छी बनाते हो शशांक ! किन्तु इस समय पेट में चूहे कूद-फांद कर रहे हैं। तुम्हारा क्या ठिकाना, बह जाओ भावना में तो अभी हो जाएगी कविता आरम्भ। भई, पहले इस पेट की सेवा सुश्रूषा हो ले, फिर सुनेंगे तुम्हारी ज्ञान-चर्चा। अभी कल इतना सा तो था, रोटी को लोती कहता था और आज चला है मां को बुद्धि का चमत्कार दिखाने।"

शशांक ने बात उड़ाते हुए कहा—"मैं तो चला चौके में, हलवा बनाऊंगा। तुम्हें यदि सचमुच भूख लगी हो तो चले आओ मेरे पीछे पीछे।" फिर माँ को सम्बोधित करते हुए बोला—"तुम बैठो मां !

आज अपने पुत्रों का भी कला-कौशल परख लो।"

मां के बहुत रोकने पर भी दोनों ने अपनी हठ न छोड़ी और खाना बनाने में जा जुटे। प्रवेश रायते के लिए दही बिलोने लगा और शशांक ने हलवा बनाना चालू कर दिया। मां ने उठ कर दिया जलाया और दूसरी कोठरी में चली गई।

× × × ×

खाने-पीने से अवकाश प्राप्त करके दोनों मित्र कोठरी के एक कोने में जा बैठे। शशांक ने वातावरण का दृष्टिकोण परिवर्तित करते हुए एकाएक प्रश्न किया—"प्रवेश! मेरे मस्तिष्क में प्रायः एक प्रश्न सदैव खटकता है कि जो शतियों से श्रम का बोझल जुआ अपने कंधों पर ढोने के अभ्यस्त हो गए हैं, क्या उन्हें कभी अपने अस्तित्व का आभास नहीं होता? एक ही पृथ्वी पर एक ही वर्ग के प्राणी भिन्न भिन्न चर्या में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। एक प्राणी दो घंटे थोड़ा सा कार्य करके अधिकाधिक सुखोपभोग करता है; दूसरों को साम-दाम, दण्ड-भेद द्वारा अपने प्रति विरुदावलियां उच्चारण करवाने का साधन बना लेता है; समाप्ति में वह अपनी बुद्धि के दुरुपयोग से उनका शोषण करता है। दूसरा विभात से सूर्यास्त तक अथक परिश्रम करके एक जीर्ण शाटिका भी प्राप्त नहीं कर पाता। इसी प्रकार पहला उन्हीं के श्रमसीकरों का पान करके दिनों-दिन विशालकाय बनता जाता है। उसके मस्तिष्क में वराङ्गनाओं का विवरणमात्र ही अहर्निश चक्कर काटता रहता है। उसके विपरीत दूसरा अपनी आर्थिक अव्यवस्था के संघर्ष में उलझता हुआ कंटकाकीर्ण वर्त्म पर अर्धविक्षिप्त सा चलता हुआ प्रतीत होता है। प्रवेश! क्या कभी मानव कहलाने वाला प्राणी इस असमानता और नैतिक विपन्नता का समाधान कर पाएगा? क्या उसे अधिकार के स्थान पर अपने कर्त्तव्य का ज्ञान भी हो सकेगा? जिससे भी बात करो वही अपने पाण्डित्य के प्रभाव से अनेकों ग्रन्थियों

में बद्ध करके उलझा देता है ।"

प्रवेश कुछ क्षण तक शशांक के वाक्यों का सन्तुलन करता हुआ बोला—"शशांक यह सृष्टि का अनादि क्रम है। तुम्हारे शब्दों के अनुसार मैं इस निष्कर्ष तक पहुँच पाया हूं कि एक व्यक्ति अपने बुद्धिबल से जहां तक सम्भव हो, दूसरों को पहेलियों में उलझा कर क्षुब्ध करने का प्रयत्न करता है। वह ऐसे ही सिद्धान्तों की सृष्टि करता है जिनका वास्तविक रूप एक बन्द गोभी से अधिक नहीं जिसके अनेकों अवगुंठन हटाने पर अन्त में कोई स्थूल तत्व हस्तगत नहीं होता। इसे हम मानवी स्वभाव की संज्ञा भी दे डालें तो कोई अत्युक्ति न होगी। परन्तु हमें इन बन्द गोभी जैसे सिद्धान्तों में न उलझ कर कोई ऐसा मार्ग ढूंढ निकालना चाहिये जिससे कि सहज में ही उद्धार का निश्चय कर सकें। मैंने इसके लिए एक निश्चय किया है।"

शशांक ने एकाएक चौंक कर पूछा—"क्या......?"

प्रवेश ने वाक्य भंग करते हुए— "इसके लिए शशांक, दो कार्य हमें करने होंगे। प्रथम तो सभी को कर्त्तव्य का ज्ञान कराना होगा। और दूसरा अनधिकार व अविचार की रूपरेखा अंकित करके दिखानी होगी।"

शशांक ने सशंक भाव से कहा—"कर्त्तव्य की बात तो मैं स्वीकार करता हूं पर, अनधिकार व अविचार के चक्कर में पड़ कर तो मनुष्य फिर वहीं का वहीं न रह जाएगा। क्यों नहीं हमारे सिद्धान्तों में एक-मात्र ही शब्द रह जाए 'कर्तव्य'।"

इतने में मां ने दूध का एक एक गिलास दोनों के हाथों में थमा दिया। जब वह लौटने लगी, तो प्रवेश ने कहा—" ! कल प्रात:काल मुझे जरा जल्दी उठकर जाना होगा। इसलिए जल्दी से सो जाओ तो ठीक रहेगा। चलो लेटो, मैं तुम्हारा शरीर दबा दूं, बहुत थक जाती हो।"

मां ने प्रसन्न होते हुए कृत्रिम क्रोध में कहा—"चल हट; बड़ा आया मुझ पर दया दिखाने वाला। यह तो होता नहीं कि विवाह करके मेरा हाथ बटाने के लिए बहू को ले आए। बातें भले जितनी मरज़ी सुन लो। सोना तो तुम्हें चाहिए। सुबह से काम में जुटे हो, मैं तो दिन भर बैठी ही रहती हूं।"

और वह मुस्कराती हुई बाहर चली गई। शशांक ने धीमे पर स्वस्थ स्वर में कहा—"प्रवेश! यह मां है। यह तुम्हारी सेवा से मृत्यु पर्यन्त भी विमुख होना नहीं चाहेगी। मनुष्य ने अनेकों नए नए सिद्धान्तों के आधार पर आविष्कार कर डाले। सृष्टि को पलक झपकते ही समाप्त कर देने के लिए प्रमाणु शक्ति तक का आविष्कार कर डाला। परन्तु इस सृजन-शक्ति, जन्मदात्री मां के हृदय को परिवर्तित कर देने के लिए कोई यन्त्र निर्मित न कर सका। अभी तक भी सिद्धान्तों के विवरण-जाल मातृत्व को क्षुब्ध कर पाए। किसी भी वाद ने इस पर विजय प्राप्त नहीं की। यह अब भी अमर है, सत्य है, कल्याण-कारी है और ममतामय है।"

प्रवेश ने अपनी डायरी के पन्ने पलट कर कहा—"देखो, कल प्रातःकाल नौ बजे से पूर्व हमें सभा की कार्यवाही आरम्भ कर देनी होगी। हमें शीघ्रातिशीघ्र अधिक से अधिक संगठन करना होगा। कुछ सभाओं के उपरान्त लोगों को हमें समझने और सुनने की इच्छा होगी। अड़चनें भी आयेंगी, पर हमें धैर्य से सब सहन करना होगा। यदि नागरिक संगठित हो जायें तो ग्रामीणों में भी जागृति उत्पन्न करनी होगी, पर एक बात का हमें ध्यान रखना ही होगा कि किसी भी वर्ग के व्यक्ति को हमारे प्रति अश्रद्धा व अविश्वास नहीं होना चाहिए। हमें उनके आत्मीय बनकर कार्य करना होगा। यदि हम चाहते हैं कि हमें सफलता मिले तो हमें किसी के भी नैतिक अथवा सामाजिक पतन की आकांक्षा नहीं करनी होगी। हमें समर्थन के रूप में विरोध करना होगा। हमारा संघर्ष केवल

बुद्धिवादी और भावात्मक न होकर क्रियाशील तथा सम्पन्न होना चाहिए। हम विरोधियों को अपने साथ सम्मिलित करके आगे बढ़ेंगे, तो शशांक भैया, सृष्टि की कोई सी शक्ति हमें विफल नहीं कर पायेगी। सबको विनिर्जित करने का मूल-मंत्र स्मरण रक्खो। मानसिक उदारता की कुन्जी है।"

——

४

अंजना मध्याह्न के भोजनोपरान्त ग्राम की संकीर्ण वीथियों को पार करती हुई निकटवर्ती जलाशय के तट पर पहुँची। घनी झाड़ियों की ओट से उसे एक शान्त पर, तीक्ष्ण स्वर सुनाई पड़ा। उसने उसी ओर चलना आरम्भ कर दिया। ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ती गई, स्वर और भी स्पष्ट होता गया। उसे एक घाटी के चरणों में जनसमूह दिखाई दिया। उसमें खड़ा हुआ एक वृद्ध व्यक्ति कह रहा था—"तुम ग्रामीण इतने भोले हो कि कोई भी आकर तुम्हें अपनी मीठी मीठी बातों के चक्कर में उलझा सकता है। मैं स्वीकार करता हूं कि दयालु चौधरी और उसकी बेटी अंजना के प्रभाव से आप लोगों का जीवन पलट गया है। धन-धान्य की उपज बढ़ गई है। गांव साफ़, सुथरे बन गये हैं। शिक्षा के तीव्र और दिव्य प्रकाश में आपको आत्मोन्थान का सुन्दर, चमकीला सोपान दीख पड़ा है। परन्तु मैं यह कहने से कभी नहीं रुकूंगा कि यह चमकता हुआ स्वर्णिम-सोपान मृग-मरीचका से अधिक अस्तित्व नहीं रखता। ज्यों ज्यों आप लोग इन नागरिकों के चिकने-चुपड़े और लम्बे सिद्धान्तों के फेर में पड़ेंगे, त्यों त्यों ही स्वत्व से दूर होते जायेंगे। मैं देख रहा हूं कि जिन मंदिरों में आठों पहर आप लोग तन्मय रहते थे उन मंदिरों में धूप-दीप भी जलने कम हो गये हैं। वह शिक्षा भी भला क्या हुई, जो आपको आपकी संस्कृति से दूर ले जा फैंके। पाप का विवेक तक भी आपके मस्तिष्क में न रहने दे। स्मरण रहे, जो पुरुष विवेकहीन और धर्मच्युत हो जाता है, उसके लिए मुक्ति का मार्ग सदा सदा के लिए बन्द हो जाता है।"

अभी वह और कुछ कहना ही चाहता था कि अंजना लोगों के सामने जा खड़ी हुई। उसने अर्थपूर्ण दृष्टि से वक्ता महाशय को नीचे से ऊपर तक देखा और बड़े ही प्रभावशाली स्वर में कहा—

"ईंटों और पत्थरों के आगे नाक रगड़ने और माथा ठोंकने से मनुष्य का कल्याण नहीं होता और न ही पुण्य-सञ्चय को मुक्ति-पथ का मात्र सम्बल मान सकते हैं।

पाप और पुण्य मानव की दो पृथक-पृथक धारणाएँ हैं, जो उसी की प्रवृत्तियों और वृत्तियों के अनुसार सार्थक हुआ करती हैं। ढोल, तम्बूरे ज़ोर ज़ोर से पीटकर पत्थर के देवताओं को विफल जगाने का प्रयत्न करने को ही हम क्योंकर संस्कृति का माप-दण्ड मान लें ? मैं मानती हूं कि आस्था और श्रद्धा ही मानव को कर्मठ बनाने की प्रेरणा देती है। परन्तु आस्था और श्रद्धा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होना भी तो आवश्यक है ! ग्यारहवीं शताब्दी में गर्जनाधिपति महमूद ने आप जैसे आस्तिकों और श्रद्धालुओं की कृपा से आर्य्यावर्त को शताब्दियों के लिए दासता की शृंखलाओं में जकड़ दिया था। मुझे उन लोगों पर तो सदैव दया आती है जो पूजा पाठ अथवा कोई भी अपनी धारणा के अनुसार उत्कृष्ट कार्य इसलिए करते हैं कि इस शरीर को छोड़ते समय आगामी यात्रा के लिए पाथेय रूप में कुछ न कुछ पुण्य ही संग्रहित कर लें।

लोभ कैसा भी हो, वह लोभ है। मुक्ति के लिए तो पाप-पुण्य रहित आत्मा ही उपयुक्त होगी। मुक्ति-मार्ग-प्रवासी के मस्तिष्क में तो कोई भी ऐसी व्यवस्था का विचार स्थान नहीं पा सकता, जिसके लिए उसे व्यर्थ में इधर उधर भटकना पड़े। प्रायः देखा गया है कि महापुरुषों का भेद-भाव हीन हृदय सदैव ही परोपकार तथा जन-सेवा में अनुरक्त रहता है। ऐसे प्राणियों का जीवन-मरण दूसरों के निमित्त ही हुआ करता है। उनके पास इतना अवकाश ही कहां कि वह बही-खाते खोल कर पाप-पुण्य का हिसाब जोड़ते रहें। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है। कार्य कर और उसका फल मेरे ऊपर छोड़।' आत्मा के गुण हैं—सत्य, शान्ति और सन्तुष्टि। ये तीनों गुण-रत्न जीवनाध्ययन व

क्रियाशील होने से ही प्राप्त होते हैं।"

एक ग्रामीण ने कुछ आगे बढ़ते हुए कहा—"देवी जी ! हम लोग तो आप दोनों की ही बातें समझने के अयोग्य हैं। हमें आपकी बातों से बल मिलता है। क्रियाशील होने की प्रेरणा प्राप्त होती है। पर बाबा जी के कहने को भी हम लोग नितान्त व्यर्थ कैसे कह सकते हैं, जब कि हम देखते हैं कि ज्यों ज्यों आपके सिद्धान्तों का प्रकाश हमारे यहां प्रसारित हो रहा है, त्यों त्यों हमारी घरेलू व्यवस्था बिगड़ रही है। नारी घर को अपना कार्य-क्षेत्र बनाने की अपेक्षा स्कूलों, कॉलिजों व सरकारी कार्यालयों को अधिक महत्व प्रदान करती है। क्या इससे हमारे गृहस्थ का प्रशासन छिन्न-भिन्न न हो जायगा ? जब नारी पुरुष की सेवा से विमुख हो जायेगी और अधिकार के फेर में पड़ जायेगी तो क्या उसकी कर्त्तव्य-भावना नष्ट न हो जायेगी; और हम उन्नति के शिखर पर पहुँचने से पूर्व ही अवनति के गर्त में न पड़ जायेंगे ?"

बाबा ने एकाएक साहस एकत्रित करते हुए कहा—"यह तो होगा ही। जब धर्म व संस्कृति का अंकुश ही न रहेगा, तो सभी मनमानी करेंगे। चार ही दिनों में सब ढाँचा अस्त-व्यस्त हो जायगा। मैं इसीलिए तो ज़ोर देता हूं कि धर्म व संस्कृति का जड़ोन्मुलन करने का प्रयत्न न करो। नगरों में अधर्म व अत्याचार ने डेरा जमा ही लिया है। यथाशिक्य ग्रामों को इस संक्रामक रोग से सुरक्षित रखो। मैं तो तुम्हें भी यही सलाह देता हूं बेटी ! देश में सात समुद्र पार की सभ्यता न लादो। इससे हम निश्चय ही निर्मूल हो जायेंगे।"

अंजना ने ज़ोर देते हुए कहा—"पर, बाबा ! आपको यह क्योंकर भ्रम हो गया कि मैं सात समुद्र पार की सभ्यता देश पर लादना चाहती हूं। पर आप नारी की कर्मण्यता में अकर्मण्यता का रोग क्यों व्याप्त कर देना चाहते हैं ? आप उसकी परिधि को संकुचित करने पर क्यों तुले हुए हैं ? क्या इस प्रकार दबाए रखने से उसके मानसिक विचारों

का ह्रास न होगा ? आप उसकी स्वतन्त्रता छीनने की अपेक्षा, क्यों नहीं उसे जीवन-क्षेत्र में अपना सहयोगी बना लेते ? इससे उसका स्वाभिमान भी बना रहेगा और उसका समस्त स्नेह मानवी समाज में निःसन्देह जागृति और नवोत्साह का संचार करता रहेगा।''

बाबा ने कुछ देर विचार करने के पश्चात् शान्त व गम्भीर स्वर में कहा—''देवी ! तुम्हारे विचार किसी सीमा तक ठीक हो सकते हैं, परन्तु यह स्वीकार करने से तुम कदापि पीछे न रहोगी कि मानव स्वभाव से एक हिंसक तथा विरोधी प्रकृति का जीव है। अहंकार, क्रोध और छीना-झपटी उसे जन्म से ही प्राप्य हैं। उसकी इन स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर अंकुश रखने के लिए हमें सभ्यता व संस्कृति की पुट में उसे रंग देना अधिक उपयुक्त हो जाता है। तुम्हारी प्रगति उसे स्वाभाविकता की ओर ले जा सकती है। उसे उसके अस्तित्व का आभास करा सकती है; पर यह मत भूलो कि जब जब भी मनुष्य को अपने अस्तित्व का ज्ञान हुआ वह प्रतिशोधी और हिंसक बने बिना न रह सका। जिसका प्रमाण तुम्हारे सम्मुख है। विश्व विजयी सिकन्दर, नैपोलियन एवं हिटलर इसके उदाहरण हैं। युद्ध की नृशंसता और अमानुषिकता व अत्याचार हमें चीख चीख कर कह रहे हैं कि मानव स्वभाव को समाज और संस्कृति के बोझ में इस प्रकार दबाए रखो कि वह हृष्ट-पुष्ट बैलों की भाँति कर्त्तव्य का जुआ धार्मिक अनुष्ठान समझ कर अपने कन्धों पर लादे चुपचाप विचरता रहे। यही एक शान्ति का साधन है।''

अंजना ने आपत्ति करते हुए कहा—''बाबा जी ! इसका तात्पर्य तो यह हुआ कि आप मानव को मानव न बना कर पशु बना देंगे। यदि हमने मानव की चिन्तन-शक्ति उससे छीन ली, तो उसका विकास तो एक ओर, वह कूप-मंडूक बन जाएगा। उसके विचार सीमित हो जाएंगे। तब तो यह मानव पुनः पाषाण-युग की ओर भाग चलेगा, फिर तो शायद तुम्हारे उपदेश और संस्कृति का प्रचार भी निरर्थक हो

जाएगा। पर मैं ऐसा कभी नहीं मान सकती। आप मुझ से बड़े हैं। मैं आपका आदर करती हूं, पर आपके विचार मानव के लिए अपथ्य हैं। इस लिए मुझे तो इनका विरोध करना ही होगा।"

बाबा के पास कोई उत्तर न रह गया। वह देर तक झोंपड़ियों की ओर देखते रहे। उठकर जाते हुए कहने लगे--"अच्छा देवी! मैं भी मानव का शत्रु नहीं हूं, अपनी अपनी धारणाएं हैं। हो सकता है मेरी भूल हो; पर अभी तो जो मैं समझता हूं, वह कहता हूं। कुछ भी है···हमारे पास विचार तो हैं न। हमें मिलते रहना चाहिए। सम्भव है कि हम कभी इस गुत्थी का समाधान कर सकें।"

बूढ़े बाबा चुपचाप कुटी के भीतर चल दिए। उनकी मुख मुद्रा पर अनेकों भावानुभाव परिवर्तित होते देख कर यह निश्चय कर लेना कठिन जान पड़ा कि वह अंजना के लिए कैसे विचार अपने मन में समेटे हुए गए। पर, उन्होंने जाने से पूर्व एक बार एक विचित्र सी दृष्टि से अंजना को ऊपर से नीचे तक देखा था! उनकी दृष्टि में और कुछ नहीं तो फ़ीकापन अवश्य आ गया था। थोड़ी देर पश्चात् अंजना और ग्रामीण भी वहां से चल दिए।

सब के जाने पर बाबा कुटी के बाहर आये और अपने एक शिष्य को कहा—"सोमदेव! अंजना कोई साधारण लड़की नहीं है। उसके तर्कों का उत्तर देना भी कुछ अर्थ रखता है। उसकी वाक्-शक्ति इतनी प्रबल है कि मुझ से उसका सामना करना कठिन है। इसलिए हमें अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए इसे और इसके बापू दयालू चौधरी को रास्ते से हटाना होगा।" साधु बाबा की दृष्टि से एकाएक प्रति-शोध व हिंसा की चिंगारियां फूट पड़ीं। कहने लगे—"सोमदेव! ये लोग भले ही कितने बुद्धिमान हों पर, अभी कुमार गिरि के सम्मुख बच्चे हैं। इनका हठ इन्हें बरबाद कर देगा। आओ मेरे साथ।"

दोनों गुरु शिष्य नदी के किनारे किनारे धीरे-धीरे कुछ मन्त्रणा करते हुए चल दिये।

५

गोधूलि का समय होने को था। दयालु चौधरी कुछ युवकों के साथ गांव की एक गली में से जा रहे थे कि चौराहे में दो छोटे छोटे बालकों को उन्होंने भागते हुए देखा। एक बालक अचानक एक मार्ग में पड़े पत्थर से ठोकर खाकर गिर पड़ा। कुछ देर वेदना से बिलबिलाया और हाथ फैलाकर दयालु चौधरी की ओर चल पड़ा। उसके साथ के छोटे बालक ने जब यह देखा, तो वह एकाएक उन्मत्त सा हो उठा। उसने पूर्ण शक्ति से उस पत्थर पर ठोकर जमाई। पत्थर अपने स्थान से थोड़ा सरक तो गया; पर बच्चे का पांव भी रुधिर-सिक्त हुए बिना न रहा। आश्चर्य की बात तो यह थी कि बच्चा अपने पांव से खून निकलते देखकर रोने और बिलबिलाने की अपेक्षा अधिक क्रोधातुर हो उठा। उसने वही घायल पांव और ज़ोर से पत्थर पर दे मारा, पत्थर रास्ते से हट गया। बालक की छाती प्रसन्नता और उत्साह से फूल उठी। उसके नेत्रों से विजयोल्लास प्रस्फुटित हो उठा। उसने दोनों हाथ आकाश की ओर उठाये और कूदता-फांदता दयालु चौधरी के ठीक सामने आ खड़ा हुआ। चौधरी ने दो क्षण उसके नेत्रों में अपने नेत्र गाड़कर देखा और उसके सिर पर सस्नेह हाथ फेरते हुए धीमे स्वर में बोले—

"जिस धरती के बालक जन्म से ही कर्मठ और दृढ़ आत्मविश्वासी हैं उसके उद्धार में संदेह नहीं हो सकता। किन्तु इससे ठोकर खाकर वापिस लौटने वाली भावना की उपस्थिति ऐसे नर-पुंगवों की क्रिया-शीलता में बाधा अवश्य बन रही है।"

दोनों बालक दयालु चौधरी की बातों को नहीं समझ पाये; पर छोटे बालक ने चौधरी के अनुभावों से कुछ प्रेरणा अवश्य पाई। उसने चमकते हुए कहा—"बापू यह मेरा बड़ा भाई है; पर डरपोक है। चूहे से डर जाता है।"

इस पर बड़े ने खिसिया कर कहा—"हूं, बड़ा आया शेर बबर। इतने ही वीर थे तो उस दिन सांड को अपनी ओर भागते देखकर घर में क्यों घुस गये थे?"

इस प्रश्न का उतर तो छोटा बालक बड़े को न दे पाया; पर अपनी सहायता के लिये वह बापू की ओर देखने लगा। बापू ने उसका आशय समझा, और बड़े शान्त तथा मनमोहक ढंग से बालक की पीठ थपथपाते हुए कहा—"बेटा! बिना प्रयोजन जान-बूझकर गढ़े में कूद पड़ना तो कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। यह जानते हुए कि सांड के सम्मुख ठहरने से अपना या किसी का कुछ लाभ तो हो नहीं जाता; पर प्राण व्यथ ही संकट में पड़ जाते हैं! उस समय वहां से परे हट जाना ही बुद्धिमत्ता थी। परन्तु मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि तुम लोग इतने स्वाभिमानी और दृढ़ संकल्पी बन जाओ कि एक सांड तो क्या, सौ हाथी मिलकर भी तुम्हारे पौरुष का आह्वान न कर सकें। आत्मबल का तेज़ तुम्हारी आंखों में इस प्रकार दीप्त हो उठे कि प्रचंड शार्दूल भी तुम्हारे सन्मुख आकर स्वयमेव झुक जाये। भीरुता का समय बीत चुका है मेरे बच्चो! अब तो तुम्हें संगठित होकर घोर परिश्रम से अपना और अपनी जन्मभूमि का नव-निर्माण करना है। हमारी समस्त आशायें और आकांक्षायें तुम बालकों में ही केन्द्रित हैं। भूल जाओ भय और दासता के शब्दों तक को! फिर देखो तुम महापुरुष बन जाओगे।"

दोनों बालक अधिक समय वहां न ठहर कर दयालु चौधरी को अभिवादन करके कूदते-फांदते चल दिये। चौधरी उन बालकों को निरन्तर तब तक देखते रहे, जब तक कि वे दूसरी गली में न चले गये और फिर धीरे धीरे अपने साथियों के साथ आगे बढ़ गये। एक साथी ने चलते हुए प्रश्न किया—"चौधरी, यह छोटे छोटे अबोध बालक तुम्हारी यह बातें तो नहीं समझ पाते होंगे; पर मैंने कई बार देखा कि तुम बच्चों से भी उतनी ही लम्बी लम्बी बातें कर डालते हो जितनी

कि अच्छे पढ़े-लिखे विद्वानों से या हम लोगों से।"

चौधरी ने मुसकराते हुए कहा—"भागवत भैया! तुम्हारी आयु कितनी होगी?"

साथी ने उत्तर दिया—"पचपन वर्ष।"

चौधरी ने अपनी बात पर ज़ोर देते हुए कहा—"तुमने क्या अपने इन पचपन वर्षों में बच्चों की इस प्रवृत्ति को जानने का प्रयत्न किया है जो आज तुमने अपने कानों से सुना और आँखों से देखा है?"

साथी भागवत ने कहा—"पर इसमें ऐसी कौनसी विशेष बात है, जिसके लिए चौधरी तुम इतने चिन्तित हो उठे हो। सीधी सी तो बात है, वह बड़ा लड़का बेचारा एकदम सीधा है और छोटा उद्दण्ड व हठी है। मुझसे पूछो तो बड़ा बालक जितना सभ्य और धर्मठ सिद्ध होगा; छोटा बालक उतना ही उत्पाती और अड़ियल होगा।"

इस बार चौधरी पुनः हँस दिये और कहने लगे—"भागवत! बुरा नहीं मानना मेरे भाई; छोटा बालक तुमसे अधिक प्रतिभावान सिद्ध हुआ। मेरे विचारों को वह पूर्ण रूप से भले न समझ पाया हो; पर मेरे आशय को कुछ न कुछ अवश्य ही समझ गया था। उसकी आँखों से आत्मविश्वास फूट पड़ता था। उसमें अपने स्वाभिमान के लिए कट-मरने की शक्ति है और दूसरा तुम्हारी श्रेणी का है जिसे कहना चाहिए—भीरू तथा दयनीय। यह तत्व की बातें हैं। इन पर गम्भीरता से विचार करने का प्रयास करो। सम्भव है धीरे धीरे मेरी वक्तृतायें तुम्हारे पूर्व कुसंस्कारों को कुरेद कर अपना स्थान बना सकें। इसीलिए मैं तुमसे भी अधिक महत्व इन छोटे छोटे बालकों को देता हूं, क्योंकि इनकी आत्माएँ निर्मल होती हैं। जो भी समझाओ, इनके अन्तस्तल पर शीघ्र ही अङ्कित हो जाता है।"

बातें करते करते दयालु चौधरी अपने साथियों के साथ गाँव की चौपाल में जा पहुँचे, जहाँ अनेकों ग्रामीण पहले से ही उनकी प्रतीक्षा

में बैठे थे। सभी ग्रामीण उन्हें देखकर सम्मान देने के लिए उठ खड़े हुये। इतने में अंजना भी कुछ औरतों को साथ लिये वहाँ आ पहुँची। चौधरी का संकेत पाकर सभी अपने अपने स्थान पर बैठ गये। चौधरी ने धीरे धीरे कहना आरम्भ किया— 'सहयोगियो! हमारे सम्मिलित श्रम से एक ऐसी सीढ़ी का आविष्कार हो चुका है जिस पर चढ़कर हम निःसन्देह उत्थान की चरम-सीमा को प्राप्त कर सकेंगे; परन्तु यह बात स्मरणीय है कि इस सीढ़ी के पगों का आधार हमारा साहस है। कोई भी दुष्कर कार्य आरम्भ करने से पूर्व आवश्यक है कि अपने आस-पास के वातावरण को अपने अनुकूल बनाकर अपनी घरेलू व्यवस्था को ठीक कर लिया जाये। जहां तक हो सके, विरोधी तत्व को भी अपना सहयोगी बनाया जाए। हमने किसी सीमा तक अपने जीवन का सुधार किया है। खेती बाड़ी में भरसक उन्नति की है। शिक्षा के प्रकाश ने आपकी चिन्तन-शक्ति को पर्याप्त बल दिया है। पर यह समय हमारे लिए और भी सावधान होने का है। जहां हमारी बुद्धि का विकास हो रहा है वहां अनेकों तर्कों के साथ विरोधी व खंडनात्मक प्रवृत्तियों का भी विकास हो रहा है। हम इस समय ऐसे दो-राहे पर खड़े हैं जिनकी गति एक दूसरे से नितान्त भिन्न है। कल से हमारा कार्य-क्रम बदल रहा है। प्रातः दस बजे से पूर्व ही वर्ण-भेद-निवारण कार्य आरम्भ करना है। हरिजनों को सामाजिक रूप से अपने साथ मिलाना है। प्रत्येक पुरुष से नारी के लिए मुक्ति का वरदान मांगना है। लोगों को जड़-पूजा से हटा कर चेतन की सेवा में अनुरक्त करना है। जनता के मस्तिष्क में कूट-कूट कर भरना है कि जन-सेवा से बड़ा पुण्य कोई नहीं है। उन्हें समझाना है कि यदि तुम स्वयं मुक्ति चाहते हो तो दूसरों को मुक्त करो।"

अंजना ने एकाएक उठ कर कहा—"बापू! हमारे सिद्धान्तों का विरोध बढ़ रहा है। अभी कल ही मैंने नदी के किनारे वाले साधु बाबा

को अपने प्रति बहुत विरोधी पाया है। मेरे विचार में एकदम कार्य आरम्भ करने की अपेक्षा हमें और कुछ दिन इसी तरह प्रचार करना चाहिये। जब जनता स्वयं इसके लिए अनुरोध करे तो पग आगे धरना चाहिए।"

दयालु चौधरी ने बात काटते हुए कहा—"समय की प्रतीक्षा कायर व अकर्मण्य किया करते हैं। हमारे सम्मुख कार्य-क्रम दीर्घ है और समय अति तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। कुछ भी हो हमें कल से अपना कार्य-क्रम आरम्भ कर ही देना चाहिए। स्वयं-सेवक अपना अपना कार्य समझ लेवें। ध्यान रहे, कैसा भी विरोध हो, शान्ति से सहन करना होगा। यहां पर हमें पूर्ण अहिंसक बनना होगा।"

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया—"चौधरी! आपको हमने कई बार अहिंसा के विरुद्ध कहते सुना है······फिर आज······"

दयालु चौधरी ने बात काटते हुए कहा—"मैं कोरी अहिंसा के विरुद्ध अवश्य हूं पर, अहिंसा से एकदम विमुख होकर तो मानव और पशु में अन्तर ही नहीं रह जाएगा। कोरी हिंसा व अहिंसा में इतना ही अन्तर है जितना कि सगुण और निर्गुण उपासना में। जिस प्रकार कभी कभी रोगी को रोग-मुक्त करने के लिए नश्तर से चीर-फाड़ भी करनी पड़ती है, वह हिंसा नहीं उपचार ही कहलाता है; इसी तरह अत्याचार व पाप को दूर करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण की भांति सुदर्शन चक्र का प्रयोग भी अमानुषिकता नहीं, प्रत्युत सद्विचार है, विशुद्ध अहिंसा है। या यूँ समझिये कि सौ मृगों की हत्या करने वाले एक दुर्दान्त सिंह की हत्या अहिंसा ही तो होगी।"

ग्रामीण मौन धारण कर बैठ गया। तदनन्तर कुछ अन्य लोगों ने प्रस्ताव रखे।

——

प्रवेश और शशांक द्वारा आयोजित यह तीसरी गृह-सभा थी जिसमें प्रवेश ने गम्भीर स्वर में कहा "राष्ट्र की पूंजी परिमित है और बिना पूंजी के जीवन की आवश्यकताएं जुटानी असम्भव हैं। ऐसी दशा में यदि थोड़े से व्यक्ति समस्त पूंजी अपने घर में एकत्रित कर लें तो दूसरों के उद्धार का केवल एक ही साधन हैं कि हम पूंजी का रूप परिवर्तित कर दें। सिक्कों का स्थान जन-शक्ति को दे देवें। जन-शक्ति द्वारा जो भी उपज हो, उसे परस्पर बांट कर सुखी रहें। पर यह कोई सरल कार्य नहीं है। जो लोग दूसरों के परिश्रम का फल खाने के अभ्यस्त हो गये हैं, उन्हें स्वयं परिश्रम करना असम्भव सा दिखेगा। इससे वह नई नई बाधायें उत्पन्न करेंगे। हमारा अस्तित्व तक नष्ट करने को उतारू हो जायेंगे। कैसे भी हो, सम्बद्ध होकर उनका सामना करना होगा।"

एक कोने से एक व्यक्ति ने उठकर कहा—"इसका तात्पर्य तो यह होगा कि व्यर्थ में मारपीट की नौबत आ जायेगी। और ऐसे समय में यह मार पीट हमें क्षति भी पहुँचा सकती है। फिर यह हम कैसे भूल सकते हैं कि नौकरशाही का प्रभाव जनता पर बहुत पड़ा हुआ है। वह हमारी योजना का उपहास उड़ा देगी। सहयोग के स्थान पर हमें उनसे गालियां मिलेंगी।"

शशांक ने बात पकड़ते हुए कहा—"आपका कहना मुझे भी जँचता है। मेरे विचार में तो हमें पूंजी को उन्हीं के पास पूर्ण रूप से छोड़ देना चाहिए। उपज हमारे पास है। हम क्यों नहीं सब मिलकर कार्य करें, और उपज अपने में ही बांट दें। जब उनको एक दाना भी न मिलेगा, तो भूखों मरने के भय से वे निश्चय ही हमारा सहयोग देंगे। इसके लिए केवल हमें श्रमिकों का संगठन कर लेना ही पर्याप्त होगा।"

प्रवेश ने बात काटते हुए कहा—"शशांक भैया ! यह क्यों भूलते हो कि राज्य शक्ति उनका साथ देगी। वे हमें पीसकर रख देंगे।"

शशांक ने तीव्र स्वर में कहा—"सत्याग्रह करेंगे। हम राज्य से साझी पूंजी और साझे श्रम की योजना में सहयोग मांगेंगे।"

पहले व्यक्ति ने कहा—"भैया ! इसमें सहयोग देने से उनके बड़े बड़े अफ़सरों की ठाठ कैसे चलेगी। उनके मोटर, बङ्गले और नौकर-चाकर कहां जायेंगे ?"

शशांक ने कहा—"जब देश में सभी को समानाधिकार और समान पदार्थ प्राप्त होंगे तो अराजकता दूर हो जाने से हमें इन अफ़सरों और पलटनों की आवश्यकता ही क्या रह जायेगी ! सच पूछो तो गणतन्त्र में पुलिस, कचहरी और लम्बे लम्बे कार्यालयों का होना ही गणतन्त्र का अपमान है। गणतन्त्र उसका नाम है कि किसी को किसी से शिकायत न रहे। सभी अपने अपने कर्त्तव्य का पालन करें। खायें पीयें और सुख से रहें।"

प्रवेश ने कहा—"शशांक ! तुम्हारे विचार उपेक्षणीय नहीं हैं, ऐसा हो सकता है। पर, यह बहुत लम्बा साधन है। जनता का कुछ विश्वास नहीं कि इतनी लम्बी यात्रा में किस समय हमारा साथ छोड़ दे। इसके लिए हमें जो भी कुछ करना हो वह एकाएक कर लेना होगा।"

शशांक ने आपत्ति की—"पर इस प्रकार जनता का स्थायी विश्वास प्राप्त किये बिना तो हमारा सब किया कराया कभी भी मिट्टी में मिल सकता है। जनता को अपने विश्वास में लिए बिना कोई भी कार्य करना हानिकर होता है। इसका उदाहरण जर्मनी का हिटलर तुम्हारे सम्मुख है। इतनी भीषण व विस्फ़ोटक शक्ति का स्वामी धूल में मिल गया और उसी के देशवासी उसे आज गालियां

देते हैं।"

एक व्यक्ति ने शशांक की बात का समर्थन करते हुए कहा—"शशांक भैया ठीक कहते हैं। इनके प्रस्ताव पर विचार कर लेना चाहिए।"

इस पर प्रवेश ने कहा— "भाई ! मैं शशांक की बात को वस्तुतः अस्वीकृत तो नहीं करता, पर आठों पहर केवल चिन्तन करने से ही तो कार्य नहीं हो जाता। मैं समझता हूं हमारे आस-पास का वातावरण तो अब भी हमारा समर्थक है।"

शशांक ने कहा -- "वह क्योंकर ?"

प्रवेश ने उत्तर दिया— "हमारे आस पास के ग्रामों का ढाँचा तो दयालु चौधरी और उनकी पुत्री अंजना देवी द्वारा एकदम हमारे अनुकूल बन गया है। वहां से सरकारी मोहरों का लगभग बहिष्कार हो चुका है। सभी ग्रामीण मिल जुल कर कार्य करते हैं और सुख से रहते हैं। कल सूचना मिली है कि उन्होंने वहां के हरिजनों को भी शुद्ध करके अपने साथ मिला लिया है। वहां की स्त्रियां भी पुरुषों के साथ बड़े उत्साह से निर्माण कार्य में जुट गई हैं। जब मूढ़ ग्रामीणों में वे दो पिता-पुत्री इतनी जागृति उत्पन्न कर सकते हैं तो क्या हम इतने सारे व्यक्ति ये कार्य न कर सकेंगे।"

शशांक ने कहा— "परन्तु उन्हीं के शान्तिपूर्ण मार्ग पर चलकर ही हमें कार्य करना होगा।"

प्रवेश ने कहा— "नहीं भैया ! यह बात यहां पर लागू न होगी। भोले-भाले ग्रामीण सो रहे थे, और ये नागरिक मचले पड़े हैं। वे ग्रामीण जो कुछ करते थे वह अनजाने में; और यह लोग जो कुछ करते हैं अच्छी तरह सोच विचार कर। यह मत भूलो कि ग्रामीण पोषक हैं और जिनका हमारे साथ सम्बन्ध है वे हैं शोषक। इसलिए इन मचले पड़े शोषकों के साथ तो कड़ा व्यवहार करना ही

होगा। हमे उनके विरुद्ध लड़ाई लड़नी होगी। उनकी सत्ता को आह्वान करना होगा।''

शशांक ने कहा— ''प्रवेश ! तुम्हारा यह हठ अनधिकार चेष्टा सिद्ध होगा और अनधिकार की चेष्टा मानव को उसकी मनोवृत्तियों के अनुसार पतन के अन्धकूप में ले जा फेंकती है। उसका हठ व उसकी महत्वाकांक्षा उसी के स्वाभिमान को नष्ट भ्रष्ट करके उसे पतित विज्ञापित करने की स्पर्धा करती रहती है और यही स्पर्धा प्रायः मानव को समाप्त करने के लिए अमोघ-शक्ति का कार्य भी कर दिया करती है।''

प्रवेश ने निरुत्तरप्राय होकर कहा— ''तो फिर हमें क्या करना चाहिए ? इसी तरह मात्र विचार विनिमय करते रहने से ही तो कुछ कार्य न हो जायेगा।''

सभी की दृष्टि इस बार शशांक पर गड़ चुकी थी। सभी को उसकी दूरदर्शिता व प्रतिभा पर विश्वास था। शशांक ने अतीव ही मधुर स्वर में आश्वासन सा देते हुए कहा— ''घबराने की आवश्यकता नहीं प्रवेश ! प्रत्येक कार्य को समय चाहिए। एक ही बार सौ घड़े सींचने से तो एकाएक खेती नहीं पक जाती। अभी हमें अपनी शक्ति को और बढ़ाने के लिए अपने निकटवर्ती सम्बन्धों को दृढ़ करना होगा। जिन लोगों से हमें आशा है, उसके विचार विमर्श भी कर लेना चाहिए। इसके लिए मेरा प्रस्ताव है कि हम दयालु चौधरी व अंजना को यहां अपने बीच निमंत्रण दें। फिर जो निर्णय सब लोग मिलकर करें, उसी के अनुसार आगामी कार्य-क्रम बना लिया जाएगा।''

उपस्थित कार्यकर्ताओं ने भी इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। प्रवेश श्रद्धापूर्वक शशांक की ओर निहारता रह गया और प्रशंसात्मक वाणी में गद्‌गद्‌ हो कर कहने लगा— ''शशांक ! तुम बड़े विलक्षण हो। तुम्हें देखकर यह धारणा बदलनी पड़ती है कि कवि केवल

कल्पना प्रधान ही होता है।"

इसके पश्चात् सभी एक दूसरे से अन्य अन्य बातें करने लग गये। शशांक ने पुनः कहा— "तो प्रवेश ! दयालु चौधरी और अंजना देवी को निमन्त्रण पहुँचाने का प्रबन्ध कर दिया जाए। हो सके तो परसों मध्याह्न को इसी प्रकार की एक गोष्ठी में उनसे भेंट हो जाय।"

प्रवेश ने आगामी कार्य-क्रम निश्चित करके एक कार्य-कर्त्ता को दयालु चौधरी के पास सन्देश ले जाने को कह दिया और सभा विसर्जित कर दी गई।

— —

७

प्रातः के लगभग नौ बजे का समय था। अंजना और दयालु चौधरी जलपान करने को बैठे तो ताक में भीगी मक्का की रोटी का एक टुकड़ा मुंह में रखते हुए अंजना ने कहा - "बापू! यहां का वातावरण तो दिनों दिन बिगड़ रहा है। साधू बाबा के विरोध ने तो हमें इतनी उलझन में डाल रखा है कि कुछ करते नहीं बनता। सच पूछो तो यहां रहकर मैं स्वयं अपने आप में भी शिथिलता अनुभव करती हूं। कितना ही इन लोगों को समझाओ-पढ़ाओ, ये वहीं के वहीं हैं। मेरे विचार में बापू! हम इनके लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं यदि अपनी परिधि को और विस्तृत करें। शहर में इन दिनों सुना है बहुत आंदोलन चल रहा है। क्यों न हम लोग भी उन से जा मिलें। इससे हमारा क्षेत्र बढ़ जायगा।"

बापू ने शान्त भाव से कहा— "तुम्हारा प्रस्ताव बुरा नहीं बेटी! किन्तु समय आने पर सब ठीक हो जाएगा। सच्ची लगन से कार्य करती चलो, शहर के कार्यकर्त्ता स्वयमेव तुम्हारे साथ आ मिलेंगे। मुझ पर विश्वास करो अंजना! तुम्हारा प्रयास कभी भी निष्फल नहीं होगा। तुम्हारा क्षेत्र अपने आप बढ़ जाएगा।"

इसी प्रकार पिता पुत्री का संवाद चलता रहा। दोनों ने जलपान समाप्त किया तो भागवत अपने साथ एक युवक को लेकर प्रविष्ट हुआ। दोनों ने दयालु चौधरी व अंजना को अभिवादन किया। भागवत ने नवागन्तुक से दोनों का परिचय कराया। शिष्टाचार के पश्चात् युवक ने अपना संदेश सुनाया और अपनी समिति की ओर से शशांक का लिखा हुआ निमन्त्रण-पत्र दयालु चौधरी के हाथ में दे दिया। चौधरी ने एक सांस में निमन्त्रण-पत्र पढ़ कर अंजना को दे दिया और पुलकित भाव से कहा— "भैया! हमारा अहोभाग्य कि आप ने हम दोनों को किसी योग्य समझा। अंजना तो मुझे आज

भी आप लोगों से शहर पहुँच कर मिलने के लिए ज़ोर दे रही थी। हमें आप लोगों से मिलकर बहुत प्रसन्नता होगी। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि हमारा स्वप्न सत्य हो जाएगा।"

युवक ने विनीत स्वर में कहा— "तो आप कब तक हमारे यहां पधारेंगे ?"

दयालु चौधरी ने दो क्षण अंजना की ओर देखा। अंजना ने उसके मन्तव्य को समझते हुए उत्तर दिया— "ऐसे कार्यों में पग उठाने से पूर्व अपने सहयोगियों से मन्त्रणा करनी भी तो आवश्यक है। इसके लिए आज ही सन्ध्या को यहां की स्थायी कार्यकारिणी की बैठक बुलाकर आपका प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाएगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपका यह पत्र सभी के लिए अभिनन्दनीय होगा, और हम शीघ्रातिशीघ्र आपके सभी कार्य-कर्त्ताओं के दर्शन कर सकेंगे। तब तक के लिए आप यहीं विश्राम कीजिए। कल प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही हम अपना निर्णय आपको बता देंगे। यदि कार्य-क्रम बन गया, तो सम्भव है कि आपके साथ ही साथ हम सदल शहर की ओर चल देंगे।"

दयालु चौधरी ने अन्य कोई बात करनी आवश्यक न समझी, और वह युवक भागवत के साथ नमस्कार करता हुआ वहां से चल दिया। उन लोगों के जाने के पश्चात् दयालु चौधरी भी विचार निमग्न होकर कुटी से बाहर चले गये। अंजना ने शशांक द्वारा लिखे हुए पत्र को आद्योपान्त कई बार पढ़ा। वह पत्र की भाषा और गम्भीरता में खो सी गई। अचानक उसकी आँखें बन्द सी हो गईं और उसके कानों में एक चिरपरिचित तथा मधुर गीत गूंज उठा —

"बढ़ रही तमिस्रा मानस में,
कहने को दीप जलाते हैं !"

अतीत उसकी आँखों के सामने वर्त्तमान बन कर नृत्य करने

लगा। अचानक उसकी अर्द्धोन्मीलित आँखों ने एक मनोहर छवि देखी। वह छवि एक सुन्दर और सुलझे हुए प्रतिभाशील युवक की सप्राण व चैतन्य प्रतिमा दिख पड़ी। चैतन्य प्रतिमा के सतेज नेत्र वर्तमान की तमिस्रा को मिटा कर भविष्य की ज्योति में परिवर्तित कर रहे थे। जहां जहां तक दृष्टि पहुँच रही थी, वहां वहां उज्ज्वलता ही उज्ज्वलता दिखाई देने लगी। अंजना को बहुत स्मरण करने पर भी यह न सूझ पाया कि उसने उस मनोहर छवि को कहाँ और कब देखा था, परन्तु उसे प्रेरणा अवश्य मिल रही थी। उन्हीं मधुर भावनाओं में विगलित होकर वह एकाएक चिल्ला उठी— 'मार्ग हमारे सम्मुख है, उज्ज्वलता हमारी अग्रदूति है, कार्य-कर्त्ताओं की शक्ति हमें सहयोग देने को कटिबद्ध है, नि:सन्देह सफलता हमारे चरण चूमेगी, हम अवश्य शहर जाएंगे। जागृत मानवों ने हमारा आह्वान किया है। हम उनके आह्वान का अभिनन्दन करेंगे।" इसी तरह बड़बड़ाती हुई आँखें बन्द किये कुटी के द्वार तक आ पहुँची और साहसोत्पादक स्वर में बोली— "बापू! सन्देशवाहक को कह दो कि कल हम उसके साथ ही चलेंगे। हमें वहाँ जाना ही होगा।"

दयालु चौधरी जब तक ठीक उसके सामने आ खड़े हुए थे। शान्त स्वर में बोले - "हाँ बेटी! हमें वहाँ जाना ही होगा। उनके सप्रेमाह्वान को कौन ठुकरा सकता है। वहाँ पहुँच कर कुछ मिले न मिले, हमें उन लोगों का अपरिमित प्यार और उत्साह अवश्य प्राप्त होगा। रात की बैठक के लिए मैंने कार्य-कर्त्ताओं को सन्देश भिजवा दिया है, परन्तु हमें वहां जाने से पूर्व यहाँ की व्यवस्था को भी कुछ ठीक करके ही जाना होगा। कुछ गण्यमान्य कार्य-कर्त्ताओं को कार्य समझाकर यहीं छोड़ देना होगा।"

अंजना ने एकाएक सुझाव देते हुए कहा— "बापू! यदि तुम्हारी अनुमति हो तो मैं अपनी सहयोगिनी कार्य-कर्त्रियों को भी

अपने साथ वहां ले चलूं । क्योंकि मैं समझती हूं कि कार्य-क्षेत्र एक होते हुए भी तो हमारा और तुम्हारा कार्य-क्रम तो भिन्न ही रहेगा, और मैं कहां तक अकेली भागती दौड़ती फिरूंगी ।"

दयालु चौधरी ने तर्क करते हुए कहा—"हां, यह तो होगा ही. परन्तु महिलाओं को और फिर ग्राम्य महिलाओं को अपने साथ ले जाने में ग्रामीणों को आपत्ति अवश्य होगी । हो सकता है कोई बखेड़ा खड़ा हो जाये, उसके लिए भी तुम्हें तैयार रहना होगा । ध्यान रहे, तुम्हारे साधु बाबा का तुझ पर अब भी उतना ही स्नेह है जितना कि पहले था, उनके हृदय में तुम्हारे प्रति जो भावनाएं पहले थीं वह अब भी हैं किञ्चित् सतर्क होकर काम करना ।"

अंजना ने पुलकित भाव से उनकी ओर देखा और नेत्र झुकाते हुए कहा — "बापू ! तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए । मैं सब निबट लूंगी । जब तक कार्य-कर्त्रियों के हृदय में सहयोग की भावना जीवित है, उन्हें मेरे साथ जाने से कोई नहीं रोक सकता । साधु बाबा के उपदेशों का प्रभाव वहां तक ही पड़ सकता है, जहां मेरी गति नहीं । जहां पर तुम्हारे विचार नहीं पहुँच सके । पीठ पीछे तो कोई भी किसी की निन्दा कर सकता है पर विरोध वही कहलाता है, जो सामने डटकर किया जाय । साधु बाबा का समस्त कार्य-क्रम जीर्ण-मन्दिरों की अन्धेरी गुफाओं में सम्पन्न होता है, और हम सूर्य के खुले प्रकाश में दोनों हाथ ऊंचे उठाकर जनता को बुलाते हैं ।"

बापू ने संतोष पूर्ण दृष्टि से अंजना को देखा, और कहने लगे—"मैं तो समझता था कि यहां आकर केवल तुम्हारे अंग-प्रत्यङ्ग ही कार्य करते हैं; पर आज विदित हुआ कि नहीं, तुम्हारी वाणी में आज भी वही ओज़ है जो गांव में प्रथम बार प्रविष्ट होते समय था । जाओ बेटी, बहुत थोड़ा समय शेष है । यहां से प्रस्थान करने से पूर्व जो करना है कर लो । बैठक का समय सन्ध्या के सात बजे है तब तक लौटने का प्रयत्न करना । मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा ।"

८

दयालु चौधरी और अंजना अपने सहयोगी दल के साथ जब शहर पहुँचे तो तीन प्रहर दिवस व्यतीत हो चुका था। सड़कों पर बीहड़ यातायात के कारण बेरोक-टोक गुज़रना कठिन हो रहा था। उस कोलाहलमय वातावरण में से गुज़र कर ये सभी लोग संदेश-वाहक युवक के कथनानुसार निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ पर कुछ व्यक्ति पहले से ही उनकी प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। युवक ने प्रवेश और शशांक के साथ उन लोगों का परिचय करवाया। शशांक को देखते ही अंजना एकाएक चौंक पड़ी। परिचय से पूर्व ही उसके मुख से अकस्मात् ही निकल पड़ा -- "कविवर शशांक...... ।"

और शशांक ने भी तुरन्त ही कुछ स्मरण करते हुए कहा — "शिवालक की राजकुमारी अंजना...... !"

अंजना ने सम्हलते हुए स्वस्थ भाव से कहा-- "कभी थी, परन्तु अब केवल अंजना ही हूं, कार्य-कर्त्री अंजना। निमन्त्रण तो आप का ही लिखा हुआ था न ?"

प्रवेश ने बीच में ही मधुर व्यंग्य करते हुए कहा-- "क्यों, आपको संदेह है ? भई, हम तो कोरे सिपाही हैं। या यूं कहो कि चिन्तन का भार शशांक पर है, और उसके अनुसार कार्य करना हमारा कर्त्तव्य है।"

कुछ देर तक इसी प्रकार दोनों ओर के कार्य-कर्त्ताओं में परिचय व शिष्टाचार चलता रहा। बातें करते करते शशांक व अंजना एक अलग कमरे में एकान्त पाकर जा बैठे। शशांक ने आसन जमाते हुए पूछा— "अंजना देवी ! क्या मैं यह पूछने की धृष्टता कर सकता हूं कि आप शिवालक से कब चलीं और आपके पूज्य पिता जी महाराज अजयसिंह जी उस समय कहां थे ?"

अंजना— "अतीत बहुत भयानक है, मैं आपका कौतूहल अवश्य शान्त करूँगी। जिस दिन आप अपने कवि-मण्डल के साथ वहां से चल दिए, उसी दिन मेरे चाचा कर्णसिंह ने एकाएक विद्रोह खड़ा कर दिया। आधी रात के समय कुछ सुसज्जित साथियों के साथ उसने महल में प्रवेश किया। पिता जी के शयन-कक्ष से चीत्कार व कोलाहल मैंने अपने कानों से सुना, पर ज्यों ही मैं बाहर आकर चबूतरे पर खड़ी हुई उसी समय महासामन्त ने हांफते हुए प्रविष्ट हो कर पिता जी की मृत्यु का समाचार दिया और मुझे बरबस अपने संग घसीटते हुए नगर से बाहर ले आए। वहां पर दो तीव्र-गामी अश्वों पर सवार होकर हम ठीक जंगल में जा पहुँचे।"

शशांक ने बात पूर्ण करते हुए कहा— "और वहीं से सीधे पर्वतीय बस्तियों में......। फिर वहीं महासामन्त, दयालु चौधरी बन बैठे।"

अंजना ने प्रभावित होते हुए कहा— "जान पड़ता है कि आपको सभी कुछ विदित है।"

शशांक ने कहा— "हां, मुझे आप से भी अधिक जानकारी प्राप्त है।"

अंजना ने उत्सुकता से पूछा— "क्या शिवालक के विषय में भी कुछ बतला सकते हैं कि वहां क्या हो रहा है?"

शशांक ने उत्तर में कहा—"हां बहुत कुछ, अंजना देवी जी! आपके पिता जी अभी तक जीवित और सुरक्षित हैं।" तदनन्तर वह अंजना की ओर जिज्ञासु नेत्रों से निहारने लगा। अंजना की विस्मय से जैसे चीख़ सी निकल गई। उसने कहा—"क्या कह रहे हैं कविवर! यदि यह बात है तो हम बहुत कुछ कर गुज़रेंगे। उनका सहयोग तो हमारे लिए सोने पर सुहागा सिद्ध होगा। शीघ्र कहिए कि वह कहां है?" शशांक ने शांत भाव से कहा, "धैर्य रखिए; आप उनसे शीघ्र ही मिलेंगी।"

किन्तु अंजना को यह जानकर कि उसके पिता जीवित हैं, उनसे बिना मिले धैर्य कैसे होता ? उसने बड़े ही विनीत भाव से प्रार्थना की—"नहीं कविवर, अब मुझसे धैर्य नहीं होने का। जब तक मैं उनके दर्शन न कर लूंगी, मुझसे कुछ न हो पाएगा।"

शशांक ने आश्वासन देते हुए कहा—"उनसे हम कुछ दिन तक नहीं मिल सकेंगे। यह एक रहस्य है जो अपने आप समय आने पर स्पष्ट हो जाएगा। वह इस समय एक अनिवार्य योजना का नेतृत्व कर रहे हैं। और इस योजना की पूर्ति तक उनका गुप्त रहना ही उनके और हम सब के लिए हितकर होगा। तथा यह भी स्मरण रखिए कि यदि हम एक क्षण के लिए भी शिथिल पड़ गये तो हमें निःसन्देह मुंह की खानी पड़ेगी। शायद तुम्हें एक बात का अभी तक पता नहीं।"

अंजना ने उत्सुकता पूर्वक पूछा—'कौनसी बात ?'

शशांक ने उत्तर दिया—'विरोधी पक्ष ने हमारी योजना को विफल करने के लिए एक घोर कूट-नीति का आश्रय लिया है।'

'वह क्या ?'

'ग्रामीणों को हमसे उदासीन करने के लिए उन्हें नदी का पानी बन्द कर देने की धमकी दी है। इससे बेचारे निरीह पर्वतीय बहुत विचलित हो उठे हैं।'

'परन्तु हम लोग तो कल ही वहां से चले हैं, तब तक तो ऐसा कोई भी समाचार हम नहीं सुन पाए।'

शशांक ने अपनी बात पर बल देते हुए कहा—'हां, विपक्षी कोई भी विरोधी कार्य तुम्हें बताकर ही तो नहीं करेगा। उन लोगों ने आज प्रातःकाल ही यह घोषणा ग्रामों में करवाई है। और भी अनेकों साधनों द्वारा वहां की जनता को तुम्हारे विरुद्ध होने पर बाध्य कर रहे हैं। सूचना मिली है कि इस कार्य का सूत्रधार वहाँ का एक वृद्ध साधु है जिसका नाम कुमारगिरि है। वह नदी के किनारे अपने दस-बारह चुने

हुए शिष्यों के साथ रहता है। उसने गत रात्रि को तुम्हारी अनुपस्थिति पाकर घर-घर में जाकर बलपूर्वक लोगों को अपने साथ मिलाने का प्रयत्न किया है। अभी तक सुना है कि तुम्हारे मित्र उससे होड़ ले रहे हैं, परन्तु नदी का पानी बन्द हो जाने के भय से कब तक विचलित न होंगे ?"

अंजना ने चिन्तित होते हुए प्रश्न किया—"तो इसके लिए आपने क्या निर्णय किया है ?"

शशांक ने उत्तर दिया—"हमें वहां की जनता को सुरक्षित रखने के लिए प्राकृतिक झरनों का जल नदी में लाना होगा।"

अंजना ने आपत्ति की—"परन्तु यह मार्ग तो बहुत लम्बा जान पड़ता है। सम्भव है उस पथरीली और ऊबड़-खाबड़ पृथ्वी को खोदने में हमें कई महीने लग जाएँ। तब तक क्या वहां की जनता धैर्य धारण कर सकेगी ?"

शशांक ने सान्त्वना देते हुए कहा—"इसकी चिन्ता मत कीजिए देवी जी! जो घोषणा विपक्षी दल ने कल कराई है उसकी सूचना हमारे कुशल-गुप्तचरों ने एक मास पूर्व ही दे रखी थी और तभी से ही एक कुशल वैज्ञानिक के निरीक्षण में यह कार्य गुप्त रूप में सम्पन्न हो रहा है। यदि दो दिन तक और अवधि किसी प्रकार प्राप्त हो सकी तो निश्चय ही तब तक झरनों का स्वच्छ जल एक अपरिचित मार्ग से होकर उस नदी में आ गिरेगा। इस समय आवश्यकता है तो केवल इस बात की कि पर्वतीय जनता को हम दो दिन तक किस प्रकार सम्हाल सकें ?"

अंजना ने सुझाव देते हुए कहा—"क्यों न हम किसी प्रकार वहां की जनता में इस बात का कानों कान प्रचार करवा दें कि नदी का पानी बन्द कर देने की घोषणा कपोल-कल्पित है।"

शशांक ने इस बात का समर्थन किया और कहने लगा—"मेरा

भी यही सुझाव था और इसी सुझाव पर आज मध्य रात्रि में विचार-विनिमय होगा। तब तक चलो, मैं आपको अपने साथी प्रवेश की माता से परिचय करवा दूँ। उनके बारे में मैं केवल इतना ही कह देना पर्याप्त समझता हूं कि वे ममता की साकार व सजीव प्रतिमा हैं। उन्हें मां कह देने के लिए किसी के भी हृदय में उत्सुकता जाग उठती है।"

इसी प्रकार कुछ और इधर-उधर की बातें करते हुए वे अल्मोड़ा की छोटी-मोटी गलियाँ पार कर रहे थे। लगभग आध घन्टा निरन्तर चलने के पश्चात् शशांक ने अंजना को एक छोटे से मकान के आगे ले जाकर खड़ा कर दिया और द्वार की कुण्डी खटखटाई। एक वृद्धा ने द्वार खोलते ही कहा—

"कौन—शशांक! आओ, भीतर आओ।"

शशांक ने मां को रोकते हुए कहा—'मां! यह अंजना देवी जी हैं जिनके बारे में एक बार प्रवेश ने तुम्हें बताया भी था। यह आज से हमारे यहां ही रह कर हमारे कार्य में हाथ बटाएंगी।"

मां ने सस्नेह दृष्टि से अंजना को ध्यानपूर्वक देखा और विनोदपूर्ण स्वर में कहा—"क्यों बेटा! यह तुम्हारे खेत में हल तो खूब चला सकेगी न? या रहट से पानी खींचेगी? वैसे तो हम लोग भी इसकी उमर में खेतों में अनाज फटकती रही हैं।"

फिर अंजना को सम्बोधित करते हुए कहा—"बेटी! तुम तो कोई राजकुमारी सी जान पड़ती हो। तुम्हारे यह फूल से हाथ एक ही दिन में दुखने लग जाएंगे।"

अंजना ने शान्त भाव से कहा—"मां! दुखने लगेंगे तो क्या! काम करते करते अपने आप दृढ़ हो जाएंगे। आपका आशीर्वाद चाहिए, फिर आप देख लेना कि यह हाथ सीधी धरती तो क्या ऊबड़-खाबड़ पथरीली धरती को भी खोद कर अपने अनुकूल बनाने में समर्थ हो जाएंगे।"

यह कहते कहते अंजना के नेत्रों में स्फूर्ति और तेज टपकने लग गया। मां ने आगे बढ़ कर उसका माथा चूम लिया और सीने से चिपकाते हुए पीठ थपथपाने लगी। उसके नेत्रों से आनन्द के अश्रु बहते हुए देख कर शशांक की कविता जाग उठी। उसने आलोड़ित होते हुए कहा—'मां! जान पड़ता है सृष्टि का समस्त स्नेह तुमने ही अपने में समेट रखा है। ऐसे ही स्थलों पर तुम्हें बार-बार प्रणाम करने को जी चाहता है।"

माँ ने किंचित् सम्हलते हुए कहा—"चल, बहुत बात न बनाया कर। जब देखो झट से कविता गढ़नी आरम्भ कर देता है। रहा न कवि, कोरी भावना का पुजारी! अरे पगले, इतनी दूर से चल कर आई हैं, कुछ जल-पान करा। दो घड़ी विश्राम कर लें, फिर जितनी चाहो बातें कर लेना।"

शशांक जैसे लज्जित सा हो गया और धीरे धीरे मां के पीछे-पीछे चल दिया। मां ने दोनों को चौके में बिठा कर कुछ गुड़ की मट्ठियां और दही की लस्सी सामने परस दी। दोनों साथ साथ प्रशंसा कर रहे थे और खाते जा रहे थे। पर मां को उस समय प्रशंसा सुनने का अवकाश ही कहां था। उसकी दृष्टि तो दोनों की थालियों पर थी। जो भी थाली कुछ खाली दीख पड़ती उसे वह पुनः भर देती। दोनों ने पेट भर कर खाया पीया। अभी वह हाथ ही धो रहे थे कि दयालु चौधरी को साथ लेकर प्रवेश भी आ धमके। उसने आते ही कहा—"क्यों कवि महाशय! तुम प्रत्येक कार्य में आगे आगे ही चलते हो? माना कि तुम बुद्धि में मुझ से बहुत आगे हो, पर खाने के सिलसिले में भी पहले ही बाज़ी ले जाते हो।"

शशांक ने एकाएक गम्भीर सा होकर कहा—"अरे, पर कभी सभ्यता भी तो सीखो, भले आदमी! घर पर आये अतिथियों का ऐसे ही सम्मान करते हो तुम?"

प्रवेश ने बिना सोचे समझे ही उत्तर दिया--"पर महाशय, आप कब से अतिथि बन गए ?"

शशांक ने कहा—"मैं तो अतिथि नहीं, पर अंजना देवी और दयालु चौधरी तो आज ही पधारे हैं। और नहीं तो अपने नियम के अनुसार तीन दिन और तीन रात तक तो अतिथि ही कहलाएंगे।"

प्रवेश ने नाश्ता करते हुए आंखें मूंद कर और कान छू कर कहा—"ओह, भई, भूल हो गई। अतिथि गण ! इस असभ्य व्यवहार के लिए मैं आप से क्षमा चाहता हूं।"

इस पर मां अपनी हंसी न रोक सकी; और ज़ोर से हंसने लगी। कुछ क्षण सब ने एक दूसरे को देखा और फिर पाँचों व्यक्ति फ़व्वारे की तरह खिल पड़े। अंजना ने विषय परिवर्तित करते हुए कहा—"बापू तुम कहां रह गए थे ?"

बापू ने हंसते हुए उत्तर दिया—"अरे बेटी ! हमारा क्या है। जहां किसी ने कहा बैठ गये, और जहां किसी ने कहा, चल दिये। और फिर भई, तुम सब समवयस्क हो। तुम्हारे साथ पग मिलाकर चलने का सामर्थ्य मुझ बूढ़े में कहां ?"

शशांक ने चुटकी लेते हुए कहा—"शिवालक के पराक्रमी महासामन्त की वृद्ध और पुरानी हड्डियों में अब भी जो दृढ़ता है वह शिवालक को चारों ओर से प्राचीर की भांति घेरे रखने वाली गिरिशृंखलाओं को भी लज्जित करती हुई जान पड़ती है। महासामन्त ! हमें बनाने का प्रयत्न मत कीजिये। आपके बल बूते पर तो हम लोग इतना बड़ा कार्य करने की स्पर्धा कर रहे हैं।"

मां ने प्रवेश और दयालु चौधरी के हाथ मुंह धुलाये और बिठाकर जलपान कराना आरम्भ कर दिया। खाते खाते प्रवेश ने गम्भीर होकर कहा—"शशांक ! मैंने चौधरी जी को सब कुछ बता दिया है और आशा है कि तुमने भी अंजना जी को सब कुछ समझा दिया होगा।"

शशांक ने आश्वासन देते हुए कहा—"हां, हमारी काफी बातचीत हो चुकी है। अब तो रात्रि की कार्य-कारिणी बैठक में निर्णय होने का विलम्ब है।"

इस बार चौधरी ने दीर्घ विचार करते हुए कहा—"मेरे विचार में हम दोनों में से तो किसी का भी उस क्षेत्र में जाना विपक्षियों को सजग कर देगा; पर यह सम्भव है कि वे अपने कार्य-क्रम का दृष्टिकोण बदल दें। और ऐसा होने से हम लोग पुनः अन्धकार में जा पड़ेंगे। और फिर जहां से खुदाई करके पानी लाया जायगा, वहां की धरती का चप्पा चप्पा अंजना के रक्त का प्यासा है। किसी भी सूत्र द्वारा कर्णसिंह के कानों में यह भनक जा पड़ी कि उसकी भतीजी उसकी परिधि में जीवित फिर रही है तो उसकी समस्त राजशक्ति उसे कुचलने के लिए कटिबद्ध हो जाएगी। इस कार्य के लिए क्यों न हम उस क्षेत्र में ऐसे अपरिचित व्यक्तियों को भेजें, जिन्हें कोई न पहचान सके।"

शशांक ने चौधरी की बात का समर्थन किया और कहा—"कि यदि आज्ञा हो तो मैं अपने साथ किसी भी एक कार्यकर्त्ता को लेकर वहाँ पहुँच पाऊँ।"

प्रवेश ने भावोद्रेक में कहा—"नहीं शशांक! वहां प्राणान्त संकट पड़ने की सम्भावना है। मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगा। देखो, तुम अंजना जी और चौधरी जी के साथ मिलकर यहां का कार्य भली प्रकार सम्हाल ही लोगे। बस, और फिर तुम्हें तो भली प्रकार विदित है कि मैंने कॉलेज की स्टेज पर मुनी नारद का कितना सफल अभिनय किया था। बस, एक बार पुनः नारद भगवान बन लिया जाएगा।"

मां ने भी प्रवेश की बात पर स्वीकृति की मोहर लगा दी और कहा—"शशांक! प्रवेश की बात का मैं हृदय से समर्थन करती हूं। इसे उस प्रदेश में कोई नहीं जानता, और तुम हो कि इस प्रदेश की दशों दिशाओं में विख्यात हो। पर्वत के ग्रामीण हल चलाते हुए तुम्हारे गीत

अलापते हैं। पर, वे ऐसे विरोधी व विशाक्त वातावरण में तुम्हारे मधुर गीतों के कारण तुमसे प्यार नहीं करेंगे। अपितु, तुम्हें बीच में पाकर तुम्हारे प्राणों के ग्राहक बन बैठेंगे। जो कल तक चौधरी जी और इनकी पुत्री के प्रभाव से पूर्ण सभ्य और श्रद्धालु जान पड़ते थे वह पूरे हिंसक बन चुके हैं। विपक्षियों की वाक्पटुता ने उनके हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला प्रज्ज्वलित कर दी है। वह इस समय ज्ञान शून्य हैं।"

इस पर शशांक ने मां के चरण पकड़ कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—नहीं मां ! मुझे प्रवेश से विलग होने के लिए बाध्य न करो। इसके यहां से चले जाने पर मेरी सभी प्रतिभा समाप्त हो जायेगी। मेरे अंगप्रत्यंग और वाणी में शिथिलता आ जाएगी। मैं लम्बे लम्बे सिद्धान्तों को सुलझा सकता हूं; पर इसी के आश्रय से। तुम्हें स्मरण है मां, मैंने एक दिन अपने वृद्ध शिक्षक की बात सुनाई थी। उन्होंने कहा था--'शशांक ! प्रवेश तुम्हारे सक्रिय जीवन का प्रवेश द्वार है। कोई भी कार्य करो, इसके सहयोग से करो।"

मां ने आपत्ति करते हुए कहा—"पर, यह भी तो प्रवेश की इच्छा से ही होगा। वृद्ध शिक्षक ने भी तो तुम्हें सूक्ष्म बनकर इसकी आत्मा में घुसने के लिए कहा था, सशरीर तो नहीं, और फिर आत्मा तो व्यापक है। इसका स्मरण आते ही तुम इसकी आत्मा में जा घुसोगे, और वहां से तुम्हें प्रकाश मिलेगा और इस प्रकाश से तुम निःसन्देह ही अपना मार्ग उज्ज्वल कर सकोगे। बेटा, यह कार्य का समय है, भावना में बहकर अकर्मण्य होने का नहीं। जाओ, तुम्हें मेरी आज्ञा है। प्रवेश के निर्णयासार कार्यक्रम बनाओ।"

प्रवेश ने अपनी बात को दृढ़ करते हुए कहा—"अरे भई, वहां कौन सी सचमुच किसी ने शूली ही गाड़ रखी है मेरे लिए ! मैं इस प्रकार सूक्ष्म होकर चलूंगा कि कोई मुझे देखते हुए भी न पहचान सकेगा।"

शशांक की आँखों में आँसू छलछला उठे, वह भागकर प्रवेश के गले चिपट गया और बच्चों की भांति फफ़क कर रो उठा। उसने सिसकियाँ भरते हुए कहा—"नहीं प्रवेश, नहीं, तुम मत जाओ। वह हिंसक भेड़ियों का प्रदेश है। यदि तुम्हें कुछ हो गया तो······।"

अंजना और चौधरी भी इस दृश्य से प्रभावित हुए बिना न रह सके। अंजना ने ओजपूर्ण स्वर में कहा—"कविवर! विचलित होने की कोई बात नहीं। यह अकेले नहीं जायेंगे। वास्तव में ही वह प्रदेश हिंसक और ज्ञान-शून्य भेड़ियों का है।"

शशांक ने प्रश्न किया—"तो फिर कौन इनके साथ जाएगा?"

अंजना ने बापू की ओर एक बार देखा, फिर प्रवेश के दृढ़ संकल्पी नेत्रों में निहारा और दृढ़ होकर बोली—"मैं जाऊंगी इनके साथ। उस प्रदेश का चप्पा-चप्पा मुझ से परिचित है। निःसन्देह वहां शत्रु मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। परन्तु मैं ऐसे स्थलों से भी भली भांति परिचित हूं। जो मुझ से स्नेह करते हैं मुझे अपना हितैषी मानते हैं। इसलिए इनके साथ मेरे जाने से इन्हें विशेष संकट का सामना नहीं करना पड़ेगा।"

मां ने इस बात पर आपत्ति की और कहा—"नहीं बेटी, तुम्हारा वहां जाना और भी आपत्तिजनक हो सकता है। फिर तो वे लोग अवश्य ही इसे पहचान लेंगे। इसे न भी पहचानें, पर तुम्हें समाप्त करने के लिए वे अवश्य प्रयत्नशील हो उठेंगे।"

इस बार बापू ने कहा—"नहीं देवी! अंजना को आप जितना कोमल और भोली-भाली समझती हैं, यह उतनी नहीं। इसने ऐसे वातावरण में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की है कि इसकी वाक्पटुता से प्रभावित होकर शत्रु भी दो पल में मित्र बन जाते हैं। विरोध और संकटों ने ही जैसे लोरियां दे दे कर इसका पालन किया है। आप निश्चिन्त रहिए। इसके साथ रहने से प्रवेश पर कोई संकट नहीं आ सकता। वहां के

अनेकों व्यक्तियों पर अब भी इसकी छाया विद्यमान होगी।"

इस पर मां निरुत्तर हो गई, और दूसरे कमरे में चली गई। प्रवेश ने चौधरी को सम्बोधित करते हुए कहा—"लीजिए हमारे समस्त कार्यक्रम का सूत्र आपके हाथ में है। आज्ञा कीजिए कि हम किस समय यहां से प्रस्थान करें।"

चौधरी ने शान्त और गम्भीर भाव से कहा—"यह सब रात्रि को समझा दिया जाएगा। अब तुम सब लोग विश्राम करो। मुझे कुछ समय के लिए नगर में घूमना है। चलोगे शशांक भैया, मेरे साथ?"

शशांक ने सिर झुका कर धीमे स्वर में कहा—"जैसे आपकी इच्छा।"

और वे दोनों तुरन्त ही वहां से प्रस्थान कर गए। उनके चले जाने के पश्चात् प्रवेश, अंजना और मां खुले आंगन में जा बैठे। कुछ क्षण तक तीनों मौन रहे। अन्त में प्रवेश ने मौन भंग करते हुए कहा—"देखा मां! अब भी क्या तुम कभी शशांक पर संदेह कर सकोगी? वह तुम्हारी आज्ञा को ब्रह्मा का वाक्य मानता है। तुझ में उसकी कितनी आस्था है। नहीं तो क्या वह मुझे अकेला जाने देता?"

मां का हृदय भर आया। उसके नेत्रों में अश्रु छलछला आए। वह प्रयत्न करके भी कुछ बोल न सकी। इस पर अंजना ने कहा—"मां! तुम्हारे यहां का वातावरण कितना मधुर और वात्सल्यमय है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे यहां के सभी व्यक्ति एक ही मिट्टी के बने हैं, और साधना की आंच भी समान रूप में सभी को परिपक्व बना रही है।"

मां ने उत्तर दिया—"बेटी! जहां स्नेह और अभिन्नता न हो, वहां साधना तो कोरा आडम्बर मात्र रह जाती है। मानसिक प्रवृत्तियों और तत्वों का मिलान ही यहां का मूलमन्त्र है। हम सब इस धरती के बच्चे हैं। इसी की गोद में समान रूप से कूदते-फांदते अपना शैशव

समाप्त करते हैं। इसी की छाती का अमृतपान करके हम यौवन को प्राप्त होते हैं। धरती माता का स्नेह सभी को समान रूप में प्राप्य है। इसीलिए मेरी धारणा के अनुसार सभी के स्वभाव भी एक दूसरे से मिलाये जा सकते हैं प्रयत्न करने पर। और सच पूछो, तो हमारी कुछ कृत्रिम वृत्तियां हैं जिन्हें हम राक्षसी भावनाओं की संज्ञा भी दे सकते हैं; उन्हीं की प्रेरणा से हम एक दूसरे से भिन्न हो जाते हैं और यहीं से हमारा विरोध उत्पन्न हो जाया करता है।"

प्रवेश ने प्रश्न किया—"मां! जिन वृत्तियों को तुम स्वाभाविक न कहकर कृत्रिम भावनाओं की जन्मदात्री कहती हो, वही आज तक स्वाभाविक और अनिवार्य सी दिख पड़ती हैं।"

मां ने उत्तर में कहा—"यही तो भ्रान्ति है, बेटा! मैं तुम्हीं से पूछती हूं कि शशांक और तुम में अनेकों बार वादविवाद हुआ। यहां तक कि तुमने एक दूसरे के विचारों की कड़ी आलोचनाएं भी कीं, परन्तु तुम दोनों में भिन्नता उत्पन्न न हो सकी। इसका समाधान इतना ही है कि तुम्हारी कृत्रिम भावनाओं को पनपने नहीं दिया गया। उन्हें संस्कारों द्वारा दबा दिया गया। इसी से समझ लो, यदि वह भावनाएं स्वाभाविक होतीं तो कभी न कभी वह तुम्हारे हृदयों में स्वतः जागृत हो उठतीं और तुम एक दूसरे के शत्रु बन बैठते।"

इस बार अंजना ने प्रश्न किया—"तो क्या आपके विचार में मानव वास्तव में स्नेही और अहिंसक है?"

मां ने उत्तर दिया—"निःसंदेह। मानव जन्म से अहिंसक और स्नेहशील है। मेरा विश्वास है कि उसे प्रारम्भ से ही कुसंस्कारों से बचाकर रखा जाए, तो उसके हृदव में कदापि वैमनस्य उत्पन्न नहीं हो सकता।"

प्रवेश ने कहा—"मां! जब आर्थिक विषमता मानव को आ घेरती है, ता यह सिद्धान्त धरे के धरे रह जाते हैं। जितने भी युद्ध सृष्टि पर

आज तक हुए, वह केवल अर्थ के लिए। तो तुम्हारी धारणा के अनुसार मैं इस परिणाम तक पहुँचता हूं कि पूंजी का ही यदि बहिष्कार कर दिया जाए तो हमारा कल्याण हो जाए, हम सुखी हो जाएं।"

मां ने कहा—"यह तो है ही। पर जब से आधुनिक संसार का भौतिक निर्माण हुआ, तभी से अर्थ की पैशाचिक क्रिया को पहचानते हुए भी मानव इसका परित्याग न कर सका।"

प्रवेश ने आपत्ति करते हुए कहा—"जो आज तक नहीं हो सका, तो क्या वह भविष्य में भी न हो सकेगा ?"

मां ने कहा—"कोई कार्य असम्भव व असाध्य नहीं कहा जा सकता। जब पाषाण-युग से मानव धातु-युग में आ पहुँचा और धीरे धीरे वह विज्ञान के अद्भुत व चमत्कार-पूर्ण युग में से होता हुआ अपने प्रयत्न से इससे भी अद्भुत और अनोखे युग के निर्माण के स्वप्न देख रहा है तो वह शान्ति की स्थापना के लिए क्या इस अर्थ-पिशाच से अवकाश पाकर कोई अन्य मार्ग निश्चित नहीं कर सकता ? मैं समझती हूं, जो पग तुम लोगों ने अभी तक उठाया है वह उत्तम है, निःसंदेह अग्रगामी है। इसके लिए पूर्ण रूप में तत्पर होकर यहां से प्रस्थान करो। यह समय कुछ कर गुज़रने का है। इसलिए मैं इन दीर्घ विवेचनाओं में तुम्हारा समय नष्ट नहीं करना चाहती। न जाने आज रात को ही प्रस्थान कर देना हो। तुम्हें इस समय विश्राम की आवश्यकता है। मैं तुम्हारे लिए भोजन तैयार करती हूं। तब तक तुम दोनों अपना कार्य-क्रम निश्चित करो।"

मां वहां से उठकर चल दी, तो अंजना ने कहा—"साधारण रहन-सहन और चाल-ढाल से कौन पहचान सकता है कि सीधी और सरल दिखने वाली इस वृद्धा का हृदय कितना परिपूर्ण और परिपक्व है। ऐसी ओजस्विनी अधिष्ठात्री के सहवास का फल ही तो है कि आप लोग इतने उदार और मनस्वी बन चुके हैं। मैं यहां पहुँच कर धन्य हो

गई। इस स्नेहमयी की गोदी में बैठकर तो मुझे सारा संसार ही अपना जान पड़ता है। कितनी ममता भरी है इस हृदय में। और फिर मस्तिष्क भी कोई कम सुलझा हुआ नहीं जान पड़ता। भावुकता और विवेकशील सतर्कता का सामञ्जस्य मैंने अपने जीवन में प्रथम बार देखा है।"

प्रवेश ने कहा--"अभी आपने देखा ही क्या है? मां का हृदय इतना विस्तृत है कि इसे नापने के लिए नवीन माप-दण्ड का आविष्कार करना पड़ेगा, अंजना जी! मैं अपने आपको भाग्यशाली मानता हूं जो ऐसी मां और शशांक सा मित्र पाया है। मुझे इन पर गर्व है। अपने से भी अधिक विश्वास है।

इस पर अंजना ने एकाएक विषय पलटते हुए कहा--"हां, तो प्रवेश जी! आपने कुछ यात्रा के बारे में विचार किया है कि हमें किस वेष में और किस मार्ग से निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचना है?"

प्रवेश ने उत्तर दिया--"कुछ सोचा तो है परन्तु रात्रि को निर्णय सुनने के पश्चात् जो कुछ करना होगा निश्चित कर लेंगे। अभी तो ख़ा पीकर विश्राम करने की सूझती है।"

और वह मुस्करा दिया। तदनन्तर दोनों अपनी अपनी चर्य्या-क्रम की पोथियां खोलकर बैठ गये।

९

गुप्तचर यदि किसी के मन की बात का पता न लगा सके तो उसे गुप्तचर कौन कहे ! दोनों दलों की बातें किसी न किसी सूत्र द्वारा एक दूसरे तक अविलम्ब पहुँच जातीं । परन्तु दोनों पक्षों में दूरदर्शी और कूटनीतिज्ञों की त्रुटि न थी ।

प्रवेश व अंजना के ग्राम पहुँचने का समाचार कुमारगिरि के दूतों ने ज़िला अधिकारियों और शिवालक के शासक कर्णसिंह तक पहुँचा दिया । उसी रात को शहर में कर्णसिंह की अध्यक्षता में बैठक हुई । कुमारगिरि ने बड़े ही प्रभावशाली वाक्यों में कहा—

"महाराज ! न जाने अंजना के वाक्यों में कौन सी मोहिनी है । वह छाया की भांति ग्राम के घर घर में जा पहुँची है । एक ही रात में उसने वहां की जनता के उखड़े हुए विश्वास को सबल कर दिया है । जो लोग पानी बन्द होने के भय से घबरा कर मेरी शरण में आकर गिड़गिड़ाने लग गए थे, वे आज फिर उसी का नाम जप रहे हैं । बड़ी बात तो यह है कि मैं प्रयत्न करने पर भी उसे पा नहीं सका । न जाने वह कौन से रूप में विचर रही है !"

ज़िला अधिकारी ने पूछा—"क्या उसके साथ कोई और भी है या अकेली ही भूतनी की तरह घूम रही है ?"

कुमारगिरि ने कहा—"भूत-प्रेत कभी अकेले नहीं विचरते, महाराज ! सुना है कि यहाँ से एक युवक भी उसके साथ गया है । कल मैंने जब एक व्यक्ति से कहा कि तुम्हारा पानी बन्द हो जाएगा, तुम प्यासे मर जाओगे, तो उसने बड़े ही विश्वासपूर्ण स्वर में उत्तर दिया—"नहीं साधु बाबा ! हम प्यासे नहीं मरेंगे । आपके मन में जो आए सो करो । तुम पानी बन्द कर लो, भगवती गङ्गा हमारे यहां अवतार ले

चुकी हैं। एक आध दिन में देखना हमारे खेत आगे से अधिक पानी प्राप्त करते दिखाई देंगे।"

कर्णसिंह ने सोचते हुए कहा—"हूं......भगवती गंगा अवतार ले चुकी हैं। बुद्धिवान के लिए यह संकेत पर्याप्त है। वह गंगा और कोई नहीं, अंजना ही है। उसे किसी भी प्रकार से समाप्त कर देना होगा। आज हमारी ओर से गुप्त रूप से घोषणा कर दो कि जो व्यक्ति अंजना को जीवित व मृतक बन्दी करके सम्मुख उपस्थित करेगा, उसे पाँच हज़ार स्वर्ण मुद्रायें दी जाएंगी।"

इस पर कुमारगिरि ने कहा—"नहीं अन्नदाता! इससे कुछ न होगा। वहां की जनता अंजना का मूल्य स्वर्ण मुद्राओं से कहीं अधिक मानती है।"

अधिकारी ने कहा—"साधु बाबा! सोने की चमक अच्छे अच्छे सन्तों को असंयत कर देती है। कोई न कोई ऐसा व्यक्ति अवश्य निकल आएगा, जो लोभ में आकर हमारा कार्य कर ही देगा।"

कुमारगिरि ने कहा—"मैं पहले ही ऐसा प्रयत्न कर चुका हूं। दस हज़ार स्वर्ण मुद्राओं को भी ठुकरा दिया गया, और वह व्यक्ति जिसे मैंने यह लोभ देना चाहा उसने मुझे ही मार डालने की धमकी दे दी। यदि उसे ब्रह्म हत्या का भय न होता तो निश्चय वह मुझे उसी समय मार डालता।"

कर्णसिंह ने खीझकर कहा—"तो फिर कैसे उस भूतनी को वश में किया जाए?"

अधिकारी ने सुझाव दिया—"केवल एक ही साधन है—'राज्य शक्ति'। खुले रूप में उसको बन्दी बना लेने की घोषणा कर दीजिए। जो आड़े आए उसे भी कुचल दिया जाए।"

कर्णसिंह ने तर्क करते हुए कहा—"यह न हो सकेगा। अंग्रेज़ का युग होता तो कभी के विरोधी पक्ष को पीसकर रख देते। अब तो हम लोग नाम-मात्र के महाराज हैं। एक चींटी को भी प्राणदण्ड देने का

अधिकार नहीं।"

कुमारगिरि ने भी कहा—"कैसा अधर्म का समय आ पहुँचा कि न राजा राजा ही रहा और न प्रजा प्रजा। गण-तन्त्र क्या हुआ धनतन्त्र हुआ। इस धनतन्त्र ने तो सत्य और न्याय के सूर्य को एकदम ढक सा लिया है।"

कर्णसिंह ने कहा -"तो क्या हुआ साधु बाबा! ऐसा वायु बाण छोड़ो कि यह घन छँट जाए और हमारा मार्ग उज्ज्वल हो उठे। देखो, एक बार पुनः प्रयत्न करो। ऐसे ढंग से कार्य करो कि एक भी विरोधी न बच पाए। इसके लिए मैं आपको ऐसा व्यक्ति देता हूं कि वह अंजना को प्रत्येक रूप में पहचान लेगा। बस यह समझो कि उसके पास निवारण यंत्र है। इस बार तुम अवश्य सफल हो जाओगे।"

अधिकारी ने एक और प्रस्ताव किया—"महाराज! अंजना को पकड़ भी लिया तो क्या होगा! उसका गुरू महासामान्त दयालु चौधरी भी जीवित है। वह एक दृष्टि में अनेकों अंजनायें और निर्मित कर देगा।"

कर्णसिंह ने कहा—"सुना है कि कवि शशांक भी इन लोगों का पूर्ण सहयोगी है।"

अधिकारी ने कहा—"अजी सहयोगी ही क्या, इनके विशेष सूत्रधारों में से है।"

कर्णसिंह ने कहा—"पर वह तो हम से वृत्ति पाता है।"

कुमारगिरि ने इस बार हंसते हुए कहा —"वाह महाराज! क्या कहने, इसे कहते हैं कूटनीति। अन्नदाता! और भी एक बात मैंने सोची है कि इस विरोधी दल के प्रमुख नेता आपके बड़े भाई महाराज अजयसिंह हैं।"

कर्णसिंह ने रोष प्रकट करते हुए कहा—"अरे साधु बाबा! किसे महाराज कह दिया। घसियारा कहो, घसियारा अजयसिंह। शिवालक के राजवंश का कलंक। पर उसे तो सेनापति ने अपने हाथ से मारा था।"

कुमारगिरी ने कहा—"तो पुनर्जीवित हो गए समझिए।"

कर्णसिंह ने सिर खुजाते हुए कहा—"हूं···जान पड़ता है कि यह सारे का सारा दल ही भूतिया दल है, कब मरते हैं और कब जी उठते हैं, पता नहीं चलता। खैर, उसे भी देख लिया जाएगा। कुलकलङ्क को चैन से राजमहलों में रहना नहीं भाया। अब प्रेतों में प्रेत बनकर जी रहा होगा।"

अभी बात-चीत चल ही रही थी कि कुछ व्यक्ति हाथों में पिस्तौल लिए सामने आ खड़े हुये। सभी के मुंह ढके थे। दो ही क्षण में रूप रेखा पलट गई। आगन्तुकों ने सभी के हाथ पाँव बाँधने आरम्भ कर दिये। इतने में अकस्मात् बत्तियां बुझ गईं। किसी ने कहा—"कुमारगिरि को पकड़ो, धूर्त्त भाग रहा है।" तदनन्तर बत्तियाँ पुनः जलाई गईं। देखा तो कुमारगिरी अदृश्य था। बन्दियों की आंखों पर पट्टियाँ बांधी गईं, और घोड़ों पर लाद कर आगन्तुक उन्हें अन्धकार में छिपा ले गए।

ऊंचे-नीचे पर्वतों को पार करते हुए ये लोग जङ्गल के बीचों बीच गुफाओं में जा पहुँचे। बन्दियों की आँखें खोल दी गईं। कर्णसिंह और उसके साथी थर-थर काँप रहे थे। ज़िला अधिकारी की तो दशा ही दर्शनीय थी। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा—

"भाई, मैंने क्या बिगाड़ा है! मुझे तो छोड़ दो।"

मुंह ढाँपे हुये एक व्यक्ति ने मुंह पर से कपड़ा हटाते हुये कहा—"नहीं ठाकुर महाशय! आप यहीं रहेंगे। भला ऐसा अवसर कब कब प्राप्त होगा?"

कर्णसिंह से सत्तापूर्ण स्वर में कहा—"हमें मुक्त कर दो शशांक! नहीं तो अच्छा नहीं होगा।"

शशांक ने हँसते हुये कहा—"तो बुरा भी क्या होगा। शिवालक के शासन से जो वृत्ति मुझे मिलती है वह भी बन्द न हो पायेगी।"

कर्णसिंह ने कहा—"पर, शासक के बिना वृत्ति कौन देगा तुम्हें ?"

शशांक ने उत्तर दिया—"जो इस समय वहां का शासक होने जा रहा है; घबराइये नहीं। शिवालक के राजसिंहासन पर वही विराजमान होगा, जो उसका वास्तव में अधिकारी है। क्या आप को अभी तक पूर्ण विश्वास है कि आपके बड़े भाई महाराज अजयसिंह इस संसार में नहीं हैं ?"

कर्णसिंह ने उत्तर में कहा—"तो क्या वह घसियारा अजयसिंह ?"

शशांक ने दृढ़ हो कर कड़े स्वर में कहा—"कर्णसिंह! जिसे घसियारा कह कर तुम शिवालक की राजशक्ति का अपमान कर रहे हो, उसकी चरण-रज से भी निकृष्ट हो। नराधम! राजा वह है जिससे उस की जनता प्यार करे। तुम जिस जनता को अपनी पांव की धूलि समझते थे, उसी की क्रोधाग्नि में भस्म होने जा रहे हो। मूर्ख! जिस सेनापति को तुमने महाराज की हत्या कर देने को कहा था वह सेनापति और कोई न था अंजना देवी का सहयोगी और गुप्त रूप में हमारा मुख्य कार्य-कर्त्ता प्रवेश है। जिस समय तुम अपने साथियों से मंत्रणा करने के लिये शिवालक से चले थे तो वह तुम्हारे साथ था। रास्ते में तुमने उससे कुछ आवश्यक पत्र मांगे थे। वह राजमहल से पत्र लेने के बहाने तुमसे बिछुड़ गया था, उसी ने हमें तुम्हारी गुप्त बैठक की सूचना दी थी; और उसी की योजना के अनुसार कल प्रातःकाल महाराज अजयसिंह पुनः शिवालक के सिंहासन पर दृष्टिगोचर होंगे। तुम्हें एक और शुभ समाचार भी दे दूं। उनकी सुपुत्री और हमारी मुख्य कार्य-कर्त्री अधिष्ठात्री अंजना देवी की अध्यक्षता में कल एक सार्वजनिक मेला लगेगा, जिसमें महाराज कुछ आवश्यक बातें कहेंगे। चिन्ता मत करो, महाराज की आज्ञा है कि उनके छोटे भाई कर्णसिंह को भी उस उत्सव में उपस्थित किया जाये। इसलिये आप को वञ्चित न रखा जायेगा। आप वहां पधारेंगे, किन्तु शासक बन कर

नहीं बन्दी बन कर और प्रसाद रूप में आप को इस राजद्रोह का दण्ड भी दिया जायेगा। भागवत ! यहाँ पर तुम और तुम्हारे साथी इन अतिथियों की सेवा करेंगे। मुझे इसी समय महासामन्त दयालु चौधरी से भेंट करनी है।"

प्रभावशाली भाषण समाप्त करके शशांक विद्युत् गति से वहां से चल दिया। अधिकारी महाशय ने रोते हुए कहा--"भागवत भाई। साण्डों की भिड़न्त में मुझे क्यों पीसते हो ? मैं तो नौकर हूं और क्षमा चाहता हूं।"

भागवत ने कड़े स्वर में कहा--"चुप रहो, अधिक बड़ बड़ करोगे तो यह पिस्तौल देखते हो, एक ही गोली में सिधार जाओगे। कल का उत्सव भी न देख पाओगे।"

अधिकारी ने पुनः प्रार्थना की--"अच्छा भाई, ज़रा बन्धन तो ढीले कर दो। प्राण मुँह को आ रहे हैं।"

भागवत ने उसकी बात पर कोई ध्यान न दिया और अपने एक सैनिक से कहा--"नरहरि ! मैं बाहर जाता हूं; सावधान रहना। अधिकारी महाशय और गड़बड़ करें तो बेड़ियां डालकर कोठरी में फेंक देना।"

नरहरि ने स्वीकृत-सूचक सिर हिला दिया और भागवत अपने सभी सैनिकों को एक बार ध्यानपूर्वक देखकर चल दिया। भागवत के बाहर निकलते ही एक सैनिक ने नरहरि को आँख का संकेत किया। वह स्तर्क हो गया। उसने ओट में होकर देखा कि कर्णसिंह ने एक अन्य सैनिक को आँख का संकेत किया। फिर कर्णसिंह, अधिकारी व सैनिक के संकेत मिले। सैनिक कर्णसिंह का मूक आदेश पाकर ज्योंही बन्दूक के पिछले भाग से नरहरि के सिर पर आक्रमण करने को था, उसी समय खटाक से एक गोली उसके सीधे हाथ पर आ लगी। साथ ही भागवत ने छलांग मारकर नृसिंह की भांति उसे दबोच लिया।

उसकी जेबों की पड़ताल की गई। दो-तीन पत्र और एक बम निकला। दो क्षण में उक्त सैनिक भी कस कर बांध दिया गया! भागवत ने पत्र पढ़ते हुए कहा—"वाह, इसी लिए कहते थे मुक्त कर दो। हूं···सैनिक! समाचार के लिए धन्यवाद! तुम्हारी ही लाठी तुम्हारे सिर आन पड़ी।" फिर हँस कर कहा—

"देखो, कर्णसिंह जी व अधिकारी जी! कुमारगिरि ने सूचना भेजी है कि चिन्ता मत करो। वह एक सज्जित दस्ता लेकर आधी रात के समय गुफ़ा को घेर लेंगे और तुम्हें मुक्त करेंगे। वाह साधु महाराज! धन्य हो तुम भी। पर यहां तुम्हारी दाल न गलेगी। नरहरि! शीघ्रता करो, बन्दियों को यहां से ले चलो।"

दो ही क्षण में सभी ने वहां से प्रस्थान कर दिया। कुछ दूर जाकर भागवत ने नरहरि को शशाँक आदि को भी इस बात की सूचना देने भेज दिया।

——

१०

अमावस्या की आधी रात बीत चुकी थी। सृष्टि के समस्त वैभव को अन्धकार पचाये हुए था। उसी घोर अन्धकार में छोटी छोटी मग्न-दीपिकाओं के प्रकाश में कुमारगिरि और उसके सुसज्जित दल ने गुफ़ाओं को चारों दिशाओं से घेर लिया। कुछ चुने हुए सैनिकों को साथ लेकर गुप्त गुफ़ाओं में जा घुसा। कोना कोना छान मारने के पश्चात् भी उन्हें अपने अभीष्ट व्यक्ति तो क्या कोई निरीह से निरीह पदार्थ भी प्राप्त न हो सका जिसके आधार पर वह अपने साथियों का समाचार पा सकता। जब वह निराश होकर लौटने को मुड़ा, तो उसे एक पत्थर की चट्टान के साथ कुछ बंधा हुआ दिखाई दिया। उसने झपट कर उसे देखा, तो कागज का एक छोटा सा टुकड़ा था वह। उस पर लिखा हुआ था—"जो पढ़े सो जाने—

कल प्रातःकाल महाराज अजयसिंह सार्वजनिक सभा में दर्शन देंगे। जिसे किसी से भी मिलना हो वह राजधानी में पहुँच जाये। दूसरी सूचना यह है कि महाराज अजयसिंह की आज्ञा से राजद्रोहियों के लिए दण्ड नियत किया जाएगा।

—महासामन्त।"

पत्र पढ़ते ही कुमारगिरि के माथे पर पसीना उमड़ आया। स्थिति का आभास होते ही वह विचलित हो उठा। कुछ देर गम्भीर चिन्तन के पश्चात् उसने अपने साथियों से कहा—"शत्रु बहुत बलवान है। इसके अतिरिक्त भाग्यशाली भी। उसके सूत्र, जान पड़ता है, तेंदुए की भांति भीतर ही भीतर बहुत दूर तक फैले हुए हैं। हमारे सामने एक नहीं अनेकों विकट समस्यायें आन खड़ी हुई हैं। किन्तु हमें यहां भी अब अधिक नहीं ठहरना चाहिए। सम्भव है कि कोई विपत्ति हमारे ऊपर आ पड़े। यहां से शीघ्र निकल चलो। सीमा के बाहर पहुँचकर ही और कुछ साधन जुटाने की योजना बनानी होगी।"

चूहे जैसे पिंजरे से भागते हैं, वैसे ही सब लोग बाहर की ओर भागे। सबके आगे कुमारगिरि था। उसने ज्यों ही गुफ़ा द्वार से पांव बाहर रखा, तो गुफ़ा का द्वार अनायास ही बन्द हो गया। अब तो कुमारगिरि स्तम्भित सा रह गया। उसके सभी साथी गुफ़ा में बन्द हो चुके थे और बाहर का अन्धकार जैसे मुंह फाड़कर उसे हड़प करने को आ रहा था। उसने फिर एक बार साहस एकत्रित किया और मुट्ठियां बांध कर अन्धेरे में ही सरपट भाग निकला। अभी वह सौ पग भी न गया होगा कि भयंकर विस्फ़ोट हो गया। गुफ़ा में से आग की लपटें दिखाई देने लग गईं। उस अन्धेरे में कुमारगिरि को विस्फ़ोट का भयङ्कर नाद सुनाई दिया और कहीं कहीं मरते हुए मनुष्यों की दबी हुई चीखें सुनाई दीं। सब कुछ उसकी बुद्धि मे आ गया। उसे अपने तीन सौ सुसज्जित साथियों के इस प्रकार भस्म हो जाने का महान् दुःख हुआ। उसकी जैसे रीढ़ की हड्डी टूट गई। इतने सहयोगियों की आहुति देने के पश्चात् अब उसे स्वयं भी वहां से भागते हुए ग्लानि प्रतीत हो रही थी। उसके पाँव इतने बोझल हो रहे थे कि उसके लिए एक पग भी आगे बढ़ना असम्भव हो गया। उसने बहुत कुछ विचारने की चेष्टा की। अन्धकार में नेत्र गाड़ गाड़ कर अनेकों बार उज्ज्वलता का कोई कण निकाल ढूंढ़ने का प्रयत्न किया; पर सब व्यर्थ। उसके नेत्रों में पश्चाताप के आंसू छलछला आए। मन में एक विचार विजली की तरह कौंध गया कि कहां गई उसकी नैतिकता? कहां गया उसका धर्म-कर्म? कहां गई उसकी लोक-कल्याण की भावना? किस लिए उसने कर्णसिंह का साथ दिया? क्यों न वह अंजना व महासामन्त का सहयोगी वन गया? आज कितना सुखी होता वह। अजयसिंह कल शिवालक के राज्य सिंहासन पर बैठ जाएगा। कर्णसिंह और उसके सहयोगियों को राजद्रोह, अत्याचार व संहार के अपराध में आजन्म कारावास अथवा मृत्यु दण्ड हो जाने की सम्भावना हो सकती

है। सब मिट्टी में मिल गया। उसे एकाएक घोड़े के पद्‌चाप सुनाई दिये। वह जैसे स्वप्न से जाग उठा। उसके सभी विचार एकाएक व्यवस्थित हो गए। सभी सिद्धान्तों को भूलकर वह आत्मरक्षा के लिए तत्पर हो उठा। उसने मग्न-दीप जलाकर देखा, तो एक घुड़सवार उस की ओर ही आ रहा था। घुड़सवार ने एक विचित्र प्रकार की सीटी बजाई। प्रत्युत्तर में कुमारगिरि ने भी वैसा ही किया। घुड़सवार ने नीचे उतर कर आश्चर्यान्वित स्वर में कहा—"क्यों महाराज! क्या सब ठीक है? मैंने अपनी पूर्व योजना के अनुसार गुफ़ा के बम से उड़ने का भीषण नाद सुना। और यह निश्चय करके कि हमारी योजना पूर्ण हो गई, मैं इधर आ रहा हूं। शेष साथी यहां से थोड़ी ही दूर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

कुमारगिरि ने उत्तर में कहा—"सैनिक! हमारे सब सिपाही गुफ़ा में ही जल कर भस्म हो चुके हैं। गुफ़ा हमने नहीं, शत्रुओं ने उड़ाई है। उन्हें हमारी योजना का पूर्ण समाचार मिल चुका है। महाराज कर्णसिंह व उनके साथी न जाने किस दशा में होंगे। हमारे ही बम से हमें उड़ा दिया गया। परन्तु मैं सोचता हूं कि निराश होने से काम न चलेगा। किसी भी प्रकार से महाराज कर्णसिंह को छुड़ाना ही होगा, और अजयसिंह से शिवालक का सिंहासन छीनना होगा। यही हमारा धर्म है। यदि हम ऐसा न कर सके तो यहाँ से धर्म-कर्म का सूर्य सदा के लिए अस्त हो जाएगा। अजयसिंह और उसकी पुत्री नितांत नास्तिक हैं। और तो और उसके सभी सहयोगी विधर्मी हैं। विशेषकर अंजना और दयालु चौधरी (महासामन्त) ने तो बिना राजशक्ति के ही लोगों को अपने वश में कर लिया था। जब उनकी पीठ पर राजशक्ति का हाथ होगा तो हमें गाजर-मूली की तरह चबा जायेंगे।"

आगन्तुक सैनिक ने कहा—"तो फिर क्या आज्ञा है?"

कुमारगिरि ने निश्चिन्त स्वर में कहा—"पहले यहां से चलो।"

यह कह कर कुमारगिरि भी सैनिक के साथ घोड़े पर जा बैठा, और घोड़ा अन्धकार को चीरता हुआ त्वरित गति से चल दिया।

——

चूहे जैसे पिंजरे से भागते हैं, वैसे ही सब लोग बाहर की ओर भागे। सबके आगे कुमारगिरि था। उसने ज्यों ही गुफ़ा द्वार से पांव बाहर रखा, तो गुफ़ा का द्वार अनायास ही बन्द हो गया। अब तो कुमारगिरि स्तम्भित सा रह गया। उसके सभी साथी गुफ़ा में बन्द हो चुके थे और बाहर का अन्धकार जैसे मुंह फाड़कर उसे हड़प करने को आ रहा था। उसने फिर एक बार साहस एकत्रित किया और मुट्ठियां बांध कर अन्धेरे में ही सरपट भाग निकला। अभी वह सौ पग भी न गया होगा कि भयंकर विस्फ़ोट हो गया। गुफ़ा में से आग की लपटें दिखाई देने लग गईं। उस अन्धेरे में कुमारगिरि को विस्फ़ोट का भयङ्कर नाद सुनाई दिया और कहीं कहीं मरते हुए मनुष्यों की दबी हुई चीखें सुनाई दीं। सब कुछ उसकी बुद्धि मे आ गया। उसे अपने तीन सौ सुसज्जित साथियों के इस प्रकार भस्म हो जाने का महान् दुःख हुआ। उसकी जैसे रीढ़ की हड्डी टूट गई। इतने सहयोगियों की आहुति देने के पश्चात् अब उसे स्वयं भी वहां से भागते हुए ग्लानि प्रतीत हो रही थी। उसके पाँव इतने बोझल हो रहे थे कि उसके लिए एक पग भी आगे बढ़ना असम्भव हो गया। उसने बहुत कुछ विचारने की चेष्टा की। अन्धकार में नेत्र गाड़ गाड़ कर अनेकों बार उज्ज्वलता का कोई कण निकाल ढूंढ़ने का प्रयत्न किया; पर सब व्यर्थ। उसके नेत्रों में पश्चाताप के आंसू छलछला आए। मन में एक विचार बिजली की तरह कौंध गया कि कहां गई उसकी नैतिकता? कहां गया उसका धर्म-कर्म? कहां गई उसकी लोक-कल्याण की भावना? किस लिए उसने कर्णसिंह का साथ दिया? क्यों न वह अंजना व महासामन्त का सहयोगी बन गया? आज कितना सुखी होता वह। अजयसिंह कल शिवालक के राज्य सिंहासन पर बैठ जाएगा। कर्णसिंह और उसके सहयोगियों को राजद्रोह, अत्याचार व संहार के अपराध में आजन्म कारावास अथवा मृत्यु दण्ड हो जाने की सम्भावना हो सकती

है। सब मिट्टी में मिल गया। उसे एकाएक घोड़े के पद्चाप सुनाई दिये। वह जैसे स्वप्न से जाग उठा। उसके सभी विचार एकाएक व्यवस्थित हो गए। सभी सिद्धान्तों को भूलकर वह आत्मरक्षा के लिए तत्पर हो उठा। उसने मग्न-दीप जलाकर देखा, तो एक घुड़सवार उस की ओर ही आ रहा था। घड़सवार ने एक विचित्र प्रकार की सीटी बजाई। प्रत्युत्तर में कुमारगिरि ने भी वैसा ही किया। घुड़सवार ने नीचे उतर कर आश्चर्यान्वित स्वर में कहा—"क्यों महाराज! क्या सब ठीक है? मैंने अपनी पूर्व योजना के अनुसार गुफ़ा के बम से उड़ने का भीषण नाद सुना। और यह निश्चय करके कि हमारी योजना पूर्ण हो गई, मैं इधर आ रहा हूं। शेष साथी यहां से थोड़ी ही दूर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

कुमारगिरि ने उत्तर में कहा—"सैनिक! हमारे सब सिपाही गुफ़ा में ही जल कर भस्म हो चुके हैं। गुफ़ा हमने नहीं, शत्रुओं ने उड़ाई है। उन्हें हमारी योजना का पूर्ण समाचार मिल चुका है। महाराज कर्णसिंह व उनके साथी न जाने किस दशा में होंगे। हमारे ही बम से हमें उड़ा दिया गया। परन्तु मैं सोचता हूं कि निराश होने से काम न चलेगा। किसी भी प्रकार से महाराज कर्णसिंह को छुड़ाना ही होगा, और अजयसिंह से शिवालक का सिंहासन छीनना होगा। यही हमारा धर्म है। यदि हम ऐसा न कर सके तो यहाँ से धर्म-कर्म का सूर्य सदा के लिए अस्त हो जाएगा। अजयसिंह और उसकी पुत्री नितांत नास्तिक हैं। और तो और उसके सभी सहयोगी विधर्मी हैं। विशेषकर अंजना और दयालु चौधरी (महासामन्त) ने तो बिना राजशक्ति के ही लोगों को अपने वश में कर लिया था। जब उनकी पीठ पर राजशक्ति का हाथ होगा तो हमें गाजर-मूली की तरह चबा जायेंगे।"

आगन्तुक सैनिक ने कहा—"तो फिर क्या आज्ञा है?"

कुमारगिरि ने निश्चिन्त स्वर में कहा—"पहले यहां से चलो।"

यह कह कर कुमारगिरि भी सैनिक के साथ घोड़े पर जा बैठा, और घोड़ा अन्धकार को चीरता हुआ त्वरित गति से चल दिया।

——

११

राजधानी नववधु की भांति सुसज्जित थी। प्रातःकाल सूर्योदय से लगभग दो घण्टे पश्चात् सैनिकों की परेड आरम्भ हुई। सैनिकों ने अनेकों प्रकार के कौशल दिखाए। नगर की बड़ी सड़कों पर पग से पग मिलाते हुए सैन्य-दल गौरव से छाती फुलाये जा रहे थे। मध्याह्न में नगर के बड़े चौराहे में महाराज अजयसिंह ने महासामन्त द्वारा शपथ ग्रहण की। चौबारों पर बैठी हुई रमणियों ने पुष्प वर्षा की। जनता ने जय-घोष किए। तदनन्तर महाराज अपने सहयोगियों के साथ राममहल के सामने विशाल आङ्गन में एक उच्चासन पर विराजमान हो गए। महासामन्त ने बड़े ही गम्भीर स्वर में कहा—

"हम दुःखद अतीत को ईश्वरेच्छा से लाँघ कर इस स्थिति तक पहुँच पाये हैं कि जन-कल्याण के सुखद व सुन्दर स्वप्न को फलीभूत करने के लिए निश्चिन्त होकर जुट सकें। हमारे लिए अतीव ही प्रसन्नता का अवसर है कि हमने यहां के प्रशासन को व्यवस्थित करने का मार्ग बना लिया है। हमारा राज्य श्रम-प्रधान है। हमने अपने निर्वासन काल में भी इस बात को नहीं भुलाया, कि किसी भी प्रकार से इस प्रदेश के वासी हम लोग साझी पूंजी और साझा श्रम की व्यवस्था को स्थापित कर सकें। स्वर्णिम और रजताभ सिक्कों की परिधि से मुक्ति पा सकें। निकटवर्ती ग्रामों में निरन्तर कई मास से ऐसी ही व्यवस्था कर दी गई है। मैं विश्वास से कह सकता हूं कि आप वहां की जनता में घुसकर अनुमान लगाइए तो आपको यह स्पष्ट दीख पड़ेगा कि आर्थिक और भौतिक विपन्नता के समाप्त हो जाने से उनकी नैतिक विपन्नता में भी अधिकाधिक ह्रास जान पड़ेगा। विरोधियों को बन्दी बना लिया गया। राजशक्ति हमारी सहायता के लिए उद्यत है। फिर भी बन्धुओ! आपकी हार्दिक सहायता के बिना

न तो हम इस व्यवस्था को स्थाई ही बना सकेंगे, और न ही प्रसारित कर सकेंगे।"

सम्मुख खड़े जन समूह में एक साथ अनेकों स्वर गूंज उठे— "महाराज अजयसिंह की जय ! महासामन्त जिन्दाबाद !"

महासामन्त ने उर्ध्वबाहु हो कर उन्हें शान्त होने का संकेत किया, और दृढ़ स्वर में कहा—

"नहीं, कहो—शिवालक की प्रजा जिन्दाबाद ! प्रजा की पारस्परिक अभिन्नता जिन्दाबाद ! मित्रो ! हमारा परिश्रम किसी भी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं, अपितु राष्ट्र की सुख-समृद्धि के लिए है। हम महाराज की चिरायु के लिए प्रार्थी अवश्य हों; परन्तु हम ऐसे ही शासक के शुभाकाँक्षी हैं, जो जनता के जीवन के लिए ऊबड़-खाबड़ पथरीली धरती को खोद कर जीवन प्रदायिनी मंदाकिनी की दिशा मोड़ सके। मेरा संकेत आप लोग समझ ही गए होंगे। जिस समय कर्णसिंह ने आप लोगों को प्यासे मार देने के लिए नदी का पानी बन्द कर दिया था तो आपके इन्हीं महाराज अजयसिंह ने न जाने कितने दिन और कितनी रातें अविराम घोर परिश्रम करके स्वयं अपने हाथों से धरती खोद कर झरनों का पानी नदी में ला गिराया था। ऐसे साहसी और कर्मठ व्यक्ति को अपना नेता स्वीकार करते हुए हमें गौरव प्रतीत होना चाहिए। और उसी विकट परिस्थिति में जब कि जनता बहुत विचलित होने को थी, एक युवती ने अपनी शक्ति द्वारा उसे अविचल बनाए रखा। वह युवती है अपनी राजकुमारी अंजना देवी। आज तक आपने मुझे जिसके पिता के रूप में पाया था, मैं उस देवी का तुच्छ सेवक हूं—राज्य का एक कर्मचारी।"

इस पर महाराज अजयसिंह ने सस्नेह गद्गद् स्वर में कहा— "नहीं, नरश्रेष्ठ ! हम आपके आभारी हैं। आप ही के बल पर तो हम पुनः इस अवस्था को प्राप्त हो सके हैं। आप ही की प्रेरणा तो शक्ति

राजधानी नववधु की भांति सुसज्जित थी। प्रातःकाल सूर्योदय से लगभग दो घण्टे पश्चात् सैनिकों की पैरेड आरम्भ हुई। सैनिकों ने अनेकों प्रकार के कौशल दिखाए। नगर की बड़ी सड़कों पर पग से पग मिलाते हुए सैन्य-दल गौरव से छाती फुलाये जा रहे थे। मध्याह्न में नगर के बड़े चौराहे में महाराज अजयसिंह ने महासामन्त द्वारा शपथ ग्रहण की। चौबारों पर बैठी हुई रमणियों ने पुष्प वर्षा की। जनता ने जय-घोष किए। तदनन्तर महाराज अपने सहयोगियों के साथ राममहल के सामने विशाल आङ्गन में एक उच्चासन पर विराजमान हो गए। महासामन्त ने बड़े ही गम्भीर स्वर में कहा—

"हम दुःखद अतीत को इश्वरेच्छा से लाँघ कर इस स्थिति तक पहुँच पाये हैं कि जन-कल्याण के सुखद व सुन्दर स्वप्न को फलीभूत करने के लिए निश्चिन्त होकर जुट सकें। हमारे लिए अतीव ही प्रसन्नता का अवसर है कि हमने यहां के प्रशासन को व्यवस्थित करने का मार्ग बना लिया है। हमारा राज्य श्रम-प्रधान है। हमने अपने निर्वासन काल में भी इस बात को नहीं भुलाया, कि किसी भी प्रकार से इस प्रदेश के वासी हम लोग साझी पूंजी और साझा श्रम की व्यवस्था को स्थापित कर सकें। स्वर्णिम और रजताभ सिक्कों की परिधि से मुक्ति पा सकें। निकटवर्ती ग्रामों में निरन्तर कई मास से ऐसी ही व्यवस्था कर दी गई है। मैं विश्वास से कह सकता हूं कि आप वहां की जनता में घुसकर अनुमान लगाइए तो आपको यह स्पष्ट दीख पड़ेगा कि आर्थिक और भौतिक विपन्नता के समाप्त हो जाने से उनकी नैतिक विपन्नता में भी अधिकाधिक ह्रास जान पड़ेगा। विरोधियों को बन्दी बना लिया गया। राजशक्ति हमारी सहायता के लिए उद्यत है। फिर भी बन्धुओ! आपकी हार्दिक सहायता के बिना

न तो हम इस व्यवस्था को स्थाई ही बना सकेंगे, और न ही प्रसारित कर सकेंगे।"

सम्मुख खड़े जन समूह में एक साथ अनेकों स्वर गूंज उठे—"महाराज अजयसिंह की जय ! महासामन्त ज़िन्दाबाद !"

महासामन्त ने उर्ध्वबाहु हो कर उन्हें शान्त होने का संकेत किया, और दृढ़ स्वर में कहा—

"नहीं, कहो—शिवालक की प्रजा ज़िन्दाबाद ! प्रजा की पारस्परिक अभिन्नता ज़िन्दाबाद ! मित्रो ! हमारा परिश्रम किसी भी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं, अपितु राष्ट्र की सुख-समृद्धि के लिए है। हम महाराज की चिरायु के लिए प्रार्थी अवश्य हों; परन्तु हम ऐसे ही शासक के शुभाकाँक्षी हैं, जो जनता के जीवन के लिए ऊबड़-खाबड़ पथरीली धरती को खोद कर जीवन प्रदायिनी मंदाकिनी की दिशा मोड़ सके। मेरा संकेत आप लोग समझ ही गए होंगे। जिस समय कर्णसिंह ने आप लोगों को प्यासे मार देने के लिए नदी का पानी बन्द कर दिया था तो आपके इन्हीं महाराज अजयसिंह ने न जाने कितने दिन और कितनी रातें अविराम घोर परिश्रम करके स्वयं अपने हाथों से धरती खोद कर झरनों का पानी नदी में ला गिराया था। ऐसे साहसी और कर्मठ व्यक्ति को अपना नेता स्वीकार करते हुए हमें गौरव प्रतीत होना चाहिए। और उसी विकट परिस्थिति में जब कि जनता बहुत विचलित होने को थी, एक युवती ने अपनी शक्ति द्वारा उसे अविचल बनाए रखा। वह युवती है अपनी राजकुमारी अंजना देवी। आज तक आपने मुझे जिसके पिता के रूप में पाया था, मैं उस देवी का तुच्छ सेवक हूं—राज्य का एक कर्मचारी।"

इस पर महाराज अजयसिंह ने सस्नेह गद्गद् स्वर में कहा—"नहीं, नरश्रेष्ठ ! हम आपके आभारी हैं। आप ही के बल पर तो हम पुनः इस अवस्था को प्राप्त हो सके हैं। आप ही की प्रेरणा तो शक्ति

रूप में हम दोनों पिता-पुत्री के अङ्ग अङ्ग से प्रस्फुटित हो रही थी। शिवालक की जनता की ओर से तथा अपनी ओर से मैं आपका उपकार मानता हूं। आज से ही मैं इस प्रदेश को मुक्ति-प्रदेश का नाम देकर आपको भेंट करता हूं। आप हमारे गुरु हैं। अपने सेवकों की ओर से इस भेंट को स्वीकार कीजिए। इस सिंहासन पर कोई मुकुटधारी वंश-परम्परागत शासक न बैठ कर प्रदेश की जनता द्वारा निर्वाचित नेता ही विराजमान होगा। मैं जनता के सम्मुख सविनय यह प्रस्ताव रखता हूं कि इस मुक्ति-प्रदेश नामक गणतन्त्र के प्रथम नेता गुरुदेव को ही चुना जाय।"

जनता ने मिश्रित स्वर में स्वीकृति सूचक घोष किए। अजयसिंह ने पुन: कहा—

"आपकी सम्मति से हम इनके हाथ में मुक्ति-प्रदेश का सूत्र देते हैं। आप अपनी इच्छानुसार मुक्ति-प्रदेश का निर्माण कर सकते हैं। इन नव-निर्माण में हम मन-वचन और काया से आपको सहयोग देने का वचन देते हैं। जननी-जन्मभूमि अमर रहे।"

महाराज अजयसिंह अपनी वक्तृता समाप्त करके सिंहासन छोड़ कर नीचे खड़ी जनता में आ खड़े हुए। तदनन्तर अंजना ने मंच पर खड़े होकर कहा—"आज के निर्माताओं के लिए कर्मण्यता और कर्त्तव्य का यह एक अद्वितीय उदाहरण है। पिता जी के वे शब्द जो इन्होंने मुझे कभी कहे थे कि—'उदारता और अभिन्नता महानता के लक्षण हैं' मुझे आज भी स्मरण हो रहे हैं। मैं और कुछ भी न कहती हुई अपने प्यारे बापू से उचित आसन ग्रहण करने की प्रार्थना करके अपने इच्छित स्थान पर खड़ी होने जाती हूं।"

अंजना मंच छोड़कर पिता के पास आ खड़ी हुई। दयालु चौधरी अर्थात् मुक्ति-प्रदेश के नए नेता ने आसन ग्रहण किया, और बड़े ही गम्भीर व शान्त स्वर में कहा—

"मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मैं एक अनोखे ही संसार में पहुँच गया हूं। जहां पर न कोई राजा है और न प्रजा। न शोषित है और न कोई शोषक। सभी समान हैं। सभी एक ही माता के गर्भ से उत्पन्न हुए स्नेहशील शिशु हैं। ऊँच-नीच और पाप-पुण्य रहित यह निर्विकार आत्माएं कितनी दिव्य प्रतीत हो रही हैं, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर भी मुझे भावनाओं में न बह कर कर्त्तव्यशील होने का आदेश है। आपने मुझे नेता माना है। इसके साथ नेतृत्व का कर्त्तव्य-भार भी मेरे स्कन्धों पर आन पड़ा है। इस बोझ को सहर्ष स्वीकार करता हूं। परन्तु महाराज अजयसिंह और उनकी पुत्री अंजना देवी को मैं अपना सहयोगी चुनता हूं। इसके अतिरिक्त साथी प्रवेश और कविवर शशांक को अपनी सहायता के लिए पुकारता हूं। मुझे आशा है कि निर्वाचित व्यक्ति स्वनिर्मित नेता की प्रार्थना को न ठुकरा कर अपना-अपना कार्य और कर्त्तव्य समझ लेंगे।"

नेता के भाषण के पश्चात् ही महाराज अजयसिंह व उनकी पुत्री अंजना देवी, प्रवेश व शशांक इत्यादि निर्वाचित सदस्यों ने अपने अपने आसन ग्रहण कर लिए। तदुपरान्त नेता के आदेशानुसार बन्दी कर्णसिंह और उसके साथियों को लेकर भागवत उपस्थित हो गया। नेता ने सर्वप्रथम कर्णसिंह को ऊपर से नीचे तक देखा। इसके पश्चात् जब अधिकारी महाशय की ओर देखा तो वह सन्निपात के रोगी की भांति बेसिर-पैर का व्याख्यान करने लग गया। भागवत ने आँख के संकेत से घूर कर उसे चुप करा दिया। फिर भी वह कभी कभी मुंह में ही कुछ बड़बड़ाए जा रहा था। नेता की आज्ञा से दोनों के बन्धन खोल दिए गए। उसके पश्चात् बड़े ही मधुर स्वर में नेता ने कहा—

"कर्णसिंह! जो भी व्यवहार तुमने आज तक किया है, उसके लिए तुम्हें क्या कहना है?"

कर्णसिंह ने कुछ विचार करते हुए शान्त व गम्भीर स्वर में

कहा—"जननायक ! मैं अपने कुकृत्यों के लिए अति लज्जित हूं। मैं इससे अधिक और कुछ नहीं कहूंगा, कि मैंने विरोधी होकर जो देश का अहित किया है, क्षमा प्राप्त होने पर मित्र बन कर उसकी सेवा भी कर सकता हूं।

नेता ने जनता की ओर, फिर अपने निकट मंच पर बैठे महाराज अजयसिंह व अंजना आदि की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। जन-समूह में से कुछ लोगों ने तीव्र स्वर में कहा—"कर्णसिंह को कड़े से कड़ा दण्ड देना चाहिए। इसके कुकर्मों का दण्ड इसे अवश्य मिलना चाहिए।"

इसके साथ अन्य भी कई स्वर और मिश्रित हो गए। कर्णसिंह सिर झुकाये पृथ्वी की ओर देख रहा था, कि नेता का गम्भीर स्वर उस कोलाहलमय वातावरण को चीर कर सुनाई दिया। उसने कहा—"हां, अपराधी को उसके अपराध का दण्ड मिलना ही चाहिए। यह नीति है। परन्तु यह नीति और विधान जो केवल शासकों और शासितों तक ही सीमित रहना चाहिए, उसे हम जन-तन्त्र के सिर पर न थोपें तो ठीक होगा। जन-तन्त्र का उद्देश्य ही द्वेष व वैमनस्य को समाप्त करना है। मैं कौन हूं कर्णसिंह को दण्ड देने वाला ? मेरे लिए कर्णसिंह और आप में कोई अन्तर नहीं। इसलिए मैंने इस आदर्श की सौगन्ध देकर इस अपराधी से ही पूछा है और इसने मेरे प्रश्न के उत्तर में क्षमा याचना की है। मैं समझता हूं कि अपराधी ने जो दण्ड स्वयं अपने लिए निर्धारित कर लिया है, उससे कड़ा दण्ड और कुछ नहीं दिया जा सकता। मृत्यु के एक झटके के बाद सम्भवत: अपराधी अपना सुधार करने की अपेक्षा घोर अशान्ति अपने मन में लेकर इस संसार से विदा होता है। और निश्चय ही उसे आत्म-कल्याण का अवसर प्राप्त नहीं होता। हमारी नवीन व्यवस्था में दण्ड तथा प्रतिशोध से कहीं बढ़कर क्षमा एवं सुधार का महत्व है। मैं मुक्ति-प्रदेश की ओर से यहां के निवासियों को उनका गणतन्त्र सौंपकर निर्भयता और

शान्ति का प्रस्ताव भेंट करता हूं। अपराधी को क्षमा करके उसे अपना स्नेह दीजिए। निःसंदेह वह आपके लिए भी प्रेम और अभिन्नता का वरदान बन जाएगा।

इस पर प्रवेश ने आपत्ति प्रकट करते हुए कहा—"जननायक! आपका निर्णय अस्वीकार करने की धृष्टता हम कदापि नहीं कर सकते। किन्तु गुरुदेव चाणक्य के उन वाक्यों को—'कि विरोधी को कभी क्षमा मत करो। सर्प को जहां देखो, वहीं कुचल दो।' क्या आप कोई महत्व न देंगे? कर्णसिंह के अपराध इतने नगण्य नहीं हैं कि एकाएक भुला दिये जायें। और फिर यह भी तो न भूलिए कि सत्ता का लोभी, अवसर प्राप्त होने पर प्रायः अन्धा हो जाया करता है। वह घातक से घातक आक्रमण कर दिया करता है अपने स्वार्थ-वश होकर; इसलिए मैं अनुरोध करता हूं कि अपराधी को कड़े से कड़ा दण्ड दिया जाए।"

जनता ने प्रवेश के इस प्रस्ताव का एक स्वर में समर्थन किया। नेता ने इस बार पुनः अजयसिंह की ओर देखा, परन्तु वह शान्त और मूक था। उसकी आकृति पर कोई विशेष अनुभाव न देखकर उसने कर्णसिंह की ओर ध्यान-पूर्वक देखा। कर्णसिंह इस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे भूखे शेरों के झुण्ड में घिरा हुआ खरगोश। नेता ने इस बार एक चतुर दार्शनिक की भांति तर्क करते हुए कहा—"आप अपने आपको भारतीय कहलाते हैं, लम्बे-लम्बे सिद्धान्त और लोक-कल्याण के साधनों का निर्माण करते हैं; परन्तु आपके हृदय इतने प्रति-हिंसक और संकुचित देखकर मुझे खेद होता है। विकट से विकट समस्याओं का समाधान पल भर में कर देने वाली प्रतिभा कहां समाप्त हो गई? इस मंच पर युगान्तद्रष्टा कविवर शशांक जैसे मनस्वी विद्यमान हैं। फिर भी मुझे मेरे प्रश्न का यथार्थ उत्तर नहीं मिल पा रहा, आश्चर्य की बात है। आप लोग महाराज अजयसिंह को राजसिंहासन पर देखने के स्थान पर अपने बीच कार्यकर्त्ता के रूप में देखकर प्रसन्न होंगे।

ऊंचे-ऊंचे जय-घोष किये आपने। गणतन्त्र में सहज प्राप्य सुविधाओं और समानता के लोभ ने आपको गद्गद् कर दिया। किन्तु इससे जो विधान की रूपरेखा परिवर्तित हो गई, उसे तो देखकर आप पहले ही दिन विचलित हो उठे। इस समय आप साधारण नागरिक अथवा ग्रामीण न होकर इस मुक्ति-प्रदेश के समानाधिकारी हैं तो क्या इतना बड़ा अधिकार प्राप्त कर लेने पर आपकी अन्तरात्मा सम्मुख खड़े क्षमा याची को प्राणदान भी नहीं दे सकती ?"

उसने अपनी बात का प्रभाव जाँचने के लिए सब पर दृष्टि डाली; तो कविवर शशांक ने खड़े होकर कहा—'जननायक को कुछ भी मन्त्रणा देने से पूर्व हमें उनके वचनों से अपनी बुद्धि का सन्तुलन करना होगा। हम संकुचित व प्रतिहिंसक बनकर अपने गणतन्त्र को दूषित नहीं करना चाहते। परन्तु जब तक गणतन्त्र के आदर्श सर्वसाधारण में सक्रिय रूप न धारण कर लें, तब तक अराजकता को रोकने के लिए अनुशासन अनिवार्य है। और अनुशासन में कतिपय दण्ड भी आवश्यक हो जाया करता है। यह मेरा प्रस्ताव है। मुझे आशा है कि इस पर उचित विचार-विमर्श अवश्य होगा।"

इस बार अंजना ने नेता से अनुमति लेकर कहा—"क्या कोई ऐसी व्यवस्था नहीं हो सकती, जिसके द्वारा हम अपने सिद्धान्तों को भी अछूता रख सकें और अराजकता का भी भय न रहे ? क्यों नहीं चाचा जी को किसी ऐसे पद पर नियुक्त कर दिया जाय जिससे कि इनकी आत्मा इतनी गौरवान्वित हो उठे कि कोई भी कुकर्म करने से पूर्व इनका गौरव ही इनके लिए अकाट्य बन्धन बन जाए।"

नेता की आँखें चमक उठीं। उसने प्रसन्न होते हुए कहा—"गणतन्त्र में पद और पदवियों का कोई प्रश्न नहीं उठता। पर हां, जिसे भी अधिक से अधिक अवसर दिया जाए वही अधिक सम्मान का पात्र गिना जाता है।"

फिर उसने मंच के अन्य व्यक्तियों की ओर देखा। सभी की दृष्टि से उसे अनुमति का आभास मिला। उसने कर्णसिंह को सम्बोधित करते हुए कहा—"कर्णसिंह ! मुक्ति-प्रदेश तुम्हें सेवा का अवसर प्रदान करता है। क्या तुम्हारा व्यवहार कभी निराश तो नहीं करेगा?"

कर्णसिंह ने मंच के समीप आकर मंचासीन सभी व्यक्तियों को अभिवादन किया। फिर नेता के चरण स्पर्श करते हुए उच्च स्वर में कहा—"मैं इस महात्मा की चरण-रज का स्पर्श करके सौगन्ध खाता हूं कि जब तक मेरी धमनियों में रक्त का एक भी कण शेष है, इस गणतन्त्र की सेवा से विमुख न होऊंगा।"

नेता ने कुछ देर विचार करके एक कागज़ के टुकड़े पर कुछ लिखा और प्रवेश को वह पत्र सब को पढ़ कर सुनाने के लिए दे दिया। नेता के संकेतानुसार प्रवेश ने वह पत्र शशांक, अंजना व महाराज अजय सिंह को भी पढ़वा दिया। फिर सब की अनुमति से जनता को पढ़ कर सुनाते हुए कहा—

"मुक्ति-प्रदेश नामक गणतन्त्र अपनी व्यवस्था और प्रशासन के बनाए रखने के लिए निम्नलिखित व्यक्तियों को प्रदेश के प्रथम जननायक की आज्ञा से निर्वाचित करता है—यहां के भूत-पूर्व शासक श्री अजयसिंह, कविवर शशांक, श्री प्रवेश कुमार एवं अंजना इत्यादि। इसके अतिरिक्त प्रदेश का अनुशासन विधान श्री कर्णसिंह को सौंपा जाता है।

आदेशदाता
ह० दयालु चौधरी
जननायक।"

उक्त घोषणा के पश्चात् उस दिन की कार्यवाही समाप्त करके सभा विसर्जित कर दी गई। जन-समूह धीरे धीरे छंट गया। सभी के चले जाने के पश्चात् भागवत पुनः घोड़े पर सवार होकर एक दिशा को चल दिया।

१२

अलमोड़ा में मां को मुक्ति-प्रदेश के निर्माण की सूचना प्राप्त हुई। जैसे वह एकाएक पृथ्वी से अन्तरिक्ष के मुक्त पवन में कुछ क्षण के लिए विहार करने पहुँच गई। उसे प्रसन्नता के आवेश में कुछ सुझाई ही नहीं दे रहा था। वह अपने छोटे से घर में भी सुन्दर कल्पनाओं के सहारे अनेकों योजनों का पर्यटन करके जब स्थूल धरती पर अपने प्रवेश के कमरे में पहुँची, तो उसके नेत्रों के सम्मुख प्रवेश, शशांक और अंजना त्रिवेणी धारा के समान सम-गति से आगे बढ़ते हुए दीख पड़े। उसने स्पष्ट देखा कि शशांक चन्द्रमा के सिंहासन पर विराजमान है और अंजना के चमकदार केशों की सुन्दर रज्जुयें धरती की ओर बढ़ा कर प्रवेश को उस उत्थान के लिए निमन्त्रण दे रहा है। इस स्वप्नवत् विचार से पहले तो वह कुछ प्रसन्न हुई, फिर किसी अज्ञात आशंका के भय से कांप सी उठी। अभी वह इसी व्यग्रता में व्यस्त थी कि एकाएक भागवत और अंजना द्वार खोल कर भीतर प्रविष्ट हुये। दोनों ने मां को सम्मुख पाकर झुक कर अभिवादन किया। फिर मां ने अंजना का माथा चूमते हुए अश्रुप्लावित नेत्रों से उसकी ओर देखा। उसके मन में पुनः एक तरंग सी उठी। वह स्नेह-विह्वला ममतामयी मां दोनों भुजाओं में अंजना को कस कर आत्मविस्मृत सी हो उठी। इस मिलन कौतुक के पश्चात् मां ने भागवत् और अंजना के लिए विश्राम और क्षुधा-तृप्ति के साधन जुटाने आरम्भ कर दिए। कुछ समय विश्राम के पश्चात् पूर्ण स्वस्थता का अनुभव करते हुए भागवत और अंजना उठ बैठे ! मां, जो उनके निकट बैठी कुछ सी रही थी, ने स्मित पूर्ण वाणी में कहा—

"सुनाओ बेटी ! कुछ मुझे भी तो अपने राज्य का हाल सुनाओ। मैं भी तो जान पाऊँ कि मेरे बच्चों ने क्या किया ? मैं समझती हूं कि तुम्हारे पिता महाराज अजयसिंह ने जो कार्य विगत दिनों में किया है वह देश की भावी सन्तानों के लिए युग-युगान्तर तक एक हितकारी

उपदेश व अद्वितीय उदाहरण सिद्ध होगा। नव निर्माण के सांचे में ढल रहे इस राष्ट्र के लिए उन्होंने अधिकार की उपेक्षा करते हुए कर्त्तव्य के स्वर्ण-जटित सोपान का आविष्कार किया है। मुझे विश्वास है कि प्रत्येक देशवासी इस सोपान पर से होकर मुक्ति-प्रदेश के नाम को सार्थक कर देने में समर्थ हो जायगा। परन्तु मैं यह जानना चाहती हूं कि देश-द्रोही। कर्णसिंह के प्रति जननायक का क्या व्यवहार रहा ?"

इस प्रश्न के पश्चात् मां के मुख पर अलौकिक छवि दिख पड़ी। अंजना ने उसके सतेज नेत्रों में क्षण भर के लिए अपने नेत्र गाड़कर नीचे झुका लिए। वह प्रयत्न करने पर भी मां के इस प्रश्न का आशय न जान सकी। उसने भागवत की ओर देखा। परन्तु वह तो एक कोरा कार्यकर्त्ता था। गुप्तचर के कार्य के अतिरिक्त और किसी भी कार्य में उसकी बुद्धि कुंठित हो जानी स्वाभाविक थी। उसने भावशून्य कोरे नेत्रों से अंजना की ओर देखा। इससे अंजना के रक्ताभ अधर धीरे से मुस्करा दिए। उसने माँ के चरण छू कर विनीत भाव से डरते-डरते प्रश्न किया--

"तो आपके विचार में कर्णसिंह के प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिए था ? क्या उसे प्राणदण्ड देने की अनुमति दी है आपने ?"

मां ने मनस्विनी की भांति केश-चर्म उतारते हुए कहा—"उसे मृत्यु-दण्ड दे देने से गणतन्त्र दूषित न हो जाता ? क्योंकि गणतन्त्र के विधान अनुसार प्रदेश के किसी भी व्यक्ति को प्राण-दण्ड तो प्राण-दण्ड किसी भी प्रकार का दण्ड देना निषिद्ध है। मेरे मतानुसार तो ऐसी परिस्थिति में, जब कि देश में कड़े नियन्त्रण और अनुशासन की आवश्यकता है, देश को एक ऐसे विधान के सांचे में ढालने का प्रयत्न करना अल्प-बुद्धि और अदूरदर्शिता का प्रमाण जान पड़ता है। और फिर इससे भी अधिक आश्चर्य मुझे इस बात पर हो रहा है कि कर्णसिंह की धूर्त्त प्रवृत्ति से परिचित होते हुए भी जननायक ने अपने अहिंसक स्वभाव के कारण मुक्त ही नहीं किया, प्रत्युत प्रदेश का अनुशासन-सूत्र

उसके हाथ में सौंप कर तो मुक्ति-प्रदेश को दहकती हुई प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसा की ज्वाला में झोंक दिया है। मुझे जब से यह समाचार ज्ञात हुआ है, मैं बहुत ही चिन्तित हूं। सम्भव है तुम्हें अभी तक विदित नहीं हो पाया कि कर्णसिंह के सहयोगी यहां के जिला अधिकारी ने यहां पहुँचते ही कुमारगिरि के साथ मिलकर कितना बड़ा उपद्रव खड़ा कर देने की योजना निर्मित कर डाली है। भागवत भैया ! तुम कुशल गुप्तचर हो निःसंदेह, परन्तु तुम्हारी दिव्य-दृष्टि में धूल झोंकने की शक्ति भी किसी में है, इसे न भूलो। गुरुदेव चाणक्य ने कहा है, 'शत्रु को छोटा मत समझो। नहीं तो शत्रु तुम्हारे इस हीनमन्यता और उपर-मन्यता के भाव की ओट में ही पोषित होता रहेगा; तथा एक दिन चादर के सांप की भांति चुपचाप डस लेगा, और कानों-कान खबर भी न होगी।"

अंजना व भागवत अपराधी की भांति सिर झुकाये चुपचाप बैठे थे। इसी विचारधारा में बहते हुए और मां के एक एक शब्द को हृदयङ्गम करते हुए अंजना को एकाएक कुछ सूझ पड़ा, वह चौंक उठी। उसने सोचा कि यदि सचमुच ही सत्ता के बल पर कर्णसिंह ने पुनः कहीं विरोध खड़ा कर दिया और पहले की तरह उन लोगों को समाप्त करने का प्रयत्न किया तो क्या होगा ? उधर गणतन्त्र व्यवस्था के अनुसार प्रथम तो सैन्य बल समाप्त-प्राय ही कर दिया गया है। और फिर जो कुछ शक्ति है वह भी कर्णसिंह के हाथ में। यह तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे नेता ने अपने ही हाथों अपने आपको बन्दी बना लिया हो। शासन तो अन्त में सत्ता के बल पर ही होगा न ? हम लोग सब तो नाम-मात्र को रह गये हैं। जिस दिन भी कर्णसिंह की दुर्बुद्धि पुनः जागृत हो उठी, उसी दिन निःसंदेह हम अपने आपको उसके जबड़ों का ग्रास बना पाएंगे। वह तो स्वभाव से ही······नहीं नहीं······।"

यह सब सोचते हुए वह ज़ोर से मलेरिया के रोगी की भांति काँप

उठी। माँ, जो अब तक स्वयं एक गहरे विचार में तल्लीन थी उसने अंजना को इस प्रकार अकस्मात् अस्त-व्यस्त होते देखकर आश्वासन देते हुए कहा--"इतना विचलित होने की आवश्यकता नहीं बेटी! मैंने इसके लिए सब प्रबन्ध कर रखा है। एक कर्णसिंह तो क्या भले सहस्र कर्णसिंह और सहस्रों कुमारगिरि परस्पर मिलकर विद्रोह करें तब भी हम उस विद्रोह को पूर्णतया दबा देने में सफ़ल होंगे। इसके लिए मैंने मार्ग निश्चित कर लिया है। तुम्हें मेरे पास यहां रहना होगा। शशाँक और प्रवेश को मेरे ही निर्देशानुसार महाराज अजयसिंह और जननायक की हर समय रक्षा करनी होगी।"

अंजना ने कहा--"और तो हम सब को छिपा भी सकेंगे, पर जननायक तो अपनी पर्णकुटी छोड़ना किसी प्रकार भी स्वीकार न करेंगे। उनकी इस अतिमानवता से मैं कतिपय ऊब जाती हूं। अनेकों ढङ्गों से उन्हें समझाने का प्रयत्न किया कि—'बापू! आप एक भवन में रहिए जो भली प्रकार से सुरक्षित हो।' परन्तु उनका कहना है कि गणतन्त्र में जनता के सेवक को अङ्ग रक्षकों की क्या आवश्यकता? यदि उसके व्यवहार में इतना बल ही नहीं जो अपने मित्रों और विरोधियों को एक सूत्र में पिरो सके, तो उसे जननायक बनने का कोई अधिकार नहीं। वह कहा करते हैं—'जननायक का शब्दार्थ जो भी हो किन्तु इसका क्रियात्मक अर्थ तो यही है कि जनता का निरन्तर सेवक।"

मां ने आश्वासन देते हुए कहा—"इसके लिए भी उद्विग्न होने की आवश्यकता नहीं। उनकी रक्षा के लिए वहीं प्रबन्ध कर दिया जायगा जहाँ उनको अभीष्ट हो। जो भूल हो चुकी है उसका परिणाम स्पष्ट है। परन्तु उस परिणाम से बचने के लिए हमारे पास साधनों की कमी नहीं है। इसके लिए तुम लोगों को केवल मेरे आदेशानुसार कार्य करना होगा। भागवत! तुम आज ही लौट जाओ, और जाकर शशांक को मेरा एक पत्र दे दो; उसके पश्चात् जो होगा, देखा जायगा।"

तदनन्तर मां ने एक पत्र लिखकर भागवत के हाथ में थमा दिया। वह झुक कर प्रणाम करता हुआ वहाँ से जाने लगा, तो उसे अंजना की ओर देखते हुए देखकर माँ ने शान्त स्वर में कहा—"यह मेरे पास रहेगी। परन्तु इस बात को यथासम्भव गुप्त रखने का प्रयत्न करना।"

भागवत ने माँ के आदेश को स्वीकार करते हुए शीश झुकाया और फिर अविलम्ब ही वहाँ से प्रस्थान कर दिया। उसके जाते ही माँ ने चिन्तित बैठी अंजना के कन्धों पर हाथ रखा और कहने लगी—"आओ बेटी! इस तरह करतलों में ठोड़ी रखकर बैठने का अवसर नहीं रहा। आओ मेरे साथ, मैं तुम्हें भविष्य का कार्य-क्रम समझा दूं।"

अंजना चुपचाप माँ का अनुसरण करती हुई चल दी। सबसे पहले माँ ने एक छोटी कोठरी में प्रवेश किया। तदनन्तर गुप्त ढङ्ग से उसने एक गुप्त द्वार खोला। फिर वह वृद्धा बहुत तेज़ी से सीढ़ियाँ उतरने लगी। इस गुप्त मार्ग को देखकर अंजना ने रोमाँचित एवं आश्चर्यान्वित होते हुए कहा—"यहाँ तो बहुत अन्धेरा है। क्या पाताल तक ले चलेंगी?"

माँ ने दियासलाई जलाकर थोड़ा प्रकाश किया और उसकी ओर देखती हुई कहने लगी—"क्यों, तुम्हें डर लगता है? कभी कभी बहुत ऊंचे उठने के लिए पाताल के चरण छूकर उससे आकाश की गहराइयों को छू लेने का वरदान प्राप्त करना होता है। वह देखो, सामने धीमा सा प्रकाश दिखाई दे रहा है। वहाँ पर कुछ कार्यकर्त्ता अहर्निश अविराम गति से अपने कार्य में जुटे हैं। यह हमारा बहुत विशाल दुर्ग है जिसके एक नहीं अनेकों प्रवेश द्वार हैं।"

धीमे स्वर में वार्तालाप करती हुई माँ अभी आठ दस पग ही आगे बढ़ी होगी कि बिजली जैसे तीव्र प्रकाश ने उस गुफ़ा में आभा फैला दी। अनेकों अदृश्य स्थानों से विचित्र ढङ्ग की सीटियाँ व ध्वनियाँ सुनाई दीं। माँ ने भी जेब से एक सिंगी निकाल कर बजाई। सिंगी बजते ही चार व्यक्ति आ उपस्थित हुए। मां ने सत्तापूर्ण स्वर में आदेश

दिया—

"दुर्ग का महाद्वार खोल दो। और सभी तक प्राङ्गण में एकत्रित होने का आदेश पहुँचा दो।"

चारों व्यक्ति शीश झुका कर वहां से चल दिए। दो ही क्षण में जहां पर अंजना और मां खड़ी हुई थीं, सामने से एक पर्वत सम पथरीली दीवार बिना किसी ध्वनि किये खिसक गई। भीतर प्रविष्ट होकर अंजना ने देखा कि किस प्रकार युद्ध का सामान एकत्रित किया हुआ था। वहां के चप्पे-चप्पे पर कड़ा पहरा था। निरीक्षक गण पल-पल के पश्चात् क्रमशः एक-एक इंच स्थान और छोटी से छोटी वस्तु को भी सावधानी से देख रहे थे। ऐसे अद्भुत आविष्कार वहां दिखाई दिए कि जिसे देखते ही अच्छे अच्छे वैज्ञानिक अवाक् रह जाएं। मां की आज्ञा से पुनः पूर्ववत् एक और गुप्तद्वार खुलता दिखाई दिया। मां ने अंजना का हाथ पकड़ कर स्नेह पूर्ण स्वर में कहा—"आओ बेटी, तुम्हें कुछ दिखाया जाए। जननायक स्पष्ट में अतिमानव होकर कर्णसिंह को मुक्त कर सकते हैं परन्तु उनकी दिव्य-दृष्टि कहां तक कार्य कर सकती है, यह भी देख लो। यहां से प्रस्थान करने से पूर्व ही उन्होंने यह योजना मुझे समझा दी थी। और यह सब कार्य उन्हीं के घनिष्ट मित्रों के संरक्षण में चल रहा है। मैं इस रहस्य का उद्घाटन तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी भी विश्वस्त से विश्वस्त व्यक्ति पर भी नहीं कर सकती थी। तुम जननायक के लिए बहुत चिन्तित थीं न? आओ, देख लो, वह कितने सुरक्षित हैं। किन्तु मैं अन्य बातें बताने से पूर्व तुम से वचन मांगती हूं कि तुम यहां पर जो कुछ भी देखोगी, उसे स्वप्न में भी जिह्वा पर लाने का प्रयास मत करना।"

अंजना ने धैर्य पूर्ण स्वर में कहा—"इसके लिए निश्चिन्त रहो मां, तुम्हारी आज्ञा के बिना मेरी वाणी तो क्या, मेरा कोई भी अङ्ग सक्रिय न होगा।"

मां ने तुरन्त सिंगी बजाई। विद्युत के प्रकाश से नेत्र चुंधियाने लग गये। थोड़ी दूर आगे बढ़कर अंजना ने देखा कि एक विशाल आँगन में अनेकों व्यक्ति चींटियों की तरह अपने अपने कार्य में जुटे थे। किसी को भी पलक झपकने तक का अवकाश न था। मां ने निकट खड़े एक कार्य-कर्त्ता से प्रश्न किया—

"रङ्गराव ! जननायक कहां हैं ?"

रङ्गराव ने उत्तर दिया —"मां ! वह सैनिकों को अभ्यास करा रहे हैं। आज्ञा हो तो आपका सन्देश उन तक पहुँचा दूं।"

मां ने मधुर स्वर में कहा—"हां बेटा ! उनसे जाकर कहो कि कोई उनसे मिलने आया है। आवश्यक कार्य है। मन्त्रणालय में कुछ समय पधारने का कष्ट करें।"

अंजना ने कुछ पग और आगे बढ़कर एक वातायन में से देखा कि नेता सहस्रों सैनिकों को नए नए उपयोगी आयुधों का अभ्यास करा रहे थे। सन्देश प्राप्त होते ही वह वहां से चल दिए। अंजना पुनः मां के पास आकर खड़ी हो गई और श्रद्धा से उनकी ओर निहारने लगी। मां ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—

"क्यों बेटी ! अब तो तुम्हें विश्वास हो गया न, कि तुम्हारे प्रिय बापू कितने सुरक्षित हैं ?"

अंजना ने गद्गद् स्वर में कहा—"मां ! ज्यों-ज्यों मैं तुम्हारे निकट आती जाती हूं, तुम्हारे अनेकों रूप मुझे दिखाई दे रहे हैं। तुम्हारी वाक्-शक्ति में जितना चमत्कार है उससे भी अधिक तुम्हारी कर्मठता में।"

मां ने उत्तर में कहा—'इसमें मैंने कुछ भी नहीं किया, बेटी; यह तो सब तुम्हारे बापू की बुद्धि का चमत्कार है जिसे छोटा सा अरक्षित बालक समझ कर तू इतना चिन्तित थी।"

इतने में जननायक अर्थात् अंजना के बापू दयालु चौधरी मुस्कराते हुए आ पहुँचे। उन्होंने आते ही अंजना के सिर पर सस्नेह हाथ फेरा।

मां ने विनोदपूर्ण स्वर में कहा--"लो बेटी ! अच्छी तरह पहचान लो, यही हैं न तुम्हारे बापू ? जिनके लिए तुम इतनी व्याकुल हो रही थी।"

जननायक ने मुस्कराते हुए कहा--"इसका दोष नहीं है देवी इसमें। इसका स्वभाव ही ऐसा है। यह मुझे एक भी क्षण अपने से दूर पाकर मेरे लिए प्रायः चिन्तित हो जाया करती है। जब इसकी ओजपूर्ण वाणी सुनता हूं तो मुझे यह अपनी आयु से कहीं बड़ी जान पड़ती है। किन्तु जब इसे इस प्रकार बच्चों की भांति उदास होते देखता हूं तो मेरी पितृभावना साकार होकर मुझसे प्रश्न किया करती है--काश ! मैं इसका कोरा अभिभावक न होकर जन्मदाता भी होता। परन्तु यह स्वाभाविक व्यवधान भी इसका सरल और सच्चा स्नेह पाकर मैं भूल जाता हूं।"

तदनन्तर तीनों व्यक्ति एक छोटी सी कोठरी में जा घुसे। कोठरी साधारण रूप से सजी हुई थी। एक आसन पर बैठते हुए अंजना ने प्रश्न किया--

"बापू ! तुम वहां से कब आए ? पिता जी इस समय कहां है ? प्रवेश जी और कविवर शशांक क्या अभी राजधानी में ही हैं ?"

बापू ने निःशंक भाव से कहा--"किसी की चिन्ता मत करो। सभी अपना कार्य कर रहे हैं। और तो और मैं यह भी जानता हूं कि तुम्हारे काका ने गुप्त रूप से कुमारगिरि को एक निमन्त्रण पत्र भेजा था। जिसके अनुसार सम्भवतः वह वहाँ पहुँच गया होगा। कुमारगिरि ने भी अच्छी बड़ी सेना तैयार कर छोड़ी है। इस बार निश्चय ही वह कर्णसिंह को विरोध करने के लिए उकसाएगा। और उसका आदेश प्राप्त करके वह जिस मार्ग से राजधानी को घेरने का प्रयत्न करेगा, वह भी मैं जानता हूं। यहीं से एक मार्ग ऐसा निकाला गया है जो राजधानी की प्रत्येक दिशा से रक्षा कर सकेगा। प्रवेश और

शशांक इस समय मेरे ही निर्देशानुसार उन गुप्त मार्गों का गुप्त रूप से निरीक्षण कर रहे हैं।"

अंजना ने पुनः उतावले होकर पूछा—"और यदि विरोधियों ने पहले की तरह राजमहल पर आक्रमण कर दिया तो पिता जी का क्या होगा?"

जननायक ने उत्तर दिया--"ऐसी आशंका उत्पन्न होने से पूर्व ही वहां का पत्ता-पत्ता उन्हें चेतावनी दे देगा। और वह गुप्त मार्ग द्वारा तुरन्त यहां तुम्हारे पास पहुँच जाऐंगे। इस मार्ग को प्रवेश और शशांक भली प्रकार से जानते हैं। मैं दिवस में एक बार गणतन्त्र के विधानानुसार अपनी पर्णकुटी के सामने पंचायत का आयोजन अवश्य करवाया करता हूं। तदनन्तर मैं लोगों की दृष्टि में एकान्त ग्रहण करता हूं राम भजन के लिए। किन्तु वास्तव में मैं यहां आ पहुँचता हूं। यहां का सारा कार्य अधिकतर तो इनके कंधों पर है जिन्हें प्रायः मैं भी मनोमन मां कहकर प्रणाम कर दिया करता हूं। प्रत्यक्ष में यदि इन्हें मां कहने का अवसर मुझे प्राप्त होता तो........।"

जननायक के यह शब्द सुनकर मां का मुख रक्तिम हो उठा। वह एकाएक झेंप सी गई। इस पर जननायक ने भी मुख विकृत सा करके एक विचित्र सी मुद्रा ग्रहण कर ली जिसे देखकर अंजना अनायास ही खिलखिला कर हंस पड़ी। अब की उन दोनों ने भी हंसने में अंजना का साथ दिया। कुछ क्षण का यह हास परिहास समाप्त हुआ तो मां के संकेत से उस कोठरी का द्वार स्वमेव बन्द हो गया। और वह तीनों अपने भविष्य के कार्य-क्रम पर विचार-विनिमय करने जुट गए।

———

१३

गणतन्त्र दिवस समारोह के अगले दिवस कर्णसिंह ने एक निजी व्यक्ति को कुमारगिरी के नाम संदेश दे कर भेजा। उसमें मुक्ति-प्रदेश नामक गणतन्त्र की चर्चा करते हुए जननायक द्वारा अपने प्रति किए गए सद्-व्यवहार का उल्लेख किया था और साथ ही लिखा था कि जननायक की कृपा से मैं इस प्रदेश का अनुशासन सूत्रधार नियत हो चुका हूं। प्रदेश का समस्त सैन्य-बल मेरे अधीन है। मैं तुम से मित्रता के नाते अनुरोध करता हूं कि कुछ दिनों के लिए यहां पधार कर कृत-कृत्य करो।

इन शब्दों में किसी प्रकार के वैमनस्य की गंध तो नहीं मिलती थी, परन्तु इस पत्र का प्रभाव विकृत बुद्धि कुमारगिरि पर क्या पड़ेगा, इसका अनुमान लगाया जा सकता था। इसी लिए शशांक के गुप्त आदेश से भागवत द्वारा उस संदेश-वाहक को बन्दी बना लिया गया। और उसका संदेश अपने व्यक्ति द्वारा कुमारगिरि तक पहुँचा दिया। जब कुमारगिरि को उक्त संदेश प्राप्त हुआ तो उसने संदेश-वाहक को कर्णसिंह का विश्वस्त व्यक्ति जानकर आवश्यक शिष्टाचार के पश्चात् प्रश्न किया—"क्यों भई, क्या प्रदेश की समस्त सत्ता का अधिनायक इस समय कर्णसिंह जी को ही बनाया गया है न ?"

संदेश-वाहक प्रवेश का अन्तरङ्ग मित्र था। शशांक और दयालु चौधरी से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर चुका था। उसने बड़े ही सरल बनते हुए विनीत भाव से कहा—"हां महाराज, यह अक्षरशः सत्य है। और फिर महाराज कर्णसिंह जी असत्य थोड़े ही लिखेंगे। यह तो यहां का बच्चा-बच्चा जानता है।"

कुमारगिरि ने पहले उसकी ओर ध्यानपूर्वक देखा, फिर पत्र को पुनः पढ़ कर कुछ क्षण गम्भीरता से विचार किया; तदनन्तर बड़े ही मधुर स्वर में कहा—"भाई, महाराज की इस स्मृति के लिए मैं उनका

बड़ा आभारी हूं। परन्तु मेरी ओर से प्रार्थना करना कि यहां पर एक धार्मिक अनुष्ठान होने के कारण लगभग चार मास तक उनके दर्शन प्राप्त न कर पाऊँगा। यदि सम्भव हो तो पूर्णिमा की रात्रि को आयोजित माधुर्य उत्सव में अवश्य भाग लेवें। इस प्रकार हमारी भेंट भी हो जाएगी और उनको धर्मलाभ भी हो जाएगा। और देखो, मैं तुम्हें यह अमरवेल नामक लता देता हूं। महाराज को एक विचित्र प्रकार का रोग है। कर्णसिंह जी से कहना कि यह अमरवेल उस रोग के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी। यदि दो ही तीन दिन में इस औषधि से कोई लाभ न हो तो मुझे सूचना भेज देना। तब तक मैं और एक रसायन तैयार कर लूंगा।"

संदेश-वाहक ने कुमारगिरि की समस्त बातें सिर झुका कर नम्रता-पूर्वक सुनीं और जाने के लिए अनुमति माँगी। कुमारगिरि ने अधिक समय नष्ट न करते हुए कुछ मिठाई और फल पाथेय रूप में संदेश-वाहक को दिए। जिसे लेकर संदेश-वाहक अपने घोड़े पर सवार होकर पवन की तरह उड़ता हुआ पहाड़ियों को पार करके दृष्टि से ओझल हो गया। उसके अदृश्य होते ही कुमारगिरि ने तुरन्त एक व्यक्ति को बुला कर कहा—"सोमदेव ! जिस ओर वह व्यक्ति जा रहा है वह स्थान जानते हो ?"

सोमदेव ने उत्तर में कहा—"हां गुरुदेव, महाराज कर्णसिंह के पास।"

कुमारगिरि ने अपने स्थान पर ही खड़े हो कर पाँव पटकते हुए कहा—"मूर्ख हो तुम। इतने वर्ष मेरी सेवा करने के पश्चात् तुम इतना भी न पहचान पाए कि यह व्यक्ति मित्र था या शत्रु ? अस्तु, यही जान लेना तुम्हारे लिए पर्याप्त होगा कि यह व्यक्ति शत्रु पक्ष का था।"

सोमदेव ने उतावले होकर कहा—"तो फिर आपने उसे बन्दी

क्यों नहीं बनाया ?"

कुमारगिरि ने बात को स्पष्ट करते हुए कहा—"इस प्रकार इसे बन्दी बना लेने का तात्पर्य था, विरोधी पक्ष को स्पष्ट रूप में चुनौती दे देना।"

सोमदेव ने प्रश्न किया—"तो इसमें आपको क्या आपत्ति थी ? विरोधी पक्ष के पास धरा ही क्या है ? वहां की समस्त सत्ता का अधिनायक आपका शिष्य कर्णसिंह ही तो है। इतना कुछ हो जाने पर भी शत्रु को आप इतना भयावह मानते हैं ?"

कुमारगिरि ने अधिक तर्क न करते हुए कहा—"भोले बालक ! शत्रु कभी निर्बल नहीं होता। वह तुम से अधिक जागृत है। तुम यदि दिनभर आँखें खुली रखते हो, तो उसकी आँखें रात्रि के अन्धकार में भी कुछ न कुछ ढूंढती रहती हैं। मैं सैन्यबल से नहीं डरता। परन्तु बुद्धिबल के आगे सतर्क हो जाना ही अनिवार्य माना जाता है।"

सोमदेव ने कहा—"तो मेरे लिए क्या आज्ञा है गुरुदेव ?"

कुमारगिरि ने आदेश देते हुए कहा—"तुम शीघ्रातिशीघ्र तैयार हो कर कर्णसिंह के पास जाओ। परन्तु सीधे मार्ग से नहीं; तुम्हें छिप कर जाना होगा। नहीं तो कर्णसिंह के वास्तविक संदेश-वाहक की भांति तुम भी किसी काल कोठरी में बन्द हो जाओगे।"

"जो आज्ञा गुरुदेव।"

कुमारगिरि ने उसके कानों पर अपने होंठ लगा दिए। कुछ क्षण हिलते रहने के पश्चात् उसके होंठ निस्पंद हो गए। उसने शिष्य की पीठ थपथपाई और आशीर्वाद देते हुए कहा—"जाओ बेटा, भगवान एकलिङ्ग तुम्हारा कल्याण करें। तुम सफलता प्राप्त करके लौटोगे।"

और दोनों गुरु शिष्य वहां से चल दिए।

१४

कर्णसिंह के संदेश-वाहक को बन्दी बनाकर शशांक और प्रवेश ने उससे कर्णसिंह के बारे में और भी अनेकों बातें जान लीं। परन्तु अभी तक वह किसी निर्णय तक न पहुँच पाये। इतने में एकाएक किसी व्यक्ति ने आकर शशांक के कान में कुछ कहा। और वह प्रवेश आदि को वहीं छोड़कर उस व्यक्ति के साथ एक ओर चल दिया। एक गुप्त स्थान पर पहुँचकर उसने कुमारगिरि को संदेश पहुँचाने वाले अपने साथी को देखा। साथी ने भी कुमारगिरि द्वारा दी गई अमरबेल और अन्य सभी बातों को सुना और जाँचा। उसने साथी को विश्राम देने के लिए वहीं छोड़ दिया। और स्वयं सीधा जननायक के पास जा पहुँचा। जननायक ने प्रश्न किया—"कविवर, तुमने इस अमर-बेल और रसायन का क्या अर्थ सोचा ?"

शशांक ने कुमारगिरि द्वारा कर्णसिंह के नाम भेजे गए पत्र को भी दो बार ध्यान से पढ़ा। फिर उत्तर दिया—"बापू! यह तो सब स्पष्ट है। कर्णसिंह को संकेत किया गया है कि वह अपनी सत्ता का आश्रय लेकर महाराज अजयसिंह को इस प्रकार चारों ओर से घेर कर नष्ट कर डाले, जिस प्रकार अमर-बेल बेरी को लिपट कर समाप्त कर देती है। और रसायन से तात्पर्य है ऐसे विस्फोटक और भीषण पदार्थ, जिनकी सहायता से वह कर्णसिंह के लिए शिवालक का सिंहासन प्राप्त करना चाहता है।"

जननायक ने खेद प्रकट करते हुए कहा—"दुष्ट ब्राह्मण, अपने स्वार्थ के लिए गणतन्त्र को समाप्त करके यहां की प्रजा को पुनः राज्य-शक्ति के तलुए चाटने के लिए बाध्य करना चाहता है। शशांक! भले ही कर्णसिंह न मुक्ति-प्रदेश का हितैषी रहने की शपथ ग्रहण की है, परन्तु मैं इस व्यक्ति को बाल्यावस्था से पहचानता हूं। यह किसी भी समय अपने स्वार्थ के लिए आदर्श का गला घोंट सकता है।"

इस पर शशांक ने कहा—"तो बापू ! ऐसे चंचल प्रकृति के व्यक्ति को मृत्यु-दण्ड की अपेक्षा क्षमा करके प्रदेश की समस्त शक्ति का स्वामी बना देना क्या हमारी भूल न थी ?"

बापू ने शान्त स्वर में कहा—"नहीं कवि, उस समय हमारे लिए वही अभीष्ट था। वैसा न करने से हम अवसर भोगी और प्रतिहिंसक कहलाते। और तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि जनता ऐसे शासकों से भय खाया करती है, प्यार नहीं कर सकती। फिर जब तक हम जनता का प्यार प्राप्त न कर सकें, तब तक गणतन्त्र को कदापि स्थायी नहीं रख सकते। मैं विश्वास से कहता हूं कि इस समय जनता हमारी है। वह हमें अपना मित्र और सहायक समझती है। तुम्हारी एक ही पुकार उन्हें कभी भी एक सूत्र में बांध सकती है।"

शशांक ने विचारते हुए कहा—"आप की बात मैं स्वीकार करता हूं परन्तु अब जो विरोध दिखाई दे रहा है उसके लिए क्या उपाय सोचा आपने ?"

बापू ने उत्तर दिया—"जितनी तैयारी हम लोग कर चुके हैं क्या वह इस सङ्कट से बचने के लिए पर्याप्त नहीं ? हां, केवल सतर्कता की आवश्यकता है। किस समय शक्ति का प्रयोग होना चाहिए इसका ज्ञान होना अनिवार्य है।"

शशांक ने पूछा—"तो उस सन्देशवाहक का क्या किया जाए ?"

बापू ने कहा—"उसे मीठी मीठी बातों से किसी प्रकार भी सन्तुष्ट करके उसी के हाथ यह अमरबेल और कुमारगिरि का पत्र भिजवा दो। और कहलवा दो कि पूछने पर केवल इतना ही कहे कि अस्वस्थता के कारण उसने स्वयं जाकर कुमारगिरि के पास अपने एक घनिष्ट मित्र के द्वारा सन्देश भिजवा दिया था।"

यह कहकर जननायक वहाँ से उठकर एक ओर चलते हुए कहने लगे—"अच्छा कविवर ! यह कार्य निबटा कर शीघ्र मुझे महाराज

अजयसिंह के घर मिलो।"

उसके पश्चात् दोनों ने एक दूसरे को कुछ संकेत किये और विचार-मग्न होकर अपनी-अपनी दिशा की ओर चल दिये। शशांक ने कुछ पग आगे बढ़कर एक कार्यकर्त्ता से प्रवेश को बुलाने के लिए कहा और वह स्वयं एक पत्थरों से बनी कोठरी में चला गया। कुछ देर के पश्चात् प्रवेश वहां आ पहुँचा। उसने आते ही प्रश्न किया---"शशांक ! कर्णसिंह के सन्देशवाहक के लिए बापू ने क्या कहा ?"

शशांक ने पूछा—"तुम्हारा क्या विचार है ? क्या उसे किसी भी प्रकार से अपने साथ मिलाया जा सकता है ?"

प्रवेश ने उत्तर दिया—"उसका व्यवहार इतना मधुर और असाधारण शिष्ट जान पड़ता है कि सन्देह तो बना ही रहता है। परन्तु उसे इस प्रकार अपने यहां बन्दी अथवा मुक्त रूप में रखना भी आशङ्का से रिक्त नहीं है। उसकी भाव-भङ्गिमा और व्यवहार से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह एक सुलझा हुआ और दृढ़ प्रकृति का व्यक्ति है। उसके साथ इतने दीर्घ समय तक वार्तालाप करने पर भी हम कर्णसिंह और अपने प्रति धारणा नहीं जान पाये।"

शशांक ने गम्भीरता पूर्वक विचार करते हुए कहा--"हूं, समस्या विकट ही है। यह तो ऐसा ही हुआ कि सांप के मुंह में छछूंदर; खा जाए तो अन्धा, छोड़ दे तो कोढ़ी। मेरी धारणा में तो हमें बापू के निश्चय पर ही अटल रहना चाहिए। कुछ भी हो, बापू के वृद्ध नेत्र हमसे कहीं सूक्ष्म-दर्शक हैं। हम प्रत्युत्पन्न-मति हो सकते हैं; परन्तु बापू की तरह अनागत विधाता होना हमारे वश का नहीं है। इतनी बड़ी समस्या का उन्होंने दो ही क्षण में समाधान कर दिया। मेरे पूछने पर कि संदेश-वाहक के साथ कैसा व्यवहार किया जाए, उन्होंने निश्चित स्वर में उत्तर दिया—"प्रथम तो संदेशवाहक की मनोवृत्ति का निरीक्षण करो। यदि वह किसी प्रकार भी विश्वस्त न दीख पड़े तो बड़े ही प्रेम से कुमारगिरि का पत्र और अमर-बेल देकर सम्मान-

पूर्वक उसे विदा कर दो।" उसके साथ ही उन्होंने यह भी आदेश दिया है कि अपना एक विश्वस्त व्यक्ति जिससे कर्णसिंह पूर्णतया अपरिचित हो, उसकी सेवा में गुप्त रूप से भेज दो। वह वहां जाकर अपनी सेवा से उसका इतना विश्वस्त बन जाए कि छोटी से छोटी बात भी उसके लिए अंजानी न रहे।''

प्रवेश ने यह सब स्वीकार करते हुए पूछा—"इसके पश्चात् हमारे लिए क्या आज्ञा है ?"

शशांक ने उसके निकट जाकर इतने धीमे स्वर में कुछ कहा कि निकटतम व्यक्ति भी केवल उसके ओठों का स्पन्दन मात्र ही कठिनता से देख पाता था। प्रवेश के जाने के पश्चात् शशांक ने एक पत्र लिखा। पत्र का विषय यह था—

''गणतन्त्र के व्यक्तियों के नाम जननायक की ओर से आदेश है कि इस वर्ष की सारी उपज अजयसिंह जी की देख-रेख में समान रूप से जनता में बाँट दी जाए। किसी भी छोटी बड़ी असुविधा की सुनवाई स्वयं जननायक करेंगे। प्रदेश के अन्य प्रशासन-कार्यों का निरीक्षण करवाना अनुशासन अधिनायक श्री कर्णसिंह जी के लिए आवश्यक है। और इस कार्य के लिए वह जननायक को प्रतिदिन नियमित रूप से प्रातःकाल दस बजे से लेकर ग्यारह बजे तक मिल सकेंगे। तत्पश्चात् जननायक एक घड़ी के लिए जनता के बीच में आकर उससे बातचीत करेंगे। अनियमित समय पर भेंट करने के लिए कुछ समय पूर्व कविवर शशांक द्वारा समय निश्चित करना होगा। प्रदेश के विधानानुसार कोई भी अधिकारी कोई भी नई आज्ञा जननायक की अनुमति के बिना नहीं दे पाएगा। यहां के भूतपूर्व शासक श्री अजयसिंह व उनकी पुत्री अंजना को भी कोई विशेष व असाधारण सुविधा प्राप्त न होगी। उन्हें भी प्रदेश के विधानानुसार अन्य लोगों की भांति कुछ न कुछ कार्य करना होगा।"

शशांक ने पत्र पर जननायक की मुद्रा अङ्कित करते हुए एक कार्य-कर्त्ता को उसे प्रकाशित करके विज्ञापित करने लिए दे दिया और स्वयं विश्राम करने के लिए वहीं एक खाट पर लेट गया।

शक्ति है।"

कुमारगिरि ने कर्णसिंह की बातों का सन्तुलन करते हुए भी अंगूठे से धरती कुरेदते हुए कहा—"मैं अभी तक यह नहीं समझ पाया कि कौन सी गुप्त शक्ति विरोधी पक्ष को समय समय पर चेतावनी देते हुए प्रेरणा देती रहती है। आज तक जो भी शस्त्र हमने शत्रु पर छोड़ा, वही पलट कर हमारे ऊपर आन पड़ा। झरनों के पानी से हमारा सर्वस्व नष्ट कर दिया गया। यह कोई छोटी बात नहीं। सम्भव है कल सूर्योदय होते ही विद्युत गति से यह बात सारे प्रदेश में प्रसरित हो जाए और हमें अपने आप को कहीं छिपाने के लिए तिल मात्र भी स्थान प्राप्त न हो सके।"

कर्णसिंह ने उतावले हो कर कहा—"तो क्यों न हम वहां लौटने की अपेक्षा कहीं दूर भाग चलें ?"

कुमारगिरि ने धैर्य धारण करते हुए कहा—"हमारे भाग जाने से तो और भी अनिष्ट हो जाने की सम्भावना हो सकती है। पहले तो हम शत्रु की परिधि से सम्भवतः निकल ही न पायेंगे। ऐसी दशा में यदि हम बन्दी हो गए तो हमारा भविष्य क्या होगा ? इसलिए उचित यही है कि अपनी ओर से इस घटना पर आवरण डाल दो और प्रदेश में वापिस जाकर इस प्रकार रहो कि कोई शंका भी न कर पाये।"

कर्णसिंह ने किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो कर कहा—"यदि वहां पहुँचते ही बन्दी बना लिया गया तो ?"

कुमारगिरि ने आश्वासन देते हुए कहा—"इस बात से निश्चिन्त रहिए महाराज ! इस समय आपको कोई कुछ न कहेगा, तथापि अब हम दोनों को विशेष सतर्क रहने की आवश्यकता है। मुख से शब्द निकालते समय सावधान रहिएगा। वहां की पथरीली और जड़ दीवारें भी आपकी शत्रु बन चुकी हैं।"

कर्णसिंह ने निस्तेज नेत्रों से कुमारगिरि की ओर देखते हुए कहा—"कहीं इस बार भी हमारा पासा उलटा पड़ गया तो हम लोग स्वमेव मृत्यु के मुख में पड़ जाएंगे। मैंने विचार किया था कि यदि प्रदेश के अधिनायक होने के नाते इस वर्ष की समस्त उपज मेरी अधीनता में आ जाएगी, तो मैं अन्न का एक दाना भी जनता तक न पहुँचने दूंगा। और जनता इससे ऊब कर विद्रोह कर उठेगी मैं सत्ता-पूर्वक जनता को पीस कर रख दूंगा, या किसी अन्य ढंग से जनशक्ति का आश्रय पाकर अराजकता का प्रसार कर दूंगा। परन्तु ऐसा न हो सका। बुड्डे की ओर से एक और विज्ञाप्ति के अनुसार अजयसिंह को प्रदेश की समस्त आय व उपज का संरक्षक बना दिया गया है। इस विषय में मुझे उसकी आज्ञानुसार कार्य करना होगा। और इस पर भी मेरे ऊपर दूसरा प्रतिबन्ध यह है कि मुझे प्रतिदिन नियमित रूप से प्रात:काल दस बजे से ग्यारह बजे तक उस बुड्ढे की चाकरी बजानी होगी। इससे तो मैं और भी पंगु बन गया। यहां तो मैं इस विश्वास से पहुँचा था कि कल सूर्योदय से पूर्व शिवालक की जनता को अपने सम्मुख दया की भीख माँगते पाऊँगा। और मुक्ति प्रदेश के जननायक, अंजना, अजयसिंह, प्रवेश और शशांक आदि के लिए उचित दण्ड निर्धारित करने में व्यस्त हूंगा। पर, वह कुछ न हो सका। कुछ भी हो, साधु महाराज! अब हम इतना आगे बढ़ आये हैं कि कुछ न कुछ करना ही होगा। नहीं तो किसी भी समय नि:शेष कर दिये जायेंगे। मुझे तो सच पूछो उस बुड्ढे बगुला भक्त को देखकर कपकपी हो आती है। वह ऊपर से जितना सरल और शान्त प्रतीत होता है. उससे कहीं अधिक कपटी और हिंसक पशु है। कुछ भी करो, मुझे उस राक्षस से मुक्त करो। मैं वचन देता हूं कि यदि इस समय आपने मुझे उबार लिया तो पूर्ण सत्ता प्राप्त हो जाने पर अक्षरश: आपके आदेश का पालन करता हुआ और धर्म की जड़ें सुदृढ़ करता हुआ शासन करूंगा।"

यह कहकर वह कुमारगिरि के आगे शिष्यवत् झुक गया। कुमारगिरि ने उसके कन्धों को थपथपाते हुए कहा—"महाराज! जब तक मैं जीवित हूं, तब तक आप पर कोई आंच न आ पायेगी। आपके लिए मेरा जीवन की बाज़ी लगा देना ही धर्म है। अब आप विलम्ब न कीजिए। रात्रि तृतीय-पहर को पार कर रही है, किसी भी प्रकार से यथाशीघ्र अपने स्थान पर लौट जाओ। परसों किसी भी समय मैं अपने आगामी कार्य-क्रम से सूचित कर दूंगा। कल सूर्योदय के कुछ समय पश्चात् स्थिति का अध्ययन करते हुए यदि उचित प्रतीत हुआ तो मैं अल्मोड़ा और निकटवर्ती ग्रामों और नगरों में गुप्त रूप से भ्रमण करने चल दूंगा। आज की घटना के विषय में यदि आपसे कोई पूछ भी ले तो कह देना कि कुछ उपद्रवियों ने प्रदेश पर आक्रमण करने की योजना बनाई थी। मैं इस बात की विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए रात्रि को नगर छोड़कर बाहर गया था।"

इन शब्दों के साथ ही कर्णसिंह को हाथ से चले जाने का संकेत करते हुए कुमारगिरि ने अपना घोड़ा वहीं कर्णसिंह के लिए छोड़कर प्रस्थान कर दिया। कर्णसिंह ने एक बार चारों दिशाओं में ध्यान-पूर्वक देखा, फिर अश्वारूढ़ होकर चल दिया। उसके जाते ही छोटी-छोटी झाड़ियों के साथ मिली हुई एक चट्टान सरक कर परे जा गिरी। और उसके पीछे से एक युवक इधर-उधर निहारता हुआ उठ खड़ा हुआ। उसने भली प्रकार से आश्वस्त होकर आलस्य भगाने के लिए एक अंगड़ाई ली। उज्ज्वल श्वेत-द्युति के अमल-धवल प्रकाश में उसका गौर वर्ण खिल उठा। उसने एक घाटी पर चढ़कर पुनः इधर-उधर देखा, और वहीं बैठकर अचिन्तापूर्वक चन्द्रमा की ओर लालायित नेत्रों से निरन्तर देखता रहा। अभी वह पूर्ण रूप से विश्राम के लिए बैठ भी न पाया था कि उसे एक सिंगी का स्वर सुनाई दिया। वह आवेग से उठ बैठा। और सिर पर पांव रखकर ऊंची-नीची घाटियों को

पार करता हुआ जिस ओर से सिंगी का स्वर सुनाई दे रहा था, उसी ओर भाग चला। कुछ समय चलने के पश्चात् वह एक वृक्ष के नीचे एक घुड़सवार से वार्तालाप करता हुआ दिखाई दिया। घुड़सवार ने आतुरता प्रकट करते हुए कहा—

"शशांक भैया ! यह समय कविता करने का नहीं और न ही निश्चिंत होकर इस विजय में चन्द्रमा को देखने का अवकाश है आपको। यहां से हमें शीघ्र चल देना चाहिए।"

शशांक ने उत्सुकता से पूछा—"क्यों, ऐसी क्या बात है भागवत ? तुम इतने भयभीत क्यों हो ?"

यह कह कर दूसरे घोड़े पर सवार हो गया। भागवत ने कहा—"यदि हम शीघ्र ही यहां से न निकल गये तो सम्भव है कि हम चारों ओर से घेर लिये जाएं। क्योंकि अभी अभी मैंने एक व्यक्ति को नगर की ओर सरपट घोड़ा दौड़ाते देखा है और उससे पहले एक घुड़ सवार पश्चिम की ओर जाता हुआ भी दिखाई दिया था। क्या ठीक कि इसमें भी कोई भेद हो। क्योंकि वह भी कुमारगिरि है।"

और इसके साथ ही उसने अपने और शशांक के घोड़े को एक एक छड़ी जमाई। फिर दोनों घुड़सवार पवन से बातें करते हुए लगभग पौन घण्टा चलने के पश्चात् गुप्त द्वार से होकर अपने स्थान पर जा पहुँचे। वहां पहुँचते ही दोनों ने घोड़े एक व्यक्ति को सम्हाल दिये और आवश्यक पूछ-ताछ करते हुए सीधे वहीं जा पहुँचे जहां प्रवेश और अजयसिंह उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन दोनों के पहुँचते ही प्रवेश ने कहा—"क्यों शशांक ! सिद्ध ?"

शशांक ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाते हुए—कहा "निःसंदेह।"

फिर अजयसिंह ने प्रश्न किया—"क्यों भागवत भाई! अपनी बात कहो ?

भागवत ने उत्तर दिया—"इस बार तो उन लोगों ने ऐसी मुंह

की खाई है कि स्मरण रखेंगे। रंग मात्र भी तो सामग्री न बच पाई होगी उनकी।"

अजयसिंह ने प्रश्न किया—"कर्णसिंह कहां है ?

शशांक ने कहा— 'इस समय तो वह अपने महल में मजे से खुर्राटे ले रहा होगा।"

प्रवेश ने पूछा —"और कुमारगिरि ?"

शशांक ने कहा —"आधुनिक युग का वह चाणक्य देव अपने नदी किनारे टूटे हुए मन्दिर में अपने अतीत को कोसता हुआ भविष्य का चिन्तन कर रहा होगा।"

प्रवेश ने बात को रंग देते हुए कहा —"कुछ भी हो, वह है जोरदार व्यक्ति। मुंह की खाता है पर साहस नहीं छोड़ता।"

इस बार शशांक ने भी उसका साथ दिया और कहा—"इस बात का तो मैं भी समर्थन करता हूं महराज। यदि वह न होता तो निश्चय ही कर्णसिंह आज आत्म-हत्या कर लेता अथवा भाग जाता। परन्तु उसके दो ही वाक्यों ने इसे जैसे पुर्नजीवन प्रदान कर दिया।"

इस बार प्रवेश ने कहा—"इसी लिए तो बापू कहा करते हैं कि कुमारगिरि यदि अपना हठ छोड़कर सीधी राह पर आ जाये तो हम कुछ ही दिनों में द्विगुणित शक्ति प्राप्त करके मुक्ति-प्रदेश को शीघ्र ही आदर्श गणतन्त्र बना सकें।

फिर एकाएक कुछ ध्यान आते ही उसने भागवत को सम्बोधित करते हुए कहा—"भागवत ! तुम इसी समय सीधे मां के पास पहुँच जाओ। वहीं जाकर विश्राम करना।"

भागवत के प्रस्थान करते ही शशांक ने शेष सभी बातें भी कह डालीं, और अन्त में पूछा—"प्रवेश ! कुमारगिरी के इस चक्र-व्यूह को तोड़ने के लिए किसे पार्थ बनाकर भेजा जाये ?"

अजयसिंह ने बात पकड़ते हुए कहा—"हमारे पास इस कार्य के

लिए एक सिद्धहस्त व्यक्ति है।"

प्रवेश ने एकाएक बात काट कर पूछा—"कौन, भागवत ?"

अजयसिंह ने हंसते हुए कहा—"नहीं भाई। भागवत के वश का यह रोग कहां। उसे तो एक ही कार्य आता है। वह आकाश-पाताल छानकर भी गुप्त से गुप्त बात का पता लगाने में निपुण है। परन्तु यहां तो जनता के हृदय की बात जानने की अपेक्षा उसके हृदय पर अपना प्रभाव डालने वाला व्यक्ति चाहिए।"

इस बार प्रवेश और शशांक एक दूसरे की ओर देखने लगे। अजयसिंह ने बात को और अधिक न बढ़ाते हुए गम्भीर स्वर में कहा—"अंजना।"

एकाएक जैसे प्रवेश को किसी बिच्छू ने काट लिया हो। उसने अन्यमनस्क भाव से कहा—"महाराज! यह जानते हुए भी कि अब उसके वहां पहुँचते ही शत्रु गिद्धों की तरह पर झाड़ कर इसके पीछे पड़ जाएगा। नहीं, वहां मैं जाऊंगा।"

इस पर शशांक ने आपति की—"तो जैसे आपको वहां कोई जानता ही नहीं। अरे मेरे भाई, गणतन्त्र निर्माण के पश्चात् तो हम सब भूत की तरह प्रसिद्ध हो गए हैं। पर हां, यदि जननायक से अनुमति प्राप्त हो जाए तो मैं जाने को तैयार हूं।"

प्रवेश ने बात बढ़ाने की इच्छा से कहा—"परन्तु मुझे साथ ले कर। नहीं तो अकेले जाकर कहीं धोखा खा जाओगे।"

शशांक ने वहीं पर बात समाप्त करते हुए कहा—"देखा जाएगा। हां, तो महाराज! पौ फटने को है।"

अजयसिंह ने विनोद पूर्ण स्वर में कहा—"और मैं कर्णसिंह की कृपा से राजमहल के ईंट पत्थरों समेत कुछ ही क्षणों में उड़कर स्वर्ग सिधारने को हूं।"

शशांक ने शान्त स्वर में कहा—"अभी आप उस स्वर्ग में नहीं

जा सकते। आपके अविरल परिश्रम से तो हमारा प्रदेश ही स्वर्ग बन जाएगा। फिर आपको इतनी दूर यात्रा का कष्ट क्यों करना होगा?"

प्रवेश ने कहा—"बापू की बुद्धि भी विधाता ने, जान पड़ता है, अपने हाथ से बनाई है। न जाने किस तरह उनके कानों में बात आ टपकती है। यदि वह समय पर सावधान न कर देते तो सभी की कपाल-क्रिया हो गई होती और धरे का धरा रह जाता यह गणतन्त्र का कार्य···।"

अजयसिंह ने श्रद्धापूर्वक सिर झुकाते हुए कहा—"वह असाधारण विभूति है जो हमारे सौभाग्य से हमें प्राप्त हो गई है। नहीं तो कुमारगिरि जैसे कूटनीतिज्ञ को उत्तर देना कोई खेल न था।"

अभी बात समाप्त भी न हो पाई थी कि ज़ोर का धमाका हुआ। तीनों ने बाहर आकर एक ऊंचे स्थान पर खड़े होकर देखा। राजमहल से अग्नि की ज्वालायें प्रज्ज्वलित हो रही थीं। नगर में चारों ओर भयंकर कोलाहल हो उठा। अजयसिंह अपने महल की इस प्रकार ईंट से ईंट बजती देख कर पहले तो कुछ दुःखी सा हो उठा, फिर भाव बदल कर मुस्कराते हुए कहने लगा—"चलो अच्छा हुआ; राजस्वता के साथ-साथ यह राजमहल भी समाप्त हो गया। यदि भावना रूप में और क्रिया रूप में हम लोगों का स्तर सर्वसाधारण की भांति हो गया था, तो जीवन-चर्या और रहन-सहन ही क्यों भिन्न रह जाता? अब हम लोग वास्तव में राजा न रह कर गणतन्त्र के सदस्य कहलाने योग्य हो गए हैं।"

शशांक ने स्मरण करते हुए कहा—"तो अब हमें यहां से भी चल देना होगा! बापू और सब लोग हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

अजयसिंह ने कहा—"कल प्रातःकाल की सभा का क्या होगा?"

शशांक ने उत्तर दिया—"सभा खुले आङ्गन में होगी महाराज! आप ही के कथनानुसार हमारे सभी कार्यों में गणतन्त्र की सुगन्ध आना

उत्तम होगा। और सच पूछिए तो जो कुछ हुआ उत्तम हुआ। कल प्रातःकाल सूर्योदय होते ही पंचायत सभा के स्थान पर शोक सभा होगी और...... ।"

और अजयसिंह ने वाक्य पूर्ण करते हुए कहा—"उसमें मेरी और अंजना की दुःखद मृत्यु पर शोक प्रस्तुत किया जाएगा' जो निःसन्देह तुम्हें ही करना होगा। अच्छा है कविवर! प्रायः तो आपकी कविता को वास्तविकता प्राप्त करने के लिए कल्पना का आश्रय लेना होता है। पर, विधि ने आज वास्तविकता को साकार करके एक नवीन और अद्भुत कविता के लिए प्रचुर सामग्री प्रदान की है।"

अब प्रवेश ने भी आगे बढ़ कर पूछा—"तो क्या अब आप दोनों पिता-पुत्री कभी भी संसार के सम्मुख न आ पाएंगे?"

अजयसिंह ने निश्चिन्त स्वर में कहा—"अवश्य आएंगे। परन्तु, गुप्त रहने के इस सुअवसर से लाभ उठाने के पश्चात्। तब तक हम दोनों पिता-पुत्री विरोधियों की दृष्टि में धूल झोंक कर प्रत्येक अभीष्ट स्थान पर निरद्वन्द पहुँच सकेंगे; और शत्रु हमारी मृत्यु पर प्रसन्नता के गीत गाता रह जाएगा। अब चलिये उजाला होने को है।"

इसके पश्चात् तीनों मित्र छाया की भांति लुप्त हो गए।

१६

अगले दिन प्रातःकाल होते होते जनता मधु-मक्षिकाओं की भांति इस अकस्मात् की घटना पर आश्चर्य व अपने अपने मत का प्रदर्शन करती हुई आकर एकत्रित हो गई। सभी को महाराज अजयसिंह और उनकी सुपुत्री अंजना देवी के इस प्रकार अकाल देहान्त से बहुत क्षोभ हुआ। इसके अतिरिक्त उसे यह निर्णय कर लेने में विलम्ब न हुआ कि यह कार्यवाही कर्णसिंह तथा उनके सहयोगियों की है। परन्तु जननायक का मन्तव्य उनके लिए ज्ञातव्य था। इसी लिए कुछ एक साधारण प्राणियों के अतिरिक्त और किसी ने भी यह बात अपने मुंह पर लाना उचित न समझा। परन्तु सूर्य निकले एक घण्टा व्यतीत हो चुका था और कोई भी अधिकारी व कार्यकर्त्ता न दीख पड़ने से वह लोग मनोमन भयभीत से अवश्य जान पड़ते थे। जब और कुछ देर तक भी कोई आता हुआ दिखाई न दिया तो सब के सब एक साथ जननायक की कुटी की ओर चल दिए। वहां तक वे अभी पहुँच भी न पाये थे कि चौराहे में एक ढोल पीटते हुए व्यक्ति ने उन्हें संकेत से रोक लिया और कहने लगा—"महान दुःख की बात है कि गत रात्रि अकस्मात् ही राजमहल में आग लग जाने से पूज्य महाराज अजयसिंह और उनकी लोकप्रिय सुपुत्री अंजना देवी का देहावसान हो गया है। जननायक की आज्ञानुसार मुक्ति-प्रदेश की जनता को सूचित किया जाता है कि मध्याह्न के पश्चात् नगर के विशाल प्राङ्गण में एक शोक सभा का आयोजन किया गया है। जनता से अनुरोध है कि वह दिवंगत श्रद्धेय महाराज अजयसिंह और उनकी सुपुत्री अंजना देवी जी को श्रद्धाञ्जली भेंट करने के लिए उक्त सभा में सम्मिलित हों!"

यह सुनते ही जनता चुपचाप अपने घरों की ओर चल दी। और ढोल पीटने वाला इसी प्रकार ढोल पीटता हुआ उच्च स्वर में यही

संदेश कहता हुआ आगे बढ़ गया। और जब वह कर्णसिंह के निवास-स्थान के आगे जाकर यह संदेश कहने लगा, तो कर्णसिंह और उसके सहयोगी कृत्रिम क्रोध प्रकट करते हुए नीचे आ उतरे। तथा आस-पास खड़े व्यक्तियों के हृदय के भाव जानने के लिए तत्सम्बन्धी वार्तालाप करने लगे। प्रदेश की पताका झुका दी गई। इस गोल-मोल संदेश में ढूंढने पर भी कर्णसिंह को कोई कृत्रिमता न मिल सकी। घर वापिस लौटकर उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उसके मन पर से कोई भारी चट्टान अपने आप हट गई हो। रात को पराजित होकर लौटने का जितना दुःख उसके हृदय को कचोट रहा था, वह आन्तरिक प्रसन्नता में परिणत हो गया। परन्तु वह इस प्रसन्नता को अन्तस्तल में ही छिपा लेने का प्रयत्न कर रहा था कुछ देर निरन्तर विचार करने के पश्चात् वह अपने निवास-स्थान के विशेषकर गुप्त कक्ष में आँखें मूँद कर एक कौच पर जा बैठा। उसकी दृष्टि में अजयसिंह से भी अधिक अंजना की मृत्यु विशेष सुखद और महत्व-शाली प्रतीत हुई। क्योंकि अंजना के समाप्त हो जाने पर निकटवर्ती क्षेत्रों में पहुँचकर कोई भी अन्य व्यक्ति उसके मार्ग को कण्टकाकीर्ण न कर सका था। आनन्द-विह्वलता में उसके मुख से निकल ही तो गया--"अब मैं शिवालक का आधा महाराज बन ही गया। वाह साधु बाबा! तेरी बुद्धि का जोड़ नहीं मिलेगा। कितनी सफाई से उपद्रवकारियों को निगलने का साधन जुटा लिया तूने। अब तो मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि तू अपने बुद्धिबल से शेष नन्दों को समाप्त करके मुझे चन्द्रगुप्त बना देना।"

इतने में उसे बाहर किसी का पदचाप सुनाई दिया। वह चौंक उठा। उसने झट से उठकर द्वार खोला, देखा, तो उसका एक कर्मचारी खड़ा था। कर्मचारी ने अभिवादन करते हुए उसके कानों के पास जाकर कुछ कहा। उसके उत्तर में कर्णसिंह ने इतना ही कहा—"साधु बाबा से...।"

कर्मचारी ने चौंकते हुए और स्थिति का आभास कराते हुए मुंह पर अंगुली रखकर चुप हो जाने का संकेत किया। कर्णसिंह तुरन्त बात पलटते हुए करने लगा— "हाँ, तो हरिभाऊ! मुझे मध्याह्न के पश्चात् शोकसभा में सम्मिलित होना है। उसके पश्चात् भी निःसंदेह इस पीड़ा विशेष के कारण मैं कोई कार्य विशेष न कर सकूंगा। इस लिए कोई भी कार्य हो तो कविवर शशांक से कह देना।"

इसके बाद उसने एकाएक मुद्रा परिवर्तित करते हुए शोकातुर हो कर कहा— "हरिभाऊ! भैया निःसन्देह देव पुरुष थे। प्रदेश के नव निर्माण में हमें उनकी कितनी आवश्यकता थी!"

कर्मचारी पहले तो उनकी ओर देख कर मौन रहा फिर उसका मन्तव्य जानकर होठों में ही मुस्करा कर जिधर से आया था उसी ओर चल दिया। उसके जाते ही कर्णसिंह के मस्तिष्क में एक और विचार आया कि किसी भी प्रकार जननायक को प्रसन्न करके प्रदेश की उपज और आय का रखवाला नियत हो सके। यह विचार मन में आते ही उसने दो ही क्षण में अपनी काया पलट ली। पूर्ण-शक्ति द्वारा अपनी मनोवृत्ति और अन्तर्भावना पर अधिकार प्राप्त कर के घर से बाहर निकल आया। उस के एक एक शब्द से वेदना प्रस्फुटित हो रही थी। कोई क्षुद्र से क्षुद्र व्यक्ति भी उसे पथ में मिल जाता, तो वह अपने पूज्य बड़े भैया और प्यारी भतीजी को स्मरण करके उच्च स्वर में विलाप करने लग जाता। अन्त में बापू की कुटी के निकट जाकर तो वह इस प्रकार करुणा-मिश्रित स्वर में रुदन करने लगा, जिसे सुनते ही कोई पाषाण हृदय पिघले बिना न रहता। वहां पर अनेकों व्यक्तियों ने उसे चारों तरफ़ से घेर लिया और उसे भांति भांति की बातें कह कर आश्वासन देने लगे। सब को इसी तरह अपनी ओर आकर्षित करता हुआ, एक सफल अभिनेता की भांति अपने

अभिनय का प्रदर्शन करता हुआ, जननायक के सम्मुख घुटने टेक कर जा बैठा और कहने लगा— "पूज्य जननायक ! आप की गोद में खेल कर ही मैं बड़ा हुआ हूं। आप पिता के समान हैं। बड़े भैया की अनुपस्थिति में अब मेरे लिए इस विशाल संसार में केवल आप की ही परम पुनीत छाया रह गई है। मुझे इस समय बहुत डर लग रहा है......।"

जननायक ने उसे एक ही दृष्टि में शिखा से पादयुगल तक देखा। फिर एक ही क्षण किञ्चित् विचार करके शान्त व गम्भीर स्वर में कहा—"भाई ! इस सृष्टि पर सच्चा सहोदर तो वही है जिससे कोई कल्याणकारी विचार प्राप्त हो। और यह गुण महाराज अजयसिंह में था। उनका सद्व्यवहार और बुद्धिबल शत्रुओं तक को भी आकर्षित किए बिना न रह सकता था। सच पूछो तो हमारी एक भुजा टूट गई है उनके बिछुड़ जाने से। और फिर हमने अपनी भुजा के अतिरिक्त एक ऐसी अधिष्ठात्री को भी खोया है जिसके बिना हमारा नव-निर्माण कार्य ही खोखला और अस्तित्वहीन सा दीख पड़ता है। परन्तु फिर भी मैं निराश नहीं होता। क्योंकि मुझे विश्वास है कि आपकी भद्रता, सहिष्णुता एवं कर्मठता हमें अपने मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा अवश्य देती रहेगी।"

कर्णसिंह ने अपनी बात का प्रभाव पड़ते देख कर साहस करके कहा—"देव ! मैं उस दिवंगत आत्मा की सौगन्ध खा कर वचन देता हूं कि आपको मुक्ति-प्रदेश के नव-निर्माण में जीवन पर्यन्त सहयोग दूंगा।"

इसके पश्चात् इधर-उधर की कुछ और बातें करके उसने कहा— "वर्षा आरम्भ होने को है। अनाज खलिहानों में इकठ्ठा हो रहा है। यदि आपका आदेश.........।"

अभी वह बात भी समाप्त न कर पाया कि जननायक ने अपने

सतेज, पर दयालु नेत्रों से उसकी ओर देखा। फिर उत्तर दिया—

"आपकी कर्मण्यता देखकर मुझे हर्ष होता है। भावना पर विजय पाकर कर्त्तव्य के लिए कटिबद्ध हो जाने से निश्चय ही कल्याण की सम्भावना की जा सकती है। मुझे तो सचमुच वर्षा का ध्यान ही न था; क्योंकि आपके बड़े भैया पर यह उत्तरदायित्व था, और अब हमें ही यह विशिष्ट पर कठिन कार्य निबटाना होगा। अस्तु, अभी इसी समय तो हमें इसके लिए इतना चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। किसी के ऊपर भी यह उत्तरदायित्व डाल दिया जाएगा, और सब ठीक हो जाएगा।"

अभी उनकी बात चल ही रही थी कि प्रवेश और शशांक भी वहाँ आ उपस्थित हुए। उन्होंने भी पूर्व निर्णित योजनानुसार कर्णसिंह के समीप शोक प्रकट किया। और कुछ क्षण के शिष्टचार के पश्चात् सभी लोग खुले आङ्गन की ओर चल दिए।

१७

जिस समय नगर में अंजना और महाराज अजयसिंह की अकाल मृत्यु पर शोक प्रस्ताव किये जा रहे होंगे, उस समय वे दोनों मां के पास सकुशल बैठे आगामी कार्य-क्रम की रूप रेखा पर विचार कर रहे थे। मां ने शान्त स्वर में कहा—"ऐसा भी अद्भुत अवसर आ ही जाता है जब कि किसी उपयोगी से उपयोगी व्यक्ति को मृतक की अशुभ संज्ञा देनी पड़ जाती है। महाराज! विपक्षियों की दृष्टि में आप सदा के लिए इस संसार से विदा हो चुके हैं। परन्तु हम लोगों के लिए तो वास्तव में आपने आज जन्म ही लिया है, क्योंकि सामन्तों से घिरे राजमहल में पहुँच कर आपसे वार्तालाप तो दूर हम लोग दर्शन करने के लिए भी तरसते थे।"

अजयसिंह ने कहा—"निःसंदेह मां! तुम्हारा यह कथन ठीक ही तो है कि आज मैंने पुनर्जन्म लिया है। यही बात मैं कविवर शशांक और प्रवेश को भी कह रहा था कि इस राजमहल के साथ साथ मेरे मन में छिपी हुई राजस्वता और अकर्मण्यता भी मिट्टी में मिल गई। शिवालक का शासक जिसकी सूरत देखते ही वहां के प्राणी उसे भयानक पशु समझकर इधर-उधर छिप जाते थे, आज वह मर गया। और वह अपने अच्छे कर्मों के फलानुसार तुम जैसी मां की गोदी में छोटा सा बच्चा बनकर तुम्हारी ममता और शिक्षा का प्रसाद पाने के लिए मचल रहा है। मैंने अंजना से जब जब भी तुम्हारे बारे में सुना, निरन्तर यही लालसा जागृत रहने लगी कि मैं किसी भी प्रकार किसी भी मूल्य पर तुम्हारे सतत सहवास का स्वाद चख सकूं।"

मां ने कुछ विनोद पूर्ण स्वर में कटाक्ष करते हुए कहा—"राजा हो न! तभी तो प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक वस्तु में स्वाद के लोभी रहते हो। परन्तु अजयसिंह! तुम्हारा राजत्व नष्ट हो जाने से अब मैं तुम्हें

ऐसी ही संज्ञाओं से पुकारूंगी, जिनसे प्रायः कोई साधारण से साधारण व्यक्ति किसी को भी सम्बोधन कर सकता है और ध्यान रहे कि तुम्हें मेरा यह निर्णय स्वीकार करना ही होगा, क्योंकि तुमने मुझे मां कहा है। मेरा यह नियम रहा है कि जो व्यक्ति मेरे सम्मुख आत्मसमर्पण कर देता है, मैं उसे प्रवेश का सहोदर ही समझा करती हूं।"

अजयसिंह ने मां को झुककर प्रणाम करते हुए कहा—"तो आदेश दो मां!"

फिर मां ने अंजना पर दृष्टि डाली। वह अब तक मौन बैठी कुछ सोच रही थी। मां ने उसे सतृष्ण नेत्रों से निहारते हुए कहा—

"क्यों बेटी! तुम क्यों इस प्रकार चिन्तित मुद्रा बनाये बैठी हो? चिन्ता का आधा विषय तो समाप्त हो गया।"

अंजना ने जैसे निद्रा में से जाग कर कहा—"नहीं तो मां! यहां पहुँचकर चिन्तित होने की कौनसी आवश्यकता रह जाती है? तुम्हारे तो दर्शन मात्र से ही चिन्ताएं दुम दबा कर भाग जाती हैं।"

मां ने तुरन्त बात पलटते हुए कहा—"अच्छा तो अब समय नष्ट नहीं करना चाहिए। जब तक जननायक और अन्य लोग यहां पहुँचें, तुम्हें कुछ आवश्यक बातें समझा दूँ। इस समय एक एक पल हमारे लिए बहुत महंगा है।"

और वह उठ कर त्वरित गति से द्वार की ओर चल दी। अजयसिंह ने इस बार मौन भंग करते हुए कहा—"मां! तो क्या अंजना को इस बार भी एकाकी ही जाना होगा?"

मां ने मुख पर दृष्टि गाड़ते हुए कहा—"क्यों, क्या तुम्हें भय प्रतीत हो रहा है?"

अजयसिंह ने नम्रतापूर्वक कहा—"मां! भय तो उत्पन्न हो जाना स्वभाविक ही है, परन्तु मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। जिस कार्य के योग्य आप समझें, इसे वही कार्य सौंप सकती हैं परन्तु मेरा निवेदन था

कि यदि मुझे भी इस बार इसी के साथ कार्य करने का अवसर दिया जाए तो क्या हानि है ?"

मां ने मधुर स्वर में उत्तर दिया —"हानि तो कुछ नहीं बेटा ! केवल हमें निश्चित कार्य-क्रम को भङ्ग करके दूसरा नवीन कार्य-क्रम बनाना होगा।"

अजयसिंह ने उसी प्रकार झुक कर कहा—"तो, वह तो अभी बन सकता है। थोड़े ही समय में जननायक और प्रवेश आदि सभी लोग यहीं पर आने वाले हैं। यह प्रस्ताव सभी के समक्ष प्रस्तुत करके विचार विनिमय किया जा सकता है।"

मां ने किञ्चित् दृढ़ स्वर में कहा —"तभी कुछ हो सकता है अजयसिंह ! किन्तु अकारण ही यहां का बना हुआ कार्य-क्रम नहीं तोड़ा जा सकता। इस बार अंजना को पूर्ण स्वतन्त्रता से प्रत्येक स्थान पर पहुँच कर कार्य करने का अवसर दिया गया है। वह नगरों, पहाड़ों और ग्रामों में गुप्त रूप से अशरीरप्राय होकर विचरेगी। और तुम्हें बहुरूपिया बन कर केवल उस क्षेत्र में इसप्रकार बेधड़क अपने उद्देश्य का प्रचार करना होगा कि कोई भी पहचानने न पाये। यथाशक्य तो तुम्हें कुमारगिरि की ही परिक्रमा लेते रहना होगा, ताकि वह कूटनीति का देवता अपनी आसुरी शक्ति से अनर्थ न करने पाये। वहां की एक एक क्षण की सूचना जननायक और हम तक पहुँचानी होगी। इस कार्य में सहायता के लिए तुम्हारे साथ कुछ गण्यमान्य, पर सर्वसाधारण से अपरिचित व्यक्तियों को भी भेजेंगे।"

अब अंजना ने भी एक प्रश्न किया—"मां ! मेरे साथ किसे भेजने का निश्चय किया है आपने ?"

मां ने उत्तर दिया—"तुम अपनी इच्छानुसार परिस्थिति को भली-भांति समझते हुए किसी को भी ले जा सकती हो। वैसे प्रवेश को हमने प्रदेश की उपज का संरक्षक और वितरण-कर्त्ता इसी लिए नियुक्त किया

है कि वह स्वतन्त्रता पूर्वक भ्रमण करते हुए तुम्हें समय समय पर मिलता रहे। कभी भी कोई ऐसा संकट तुम पर आन पड़ने की सम्भावना हो तो उसे सूचित कर देना।"

इस प्रकार बातें करते करते तीनों गुप्त दुर्ग के महाद्वार में प्रविष्ट हुए, फिर एकाएक मां ने अकेले बाहर आकर कुछ व्यक्तियों को संकेत करके अपनी ओर बुलाते हुए सांकेतिक भाषा में तुरन्त चले जाने के लिए कहा।"

उक्त व्यक्तियों के चले जाने पर उसने ताली बजाई। ताली बजने के अगले क्षण ही परिवर्तित वेश में अजयसिंह और अंजना प्रविष्ट हुए। उस समय मां के अतिरिक्त उस विचित्र वेश में दोनों पिता-पुत्री को निश्चय ही कोई न पहचान सकता था। मां ने अजयसिंह को सम्बोधित करते हुए कहा—"जाओ बेटा! शीघ्र प्रस्थान करो। तुम्हें निश्चय ही सफलता प्राप्त होगी।"

अजयसिंह ने मां के चरण छूये और आशीर्वाद प्राप्त कर के अंजना की ओर देखते हुए कहा—

"यह हमारी सब की मां है। प्राण देकर भी इसकी आज्ञा का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है। यदि जीवन ने साथ दिया तो हम अवश्य मिलेंगे।"

इस पर मां ने निश्चयात्मक भाषा में अजयसिंह की पीठ थपथपाते हुए कहा—"हम अवश्य मिलेंगे अजयसिंह! निराशा और अकर्मणयता हमारे विधान में इसी प्रकार लांच्छित और निषिद्ध मानी जाती है, जिस प्रकार शासन-सत्ता और अधिकार।"

अजयसिंह ने अधिक समय नष्ट न करते हुए अंजना के सिर पर सस्नेह हाथ फेरा, उसे अपने सीने से लगाया, और त्वरित गति से चल दिये। उनके प्रस्थान करते ही कर्त्तव्यमयी कर्मठता की प्रतिमूर्ति मां का ममत्व-पूर्ण हृदय भी एकाएक द्रवित हो उठा। उसने आत्म-विस्मृत सी

होकर अंजना को अपनी दोनों भुजाओं में कस लिया, और उसका मस्तक चूमते हुए गद्‌गद् स्वर में बोली—"तुम कितनी भाग्यशालिनी हो बेटी! ऐसा महान् व्यक्ति तुम्हारा पिता है, जिसकी वक्र दृष्टि से शिवालक का अणु-अणु कम्पित हो जाता होगा, वह कर्त्तव्य के लिए किस प्रकार कटिबद्ध हो उठा। और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इतना वैभव लुट जाने के पश्चात् भी कितना संतुष्ट और तेजस्वी प्रतीत होता है।"

अंजना ने सरल भाव से कहा—"यह सब तुम्हारा ही प्रभाव है मां! और फिर सत्ता तथा वैभव का लोभ करते हुए मैंने इन्हें अपने जीवन में कभी नहीं देखा। उन्होंने तो हमें भी प्रारम्भ से यही शिक्षा दी है कि कर्त्तव्य के लिए वैभव और भावना का गला घोटने में संकोच करना भीरुता है।"

इतने में मां को कुछ स्मरण हो आया। उसने धीमे स्वर में कहा—"तुम्हें इस प्रकार अपने स्थान पर भी स्वतन्त्र रूप में नहीं घूमना चाहिए। शीघ्रता से लौट चलो मेरे साथ। वह देखो, सामने अनेकों व्यक्ति काम कर रहे हैं। मैं नहीं चाहती कि उनके कान तक भी भनक पड़े कि तुम जीवित हो। और देखो, तुम्हें अपने प्रवास-काल में विशेष कर ज़िला अधिकारी की दृष्टि से बच कर रहना होगा। चलो तुम्हें आवश्यक पदार्थ दे डालूं। इसके अतिरिक्त मुझे इस बात का तो विश्वास ही है कि तुम अपना मार्ग स्वयं निश्चित कर सकोगी।"

अंजना ने उसके साथ लौटते हुए कहा—"मां, जाने से पूर्व क्या बापू से भेंट न हो सकेगी? प्रवेश जी और कविवर······।"

मां ने उसका आशय समझते हुए कहा—"हां-हां, क्यों नहीं। वे लोग अभी आ ही रहे होंगे। उनसे अवश्य मिल लेना। सम्भव है जननायक से कोई नया सुझाव भी प्राप्त हो सके। विशेषकर शशांक की सूझ तो उत्तम ही सिद्ध हुआ करती है। और फिर प्रवेश से भी मिल लेना; हो सके तो आगामी कार्य-क्रम के लिए उससे मन्त्रणा कर

लेना।"

वार्तालाप करती हुई दोनों गुप्त कोठरी में जा पहुँची तो देखा जननायक, प्रवेश और शशांक के साथ कुछ बातचीत कर रहे थे। मां को देख कर प्रवेश और शशांक उठ खड़े हुए। बापू ने भी सम्मान प्रकट करते हुए कहा - "आइए, आप ही की प्रतीक्षा में हम बैठे हुए थे।"

प्रवेश ने उतावले हो कर पूछा—"क्या महाराज अजयसिंह चले गए?"

मां ने सरल भाव से कहा—"यहां पर कोई महाराज अजयसिंह नहीं आए थे। मुक्ति-प्रदेश का एक गुप्त कार्य-कर्त्ता अजयसिंह अभी अभी यहां से गया है।"

सभी इस पर मुस्करा दिये। पर प्रवेश को इतने से सन्तोष न हुआ। वह पुन: बड़बड़ाया—

"वह हमसे मिल कर भी न गए। कुछ और बातचीत करने का अवसर ही मिलता।"

इस पर मां तो चुप रही, पर अंजना ने उत्तर दिया—"अधिक वार्तालाप से विषय का महत्व नष्ट हो जाया करता है महानुभाव! यहां का एक ही नियम है, वह यह कि इधर मां ने आदेश दिया और हम प्रत्यंचा से छूटे हुए बाण की भांति निःसंकोच चल दिए।"

इस पर जननायक ने हंसते हुए कहा—"वाह! कैसी सुन्दर बात कही। कविवर के थोड़े बहुत सम्पर्क से तुम्हें शब्द सजाने का तो अच्छा अभ्यास हो गया है।"

अब मां से भी गम्भीर न रहा गया। उसने चुटकी लेते हुए कहा—"इसने तो कुछ ही दिनों में थोड़ी सी भेंट होने पर ही शशांक से जो कुछ भी ज्ञातव्य था जान लिया। परन्तु प्रवेश की बुद्धि पर इतने वर्ष निरन्तर साथ रहकर भी कुछ नहीं जम पाया।"

शशांक ने कुछ लज्जित से होते हुए कहा—"यह तो प्रवेश के

प्रति अन्याय है मां ! यह तो मेरे जीवन का प्रवेश-द्वार है। तुम बहुत जल्दी भुला देती हो इस बात को। अभी अभी की बात है यदि इसने भागवत को दृढ़ करके मेरे साथ न भेजा होता तो कुमारगिरि और कर्णसिंह को पराजय देकर जब मैं ऊंची घाटी पर मयङ्क माधुरी का आनन्दोपयोग कर रहा था, वहीं पर शत्रु द्वारा दबोच लिया गया होता। मैं सूक्ष्मतम पदार्थ को देख सकता हूं, परन्तु उसे देखकर एकाएक काम करने की अपेक्षा उसी में उलझ कर रह जाता हूं।"

मां ने घड़ी की ओर देखते हुए कुछ क्षण गम्भीर विचार किया। फिर ओजपूर्ण स्वर में बोली—"बहुत विलम्ब हो गया। अब हमें शीघ्र ही अपने कार्य में जुट जाना चाहिए। क्योंकि मुझे सूचना मिल चुकी है कि हरिभाऊ नाम का व्यक्ति कर्णसिंह का सन्देश लेकर कुमारगिरि के पास पहुंच गया है। इसलिए पूज्य जननायक से यदि मैं यह अनुरोध करूं तो उचित ही होगा कि अंजना को यथाशीघ्र विदा करके भीतर चलकर निरीक्षण कर लें।"

जननायक ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए अंजना के निकट आकर उसे आशीर्वाद देते हुए कहा— 'बेटी ! पिछली बार जब तुम शिवालक से निर्वासित हुई थी तो मैं तुम्हारे साथ था। परन्तु, अब तुम्हें एकाकी ही अपने विश्वस्त सहयोगियों के साथ यहां से जाना होगा। उस समय केवल कर्णसिंह और उसके मुट्ठी भर सहयोगियों को छकाना ही पर्याप्त था। परन्तु अब तो तुम्हें छाया की भांति अपने आप को सुरक्षित रखते हुए कार्य करना होगा। मुझे तुम्हारे सामर्थ्य पर विश्वास है। यह भी स्वीकार करता हूं कि तुम्हारी वाणी में वह मोहनी है जो दो ही क्षण में किसी को भी वश में कर सकती है। इस बार तुम्हें ग्रामों में ही नहीं, नगरों में भी घूमना होगा। कार्य-क्रम के अनुसार तुम आज ही ब्यालू से निबट कर अन्धेरे में ही यहां से छिप कर चल देना। तुम्हारे साथ जो बीस व्यक्ति जाएंगे उनमें दस महिलायें होंगी जिनसे तुम अभी

थोड़े समय में परिचित हो जाओगी ।"

जननायक के मौन होते ही मां ने अंजना को संकेत द्वारा अपने पास बुलाया और उसे साथ लेकर वहां से चली गई । शशांक ने प्रवेश को अपनी ओर आकृष्ट करते हुए कहा-"तुम्हें भी कल की सभा के पश्चात् अपने काम में जुट जाना है । इसलिए बापू से अभी आदेश प्राप्त करके इस विज्ञप्ति से कल सूर्योदय होते ही सर्वसाधारण को परिचित कर दो ; तदनन्तर सभा में ही तुम्हें सब के सामने कार्य सौंपा जाएगा । किन्तु, इस बात के लिए सावधान रहना भैया ! कि कर्णसिंह के चक्षुओं में तुम कांटे की तरह चुभने लग जाओगे । वह सोचता होगा, अनुनय-विनय करके जननायक से उपज का संरक्षण अपने अधिकार में कर लेगा । और बस········ ।"

इस पर दोनो हंस दिये । जननायक ने पीछे मुड़ कर चौंकते हुए कहा—"क्यों, बड़े प्रसन्न हो रहे हो ?"

शशांक ने उत्तर दिया--"हां बापू ! कभी कभी खलता की व्याख्या करने में भी विशेष सुख प्राप्त होता है । हां, तो बापू ! अब फिर हमारे लिये क्या आज्ञा है ?"

जननायक ने कहा—"तुम्हारे लिए अभी विश्राम करने की आज्ञा है । कुछ खा पीकर सो रहो ।"

प्रवेश ने पूछा—"और आप········ ?"

इस पर जननायक ने कहा--"मैं तो सदा ही विश्राम करता हूं । जब देखो, लम्बा ताने लेटा रहता हूं । और तुम लोग हो जो मशीन की तरह जुटे दीखते हो आठों पहर ।"

शशांक ने जिज्ञासा की--"आपके विचार में कुमारगिरि, क्या कर्णसिंह को मिलने यहां आएगा ?"

बीच ही में प्रवेश ने कहा—"क्यों उसे यहां आने में क्या आपत्ति है ? वह तो अवश्य आएगा ।"

जननायक ने कहा—"आ भी जाए तो क्या हानि है ? अरे भई, गणतन्त्र में तो शत्रु का भी स्वागत हुआ करता है। और फिर यह तो भारतवर्ष है। हम लोग भला अतिथि का अपमान भी तो नहीं कर सकते; प्रत्युत यदि वह तुम लोगों से मिले तो उसका इतना सम्मान करो कि उसकी द्वेश भावना शिथिल पड़ जाए और इसके साथ साथ उसके दुर्बुद्धि भी कुण्ठित हो जाए।"

शशांक ने कहा—"उसका नाम कुमारगिरि है अर्थात् पर्वत के समान निस्पृह और पाषाण हृदय। इन बातों का उस पर कोई सीधा प्रभाव पड़े, यह तो असम्भव है।

बापू ने अपनी बात पर बल देते हुए कहा—"टेढ़े सीधे प्रभाव से हमें कुछ हानि नहीं, अपितु यहां उसके आने से हमें कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा।"

प्रवेश ने सुझाव दिया—"यदि उसे यहां से लौटते हुए मार्ग में ही दबोच लिया जाए तो कैसा रहे ? इससे महाराज अजयसिंह और अंजना के लिए कितनी सुविधा हो जाएगी। मेरी बात मानो तो एक-एक विरोधी को चुन-चुनकर नगर के चौराहे में शूली पर चढ़ा दो। और किसी को दण्डनायक नियुक्त करके उसे इतना अधिकार दो कि वह जिसे भी विरोध करता पाये, बिना परामर्श किये ही मृत्यु-दण्ड दे डाले। फिर देखें किस प्रकार कोई अनुशासन भंग करने की स्पर्धा करता है। कभी हाथ जोड़ने वाले के सामने भी जनता झुकी है ?"

जननायक ने शान्त भाव से कहा—"हमने जनता को झुकाने के लिए तो मुक्ति-प्रदेश की स्थापना नहीं की। तुम्हारे प्रस्ताव के अनुसार चलने पर तो हमारा समस्त प्रयास विफल हो जाएगा। क्या हमने सिंहासन और अधिकारों के लोभ से इतना कुछ किया है ? हमारा तो भरसक प्रयत्न यही है कि हम हिंसक विरोधियों को भी

गुप्त रूप में नष्ट करें। जनता के कानों तक यह बात न पहुँच सके कि हमारे पास भी साधारण राज्यों की भांति नर-हत्या के साधन हैं। और फिर हम यदि नर-हत्या भी करते हैं तो जनता के कल्याण के लिये।"

शशांक ने व्यंग्य करते हुए कहा—"वास्तव में प्रवेश को शासक बनने का स्वप्न दीख रहा है।"

प्रवेश ने इस मधुर व्यंग्य का उत्तर भी इसी भाव में दिया—"शशांक ! मैं इस बात को अस्वीकार नहीं करता कि तुम्हारी प्रतिभा अगम्य है। परन्तु यह मैं कहे देता हूं कि ऐसी अस्त-व्यस्त व्यवस्था को सत्ता और दण्ड के बिना सुधारा नहीं जा सकता। फिर सत्ता तो सत्ता-धारी का अवलम्ब चाहती है। भला एक-छत्र सिंहासन की स्थापना के बिना हम उस सत्ता को अक्षुण्ण कैसे बनाए रख सकते हैं ?"

शशांक ने कहा—"नहीं प्रवेश ! मैं नहीं मानूंगा यह। एक-छत्र सिंहासन, सत्ता और दण्ड विधान ये तीनों वस्तुएं बनाए रखने से तो वह सब कुछ बना ही रहेगा, जिसका कि हम विरोध करते हैं। क्योंकि इन तीनों वस्तुओं के लिए सदैव संघर्ष हुआ करता है। और हमारी मनोकामना है कि वर्तमान संघर्ष के पश्चात् आज का मानव अत्यन्त शान्तिप्रिय और निरद्वन्द हो जाए।"

प्रवेश ने अपनी बात को बल देते हुए कहा—"फिर भी शशांक ! दो भिन्न भिन्न पथों पर एक साथ चलकर हम एक ही उद्देश्य को प्राप्त नहीं हो सकते। या तो इन नर-हत्या के प्रसाधनों को भी प्रकट और अप्रकट में त्याज्य समझो, अथवा अहिंसा और निरद्वन्दता का निरीह पाखण्ड छोड़ दो।"

इस बार बापू से मौन न रहा गया। उसने प्रवेश की आँखों में ध्यान-पूर्वक देखा और अत्यधिक गम्भीर वानी में कहा—"प्रवेश ! तो क्या तुम्हारे विचार में निरद्वन्दता और अहिंसा पाखण्ड है ? क्या तुम

चाहते हो कि सदैव की तरह मानव इस संघर्ष की चक्की में पिसता रहे; और अहिंसक भेड़ियों की तरह मुंह बाए रक्त से प्यास बुझाने के लिए आठों पहर भूमता रहे और फिर यह नर हत्या के प्रधान जो तुम्हें यहां अपने आस-पास दिख रहे हैं, क्या एसे संकटमय काल में अनावश्यक प्रतीत होते हैं ? क्या अमृत के घट को देवताओं के लिये सुरक्षित रखने के प्रयोजन से भगवान विष्णु ने दानवों से छल नहीं किया था? और तो और राहु के पेट में अमृत पहुँचकर दानवता के अमर रह जाने के भय से जगन्नियन्ता त्रिलोकीनाथ ने अपने सुदर्शन-चक्र से क्या उसका सिर धड़ से विलग नहीं कर दिया था ? यह तो करना ही पड़ता है। सत्य और अहिंसा को अखंड बनाए रखने के लिए उसके विरोधी तत्वों को किसी भी प्रकार से समाप्त कर देना ही तो उचित होगा।"

प्रवेश ने अपनी बात की पुष्टि पाते हुए कहा—"मेरा भी तो तात्पर्य यही है। मैं शासन सत्ता व दण्ड विधान का आश्रय भी तभी तक अनिवार्य मानता हूं जब तक हमारा यह सत्य और अहिंसा का स्वप्न सत्य न हो जाय।"

बापू एकाएक निरुत्तर से हो गए। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि उन्हीं की ही बात को उलट-पलट कर पुनः उन्हीं के सिर पर थोप दिया गया हो। परन्तु शशांक ने उत्तर दिया—"प्रवेश ! मैं कुछ समय के लिए अनिवार्य रूप में घृणित से घृणित मार्ग को भी अपनाने के लिये परामर्श दे सकता हूं। परन्तु वह घृणित से घृणित मार्ग समष्टि में धर्मराज युधिष्ठिर से कहलाए गए असत्य वाक्य से अधिक अस्तित्व नहीं रखता। ऐसे स्थलों पर भाव शुद्धि का ही महत्व गण्य होता है !"

प्रवेश ने कहा—"निःसंदेह, शशांक ! मेरी इस बात में रंचमात्र भी कलुषिता और स्वार्थपरता की गन्ध नहीं मिलेगी तुम्हें।"

बापू ने तुरन्त ही बात समाप्त करने के भाव से कहा—"तो इसमें हमें भी तो कोई आपत्ति-जनक बात नहीं दिखती।"

अभी शशांक कुछ कहने को ही था कि अंजना आ पहुँची। उसने आते ही कहा—"बापू ! आपको और प्रवेश जी को माता जी बुला रही हैं। महाद्वार पर उनसे भेंट हो सकेगी। अविलम्ब पहुँच जाइए।"

दोनों व्यक्ति चले गए। और अंजना धीरे से शशांक के समीप ही एक चौकी घसीट कर बैठ गई। शशाँक इस समय नेत्र बन्द किये विचार मग्न था। कुछ देर सतृष्ण नेत्रों से अपलक उसकी ओर देखते हुए उसने धीमें स्वर में उसकी समाधि भंग करने के लिए कहा—"कविवर !"

शशांक को सम्भवतः उसकी ध्वनि सुनाई न दी। वह उसी प्रकार निश्चल रहा। अंजना ने फिर कुछ क्षण विचार किया और अन्त में उसके सिर के स्निग्ध-केशों में अंगुलियां चलाते हुए अतीव मधुर और सरस शब्दों में कहा—"कवि ! क्या अकेले ही स्वर्गिक आनन्द का उपभोग करोगे ?

अब की शशांक के सारे शरीर में जैसे सिहरन सी हो उठी। उसने उसके हाथ पर अपना हाथ रख दिया और खींचकर अपने और निकट बैठाते हुए उसकी ओर देखकर कहा—"तुम तो धरती की अधिष्ठात्री हो। यहां के अमूल्य रतन तुम्हारे लिए हैं। और मैं तो मात्र कल्पना शक्ति द्वारा कुछ न कुछ आशातीत अलौकिक आनन्द का अनुभव अवश्य कर लेता हूं। परन्तु तुम्हारी उपस्थिति में तो वह अलौकिक आनन्द एक निरीह विडम्बना ही तो है। हां, तो देवी ! आज तो तुम्हें पुनः अपना अनुष्ठान आरम्भ कर देना है। सम्भव है इस भीषण संघर्ष में से गुज़रते हुए हमसे कोई भी किसी क्षण सदा के लिए बिछुड़ सकता है। यदि तुम···।"

अंजना ने उसका मन्तव्य कुछ कुछ जाना और विनम्र भाषा में प्रार्थना की—"तुम्हारा कहना यथार्थ है कवि ! यही सोचकर तो मैंने इस समय तुम्हारे समीप बैठने का अवसर ढूंढ निकाला है। लगभग

दो घण्टे तक हम दोनों के लिए कोई कार्य नहीं है। क्यों न हम भविष्य की कटुताओं को भी मधुर बनाए रखने के लिए कुछ अमृत संचित कर लें अपने हृदय में।"

अन्तिम शब्द कहते कहते उसका सुन्दर और गौर बदन रक्तिम हो उठा। उसके अङ्ग अङ्ग फड़क उठे। शशांक ने भी कुछ ऐसा ही अनुभव किया। कुछ क्षणों के लिए वह किसी अज्ञात पर सरस जगत में जा पहुँचा। आज उसने प्रथम बार अपने सम्मुख किसी रजताभा को इतने भावावेश में पाया। उसने उसकी ठोड़ी को अपनी तर्जनी से ऊपर उठाते हुए कहा —

अंजना ! यह जीवन निःसंदेह अमूल्य है, जिसमें हमें ऐसे ऐसे अनुपम पदार्थ प्राप्य होने सम्भव हो जाते हैं जिसकी कल्पना मात्र से हम स्वर्गिक सुख का अनुभव कर लेते हैं। मेरा वश चले तो मैं तुम्हें···।"

अंजना ने कौतूहलमय वाणी में कहा—"तो तुम मुझे एक रत्न-जटित डिबिया में बन्द कर के सुमेरु के उच्चतम शिखर पर रख देते, और शुभ्र राका के प्रकाश में मेरी छवि का आभास पा कर गद्‌गद् हो कर एक महाकाव्य रच डालते। और उस महाकाव्य का नामकरणोत्सव मनाने के लिए स्वर्ग के समस्त देवता पृथ्वी पर अमृत छिड़कते हुए आते। ऋषि मुनि यज्ञ रचते। और स्वयं मां वीणा-वादिनी तुम्हारे मधुर आलापों से प्रसन्न हो कर उस काव्य के प्रथम पृष्ठ पर लिख देती—'हिमकिरीटनी" या इससे भी कोई अद्‌भुत नाम से उस महाकाव्य को अमरता का वरदान प्राप्त होता।"

इस बार कवि महाशय गम्भीर न रह सके। उन्होंने कृत्रिम रोष प्रकट करते हुए कहा—

"तुम्हें बातें बनानी बहुत आगई हैं।"

अंजना ने कहा—"सब कवि महाराज की कृपा है। क्या आपकी वाक्‌माधुरी··· ?"

शशांक ने वहां से उठ कर दूर बैठते हुए कहा—"पहले अपनी कविता समाप्त कर लो। फिर कुछ और बात होगी।"

अंजना तुरन्त अपने मुख पर के भाव परिवर्तित कर लिए और विनीत भाव से कर-बद्ध प्रार्थना करती हुई बोली—"क्या रूठ गए कवि ! यह तो विदा के क्षण हैं। न जाने···।"

यह कहते कहते उसका कंठ अवरुद्ध हो उठा। आंखें भर आईं। अब की कवि विचलित हो उठे। उसने उसके हाथों को अपने हाथों से लेते हुए कहा—"मानिनी ! क्या हंसी हंसी में मन भर आया? मुझे क्षमा कर दो देवी ! और बन्द करो इन आंसुओं को। नहीं तो अनिष्ट हो जाएगा। मेरे हृदय में तो प्रलय मच रही है, यदि इन आंसुओं को न रोका तो सृष्टि बह जाएगी।"

अंजना ने अस्फुट भाषा में कहा—"तुम्हारी इस बात का तो बहाना है। लोचनों का यह जल तो न जाने कब से तुम्हारे चरणों को पखारने के लिए छलक-छलक पड़ता था।"

और इसके साथ ही उसके नेत्रों से धार बहकर सीधी शशांक के चरणों पर आ पड़ी। उष्ण अश्रु धार के पांव पर पड़ते ही शशांक चौंक उठा। उसने पांव की ओर झुकती हुई अंजना को ऊपर उठाते हुए कहा—

"न-न, ऐसा मत करो। यह पांव इस योग्य कहां, जो मुक्ति-प्रदेश की अधिष्ठात्री इनका अश्रुओं से प्रक्षालन करे। देवी ! तुम्हारे श्वास की शुभ्रता से तो रात्रि का अन्धकार पुंछ जाएगा। तुम्हारे अश्रुकणों का मोल सहस्रों मुक्तामणियों से भी अधिक, मानवों के हृदय की पवित्रता से आंका जाएगा। मैंने तुम्हें ठेस पहुँचाई। इसके लिए···।"

अंजना ने वाक्योच्छेद किया—'नहीं-नहीं और मत चढ़ाओ मुझे। तुम सभी मेरी इतनी प्रशंसा करते हो कि कभी कभी तो मुझ भी इस बात का भ्रम होने लग जाता है कि मैं गगन-प्रवासिनी हूं या

पंचभूतों से निर्मित मानवी !"

शशांक ने स्पष्टि देते हुए कहा—"गगन-प्रवासिनी मानवी से क्या स्पर्धा करेगी ? तुम इस धरती की अधिष्ठात्री महाशक्ति हो, जिसके धूलि-कणों से वरदान प्राप्त करने के लिए अम्बर के वासी देवी-देवता अनेकों बार यहां जन्म ग्रहण करके भी तृप्त नहीं हो पाते। यह धरती साधना का अवलम्बन है। यहीं पर कार्य करके कोई भी मुक्ति का अधिकारी हो सकता है।"

अंजना ने कहा—"परन्तु विरह-वेदना की असीम पीड़ा भी तो यहीं प्राप्त होती है।"

शशांक ने उत्तर दिया—"हां, विरह की असीम वेदना में भी तो मादकता है। इसी के बल पर ही तो काव्य की सृष्टि हुई। और फिर काव्य क्या है, मानव हृदय की आलोचनात्मक व्याख्या ही तो। यदि यही न रहे तो हमारी बुद्धि ही कुण्ठित हो जाए।"

अंजना ने जिज्ञासा की—"तो तुम्हें विश्वास है कि पीड़ाओं की कीच में भी बढ़कर अमृत मिलता है ?"

शशांक ने कहा—"निःसंदेह, असीम पीड़ा ही अपरिमित आनन्द का उदगम है। पर हम भी कहां दार्शनिकता में जा अटके। देखा, बुद्धिवाद के चक्कर में मनुष्य जीवन का सच्चा सुख खो बैठता है।"

अंजना ने समर्थन किया—"यह तो है ही। बुद्धिवाद प्रत्येक सुन्दरतम पदार्थ का चर्म नोचने की प्रेरणा देता है। इसी लिए तो स्वीकार करना पड़ता है कि दार्शनिक व आलोचक का हृदय मरुस्थल से भी अधिक शुष्क होता है। उसके गर्भ से कभी उत्पत्ति नहीं होती। उस बालू पर निरन्तर अमृत छिड़क कर भी हम उसे शस्य-श्यामल नहीं बना पाते।"

शशांक ने तुरन्त कहा—"इसी लिए तो इससे मैं कोसों दूर भागता हूं। आओ, कुछ समय के लिए हम आराध्य से सिद्धि का वरदान

मांगें।"

अंजना ने व्यंग्य किया—"क्या तुम दूसरों के वरदान से ही सिद्धी पाना चाहते हो ? इसके लिए तो केवल परिश्रम अनिवार्य है।"

शशांक ने इस बार ऊबते हुए कहा—"देखो, फिर लगी खाल नोचने।"

अंजना ने हंसते हुए कान को हाथ लगाया और कहा—"भूल हो गई। पर इस भूल की पूनरावृत्ति से बचने के लिए एक गीत सुनाओ। विचार स्वमेव अपना मार्ग बदल देंगे।"

शशांक कोठरी में से वीणा ले आया और कहने लगा—"तो वीणा तुम बजाओ, मैं गाता हूं।"

अंजना की कोमल अंगुलियां वीणा के तारों पर थिरक उठीं। दो ही पल में कवि का हृदय झंकृत हो उठा। वातावरण के कण-कण से माधुर्य झर रहा था। कवि कुछ क्षण वाद्य और वादिनी की ओर अपलक निहारता रहा। फिर उसके हृदय में जैसे भावनाओं की बाढ़ सी जग उठी। उसके अधर उन्मुक्त हो उठे। और उन्मत्त स्वर दिशाओं में गूंज उठा। वीणा के मदिर स्वर में घुल कर कवि ने आत्मविस्मृत हो कर अपने आराध्य के प्रति अभ्यर्थना करते हुए कहा—

"हृदय भुवन में दीप जला कर,
पथ आलोकित कर दो मेरा !
सजल दृगों से मोती चुन कर—
लुटा खजाना भर दो मेरा !!"

यह गाते-गाते गायक ने आराध्य के आगे झोली फैला दी। लगभग आधा-घण्टा तक कवि की स्वर लहरी ने जैसे पवन की गति रोक दी हो। वहां काव्य और संगीत का ही राज्य स्थापित हो गया। स्वर लहरी के साथ-साथ वादिनी की अंगुलियां भी वाद्य के अन्तिम

स्वरों तक पहुँचतीं, और कभी मूक प्रायः जान पड़तीं। उस समय का दृश्य अवर्णनीय और अनिर्वचनीय आनन्द से ओत-प्रोत था; इतना कह कर ही हमें सन्तोष प्राप्त करना पड़ेगा। कवि गाते-गाते भावावेश में वाद्य के निकट आ बैठे। अन्त में गीत समाप्त हुआ और कवि ने नेत्र मूंद कर वीणा पर ही अपना सिर टिका दिया। उसके सिर के ऊपर ही अंजना ने उसी तरह आंखें बन्द किये अपना सिर रख दिया। न जाने वह कब तक ऐसे ही पड़े रहते, यदि जननायक ने बाहर से प्रवेश को न पुकारा होता। जननायक कह रहे थे 'प्रवेश! अंजना के जाने की तैयारी कर डालो। उसके प्रस्थान में केवल एक घण्टा शेष है।' यह कहते हुए जननायक किसी और दिशा में चले गए, परन्तु अंजना और शशांक की समाधि भंग हो गई। उन्हें अपनी स्थिति का आभास हुआ। अंजना ने एकाएक शशांक को सचेत करते हुए द्वार पर आकर देखा, किन्तु वहां कोई न था। उसके मस्तिष्क में जननायक के शब्द गूंज उठे—'प्रस्थान में केवल एक घण्टा शेष है।' और वह पुनः चौंक उठी। उसकी समस्त मादकता अदृश्य हो गई। उसने शशांक की आंखों में देखा और किंचित् विषाद-पूर्ण स्वर में कहा—"कवि! समय मुझे तुमसे दूर ले जाने के लिए बहुत तीव्रता से पहुँच रहा है।"

शशांक ने भी जैसे हृदय की भावनाओं को बरबस कुचलते हुए अस्फुट भाषा में कहा--

"हां, निश्चित समय के पहुँचने में विलम्ब नहीं हुआ करता। इसी लिए इस निश्चित समय को किसी ने क्रूर-काल का नाम भी तो दे दिया है।"

इससे अधिक वह कुछ न कह सका। अन्तिम शब्दों पर जैसे वह चीत्कार सा कर उठा। अब की अंजना ने उसकी अवस्था को जाँचकर आश्वासन देते हुए कहा-— 'विचलित न हो कवि! मैं इस प्रवास में भी कभी न कभी तो तुम्हें मिलती ही रहूंगी। और फिर तुम्हें तो

प्रसन्न होना चाहिए कि तुम्हारी अंजना तुम्हारे स्वर्णिम स्वप्नों को सिद्ध करने वाले अनुष्ठान में भाग लेने जा रही है। मेरे देवता, मैं तुम्हारे प्रेम का प्रसाद पाकर आगे से भी कहीं अधिक कर्मठ और तेजस्विनी सिद्ध होऊँगी। तुम्हारी मनोहर छवि अपने हृदय में पाकर मैं कतिपय मुग्ध हो लिया करूंगी। तुम भी मेरे जाने के पश्चात् अपनी भावनाओं को साकार बनाने में जुट जाना। देश के नव-निर्माण में तुम्हें दोनों हाथों से कार्य करना है। मैं तुम्हारी अग्रदूति बनकर कार्य करूंगी। इस समय तुम बापू को पूर्ण सहयोग देते हुए और मां का आशीर्वाद पाते हुए अपने मधुर जागृति गीतों द्वारा जन-जन के मानस में नव-जागरण बनकर प्रविष्ट हो जाना। हमारा आज का मिलन ऐतिहासिक तथ्य बन जाए। आराध्य से पाई हुई अपरिमित शक्ति दोनों हाथों में जनता पर वरदान के रूप में न्योछावर कर देना। अपने हृदय में एकत्रित किये हुए प्रेम को अपने मानवों के मध्य में अटके हुए व्यवधान को दूर करने के लिए प्रयुक्त कर लेना।''

इन शब्दों के समाप्त होते ही कुछ क्षण पूर्व की आत्मविस्मृत अभिसारिका पुनः कर्त्तव्य और कर्मठता की सजीव प्रतिमा दीख पड़ी। अब तक शशांक भी पूर्ण रूप से सजग हो उठा था। उसने देश के मानचित्र पर दृष्टि गाड़ते अंजना का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया और कहा—

"अंजना! यह है हमारा मुक्ति-प्रदेश! परन्तु अमुक-अमुक स्थानों पर कुछ व्यक्ति इसके निवासियों की मुक्ति छीनकर उन्हें क्रीत दासों के रूप में देखना चाहते हैं। और इन स्थानों पर उन लोगों का गुप्त रूप में कार्यक्रम चल रहा है। यह स्थान तुम्हारे चाचा कर्णसिंह का है। यहां से इस गुप्त पर्वतीय मार्ग में से होते हुए उसके दूत आते जाते हैं। तुम्हें इन रेखाङ्कित स्थानों पर पहुँचकर प्रवेश की सहायता से शत्रु के उपक्रम को समाप्त करना है और यह नीले रङ्ग से रंगे

नीले-क्षेत्र अपने सहायक हैं। इस रेखाचित्र और अपनी दिनचर्या-बोधिनी के आश्रय पर तुम्हें कार्य करना है। तुम्हें आज रातों-रात इस मार्ग से युवक भिक्षु का रूप धारण कर अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचना है। वहां पर भागवत और उसके साथी तुम्हारा स्वागत करेंगे। वहां से फिर उन लोगों की मन्त्रणा से अपनी इच्छानुसार जहां भी तुम जाना चाहो, चली जाना। इसके अतिरिक्त तुम्हें कुछ ऐसे भी प्रदेशों में जाना होगा, जहां पर सोना तुम्हारे काम आएगा। और यह है तुम्हारी आत्मरक्षा का साधन पिस्तौल। बस, और मुझे इस विषय में कुछ नहीं कहना। हमारे अनुमान से तुम रात के ठीक ग्यारह बजे भागवत से मिलोगी।''

इन शब्दों के साथ जैसे उसके सिर पर से एक भारी पत्थर हट गया। वह अभी कुछ स्वस्थता का अनुभव भी न कर पाया कि उसकी दृष्टि अंजना पर पड़ी जो अपने आगामी कार्य-क्रम की छान-बीन कर रही थी। उसने प्रश्न किया।

''क्यों क्या कुछ कहना चाहती हो अंजना ?''

अंजना ने उत्तर दिया—''हां, यदि मैं आपके निश्चित कार्य-क्रम के अनुसार ग्यारह बजे भागवत को न मिल कर सीधी उत्तरीय सीमा पर अपने सहयोगियों के पास जा पहुँची तो उत्तम सिद्ध होगा। क्योंकि जिस मार्ग से होकर मुझे भागवत तक पहुँचना है, वह मार्ग शत्रु की पश्चिमी चौकियों के मार्ग से जा मिलता है। निःसंदेह यहां से असमय गुज़रते हुए कोई सन्देह में ही हमें पकड़ ले, और उत्तरीय सीमा पर पहुँचने का तात्पर्य यह होगा कि मैं कुमारगिरि के उत्तर पश्चिमीय अड्डों की जानकारी भी प्राप्त कर सकुंगी।''

शशांक ने कुछ देर विचार किया, फिर उसके मस्तिष्क में एक बात आई; उसने तुरन्त कहा—''तुम्हारा विचार मुझे जंचता है। अस्तु, जैसे तुम्हारी इच्छा। इस पर किसी को आपत्ति न होगी। मैं

भागवत को संदेश भिजवा दूँगा।" सब कुछ ठीक-ठाक करके दोनों एक दूसरे के समक्ष खड़े हो गये और एक दूसरे की ओर अर्थ-पूर्ण दृष्टि से देखते रहे। अंजना ने एक बार घड़ी की ओर देखा, फिर शशांक के चरणों तक झुक कर कहने लगी—"लो देवता! तुम्हारी दासी तुमसे विदा चाहती है।"

कवि के नेत्र भर आये। उसे तो जैसे अब तक यह ध्यान ही न रह गया था कि वियोग दोनों भुजायें फैलाए उससे आलिङ्गित होने के लिए आतुर हो रहा है। अब तक कर्त्तव्य और कार्य-क्रम के फेर में उसकी अनुभूतियां सो गई थीं; पर अब पुनः जाग उठीं। उसने कंठ साफ करने का प्रयास करते हुए अन्यमनस्क भाव में कहा—"विदा! हां, विदा तो करना ही होगा। कर्त्तव्य तो हृदयहीन पाषाणवत् कठोर है। पाषाण में भी अन्तर्वेदना की ज्वाला होती है; परन्तु यह तो ऐसी कठोर धातु का बना हुआ है कि इस पर कोई प्रभाव ही नहीं होता।"

वह उसके अति निकट आकर उसकी आंखों में देखता हुआ बोला—"चलो देवि! अब मैं और कुछ नहीं कहूँगा। यह अनुभूतियों के गला घोंटने का समय है। लो, मैं स्वस्थ हो गया। चलो, जननायक और मां हमारी प्रतीक्षा में होंगे। और मुझे भी प्रवेश को साथ लेकर तुम्हारे प्रस्थान करते ही यहां से चल देना होगा। क्योंकि यदि कुमारगिरि ने हमारा मार्ग न रोक लिया हो तो कर्णसिंह के दूतों का पीछा करना है।"

यह कहते कहते वह द्वार की ओर चल पड़ा। और अंजना भी मन्त्रवश सी हो उसके पीछे पीछे चल दी।

——

१८

मुक्ति प्रदेश के नियमानुसार अछूतों और निम्न वर्ग की जनता को समानाधिकार दे दिए गए थे इससे वह लोग स्वतन्त्र रूप में कोई भी कार्य कर सकते थे। उनमें कार्य की असुविधा समाप्त हो जाने से विद्याभ्यास की रुचि जागृत हो उठी। परिश्रमी तो थे ही, कुछ ही समय में उनके रहन-सहन और जीवन-चर्या का स्तर ब्राह्मण और क्षत्रियों से भी ऊँचा जान पड़ने लगा। कृषि उद्योग में तो उन्होंने चमत्कार-पूर्ण कार्य कर दिखाया। जब उन्हें महाराज अजयसिंह और अंजना की अकाल मृत्यु का समाचार मिला तो उन्होंने मिल कर अनेकों सभाएं जुटाईं। अपने उद्धारक जननायक दयालु चौधरी और अंजना के विचारों को लेकर उन्होंने कई एक नई-नई योजनाएं बना डाली थीं, जिसके अनुसार वैज्ञानिक शक्ति द्वारा ऐसे ऐसे आविष्कार कर डाले, जो धरती के चप्पे-चप्पे से अमूल्य रत्न ढूंढ निकालने में समर्थ हो गए। वहां की शिक्षण-प्रणाली में पाश्चात्य विचारों से नितान्त भिन्न एक ऐसी संस्कृति और सभ्यता की सुगन्ध आने लगी, कि वह पर्वतीय ग्राम अच्छे-अच्छे नगरों से कहीं अधिक समृद्धिशाली प्रतीत होने लग गए। इतना होने पर एक ही वर्ग ऐसा था जो जनसाधारण की इस उन्नति को फूटी आंखों देखना न चाहता था। वह मार्ग था आडम्बर-प्रिय व धर्मान्ध कूटनीतिज्ञ कुमारगिरि का कट्टर अनुयायी। उसने अंजना की मृत्यु का समाचार पाते ही मनोमन कुछ बल प्राप्त किया। उसकी दृष्टि में अंजना से अधिक प्रतिभाशाली शत्रु और कोई भी न रह गया था। उक्त वर्ग ने अपने नेता के संकेत पर अवसर प्राप्त करके गणतन्त्र और उसके विधान के विरुद्ध कार्य करना आरम्भ किया। कृष्णाष्टमी के उपलक्ष्य में वहां के मन्दिरों में सभी लोग श्रद्धापूर्वक भजन-पूजन में निरत थे। किसी ने एक व्यक्ति को मूर्ति से दूर धकेलते हुए कटुतम स्वर में भुनभुनाते हुए कहा—"ओऽफ़! कैसा समय आ

गया है। अरे, चमार होकर मूर्ति को नहलाते हैं। क्या तुम्हें ईश्वर के प्रकोप से भय नहीं लगता ? मान लिया कि तुम्हारी तानाशाही है, पर कुछ तो परलोक का विचार करो। कोई समय था, कि शूद्र की परछाईं पड़ने पर भी दैव-कोप से बचने के लिए भगवान की मूर्ति को समस्त तीर्थों में घुमा कर सात बार गंगाजल से अभिषिक्त किया जाता था।"

दूसरे व्यक्ति ने बीच में ही कहा—"वाह ब्राह्मण देवता ! यह भगवान की मूर्ति न हुई, छुई-मुई बूटी हुई, जो हाथ लगने से ही सहम कर सिकुड़ जाती है। भई, भगवान तो पतितपावन हैं। यदि उन्हें छूने पर वह भ्रष्ट हो जाएं तो उन्हें भगवान कहना मूर्खता है। जिनका अपना धागा इतना कच्चा है वह किस प्रकार इतनी बड़ी सृष्टि को अपने साथ बाँधे फिरने में समर्थ हो सकते हैं ? तुम अपने भगवान को इतना असमर्थ और छुआ-मुआ मान सकते हो, परन्तु मेरा भगवान तो सर्वशक्तिमान् है, समदृष्टि है और न्यायकारक है। पतित से पतित पर भी उसकी छाया मात्र पड़ने से पतित पवित्र हो जाता है।"

पहले व्यक्ति ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए कहा—"अरे, पर इसका कोई प्रमाण भी है या जो अंजना देवी कह गईं, वह पत्थर की लकीर है ?"

दूसरे व्यक्ति ने चुटकी लेते हुए कहा— "तो क्या इतना होने पर भी प्रमाण चाहते हो ! देखते नहीं, जब तक हम देव दर्शनों से वंचित थे तब तक कितने लांछित, अविचारी और अकर्मण्य थे। मानो, हम मानव न होकर मूर्ख पशु थे। पर अब देखो, जब से हमें देव-दर्शनों का अवसर मिला और अपने भगवान के चरण प्रक्षालन की सुविधा मिली तब से हम कितने गौरवान्वित हुए हैं। हमारी बुद्धि के द्वार खुल गये हों और हम कर्मठता तथा आस्था के प्रतिरूप बन गये हों, ऐसा दिखता है। भाई ! कुछ भी कहो, हम तो इन देव-चरणों को कभी नहीं छोड़ने के।"

पहले व्यक्ति ने कानों पर हाथ रखते हुए कहा—"शान्तं पापं ! अरे, तुम्हारी आस्था के क्या कहने। ज्यों ज्यों तुम्हारी बुद्धि का विकास हो रहा है उसके साथ ही साथ अविचार और क्षुद्रता भी विकसित हो रही है। अन्त में शूद्र ही तो ठहरे। कैसी-कैसी शीलवन्ती नारियों के मुख पर से परदे उठवा दिये। वह पुरुषों के साथ उन्हीं की तरह लटक-मटक कर विद्यालय में पढ़ती हैं, मंच पर खड़ी होकर भाषण देती हैं। अरे, और तो और तुम लोगों ने उनके हृदयों में से पति सेवा तक की भावना भी निकाल दी।"

दूसरे ने कहा—"पति-सेवा और शिक्षा-दीक्षा का सामंजस्य तो तुमने खूब दिखलाया। हमारी शिक्षा-दीक्षा क्या स्त्री क्या पुरुष किसी को भी तो कर्त्तव्य-च्युत होने का पाठ नहीं पढ़ाती। हमारे जननायक और अंजना देवी का यह कहना है कि पुरुषों और नारियों को अपने अधिकारों के लिए न झगड़ कर एक दूसरे की सेवा के लिए तत्पर रहना चाहिए। अरे भाई, उस दिवंगता ने तो हमें यही पाठ पढ़ाया है कि अधिकार और भावना से कहीं बढ़कर कर्त्तव्य है। हमें कर्त्तव्य के लिए उठना चाहिये।"

पहले व्यक्ति ने व्यंग्य पूर्वक कहा—"तभी तो कर्णसिंह जी को मुक्ति-प्रदेश की सेवा से लगभग वंचित कर दिया गया। वह भी तो वार्षिक उपज का संरक्षण और वितरण कार्य कर्त्तव्य समझकर ही स्वीकार करना चाहते थे न? ओ, भले आदमी ! क्यों कर्त्तव्य कर्त्तव्य की डींग मारते हो। अन्धेर नगरी चौपट राज, अब रह ही क्या गया है। न किसी का धर्म कर्म रहा। न किसी की मान मर्यादा ही रही। अब तो प्रलय होकर रहेगी।"

दूसरे व्यक्ति ने कहा—"सो तो तुम्हारे लिये अब भी होगई; हां यदि इस प्रलय से अवकाश प्राप्त करना चाहते हो तो मुक्ति-प्रदेश के विधान को सफल बनाने में जुट जाओ। सच पूछो, तो ब्राह्मण देवता !

जो सुबह-सुबह घर-घर में थाली पटकाते हो और अनेक प्रकार का मिला जुला भोजन पाते हो, वह तो भूल जाओगे। गाढ़े परिश्रम की उपज जितनी मधुर और स्वादिष्ट लगती है, उतना भिक्षा का अनेक रस भोजन कहां?"

ब्राह्मण देवता अन्तिम शब्द सुनकर किंचित् हतप्रभ से हो उठे। परन्तु साहस न त्याग कर कहने लगे—"अरे, हम तो ठहरे भिखारी, और भिखारी यदि कोई भी पाप करे तो उसे निर्धन व सामर्थ्यहीन समझकर क्षमा कर दिया जाता है। परन्तु तुम लोग तो अब समृद्धिशाली होगये हो। अपनी बहु-बेटियों की मान-मर्यादा तो न गंवाओ। वह तो कोरी ईसाई जान पड़ती है। हमारे तो शास्त्रों में लिखा है—

भजन, भोजन, नारी।
तीनों परदे के अधिकारी॥

हमारे तो वेश्याओं के लिए भी लिखा है कि वे जब घर से बाहर निकलें तो मोटी चादर ओढ़ कर।"

दूसरे व्यक्ति ने कहा—"परन्तु महाराज! मुक्ति प्रदेश के विधान में से तो वेश्या शब्द ही उड़ा दिया गया है। हम अपनी बहु बेटियों को ऐसी घृणित संज्ञा नहीं दे सकते। हमें तो उन रूपा-जीवन स्त्रियों का भी उद्धार करना है। उन्हें भी नागरिक अधिकार देने हैं। पंडित जी! आओ मेरे साथ, मिल कर कार्य करो। अकर्मण्य और भीरु न बन कर कर्त्तव्य-शील और वीर बनो। उन दुःखी और उपेक्षित देवियों को भी अपनी बहु-बेटियां समझकर अपने घरों में बसाओ। गिरते हुए को और ठोकर मारने की अपेक्षा उसे उबार कर सीने से लगा लेना ही सच्चा धर्म है।"

इन दोनों विवाद-कर्त्ताओं के आस पास मन्दिर के विशाल प्राङ्गण में अनेकों व्यक्ति एकत्रित हो गये। बात-बात पर दोनों को

उनके सहयोगियों से प्रोत्साहन मिल रहा था। अछूत की तर्क-शक्ति देखकर निकट खड़े एक वैश्य ने कहा—

"अरे, जब दुष्ट बुद्धिवान भी हो जाता है तो उसकी दुष्टता में परिपक्वता आ जाती है या यूं कहिए कि वह दुष्ट के साथ धृष्ट और निर्लज्ज भी हो जाता है। कुछ भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा, कि दयालु-चौधरी और उसकी लड़की ने न जाने कौन सी बूटी इन्हें घोल कर पिला दी है, कि ऐसा जान पड़ता है जैसे ये लोग सभी विद्याओं में पारंगत हो गए हों।"

एक अन्य व्यक्ति ने कहा—"अजी महाशय! आप लोग वेदों, पुराणों और अन्य धर्म ग्रन्थों को पत्थर की मूर्ति की ही तरह झुक झुक कर माथा टेकना जानते हैं परन्तु जननायक और अंजना जी ने उन ग्रन्थों को पढ़ने की प्रेरणा दी है। क्या उन्हीं के प्रयत्न से ही धरती को स्थान स्थान से खोद कर अपनी संस्कृति के प्रतीक उन अनमोल ग्रन्थों को हस्तगत नहीं किया गया जो न जाने कौन सी शताब्दी से दीमक का भोजन बने हुए थे? क्या उन महात्माओं ने उन भण्डारों का उद्धार करके भारतीयता को पुनर्जीवित नहीं कर दिया? पश्चिमी सभ्यता की ओर त्वरित गति से पलायन करते हुए उन युवक हृदयों में सम्मान व स्नेह जागृत नहीं कर दिया, जो धर्म ग्रन्थों और ऋषियों के वाक्यों को ढोंग और मूर्खता की संज्ञा देते थे? इस पर भी तुम उन्हें विधर्मी और पतित कहने से नहीं चूकते?"

एक ब्राह्मण ने अपनी पगड़ी और लकुटिया सम्भालते हुये पूछा—"क्यों जी, क्या धर्म ग्रन्थों में यही लिखा है कि स्त्रियों को इतना स्वतन्त्र कर दो कि वह अपने अनुकूल न होने पर अपने पति तक को त्याग दें?"

इस प्रश्न का उत्तर देना वास्तव में कोई सरल कार्य न था। कुछ क्षण के लिए प्रतिवादी मौन हो गए। पंडित जी ने लकुटिया से

धरती ठोंकते हुए कड़क कर कहा--"क्यों भैया ! क्या है कोई उत्तर इसका तुम्हारे पास ?"

एक अछूत युवक ने ओजपूर्ण स्वर में उत्तर दिया—"अनुकूल अथवा प्रतिकूल की व्यवस्था तो स्त्री और पुरुष के लिए समान है। यदि अपने प्रतिकूल होने पर महर्षि बाल्मीकि का राम अग्नि द्वारा पवित्र स्वीकृत गर्भवती पतित-पावना सीता को अपनी प्रतिष्ठा के लिए जङ्गलों में धूलि फांकने के लिए छोड़ सकता है तो क्या स्वार्थी और अविचारी पुरुष को अपने अनुकूल न होने पर नारी उसका परित्याग नहीं कर सकती ?"

युवक का उत्तर सुनकर त्रिपुण्डधारी और जातीय अभिमानी उच्च वर्गीय व्यक्तियों के शीश झुक गये। युवक का ओजस्वी और दृढ़ स्वर फिर गूंज उठा--"उत्तर दो, मौन क्यों हो गए पंडितो ? मुक्ति-प्रदेश का विधान हमारी संस्कृति से पृथक नहीं है। मैं इसे विश्वास के साथ कह सकता हूं। तुम सीता, शकुन्तला और दमयन्ती पर किये गये अत्याचारों को शब्द-जाल में लपेट कर अथवा पर-स्त्री की विवशता जतला कर पुरुष के अन्याय को छिपा सकते हो। नारी की सहिष्णुता का बखान करके उस दुखिया के आंसू पोंछ सकते हो; पर अन्याय, अन्याय ही कहलाएगा। और यदि तुम उस अन्याय को अन्याय स्वीकार कर लेने को तैयार नहीं हो तो नारी को भी ऐसी परिस्थितियों में स्वच्छन्दता प्रदान करनी होगी। हमारी मातृ-शक्ति बहुत पिस चुकी है। अब इसे और नहीं पिसना होगा। इसने सेवा का व्रत लिया है और यह किसी भी परिस्थिति में अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होगी। परन्तु दुष्ट और व्यभिचारी पति के लात-घूंसों से अवश्य इसकी रक्षा करनी होगी।"

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया—"परन्तु हमारी स्त्रियां तो छोटी-छोटी बातों पर अधिकार का ढोल पीटने लग गई हैं। इसका क्या

करना होगा ?"

युवक इसके लिए अभी उत्तर ढूंढ ही रहा था कि एक अपरिचित वृद्ध ने अपनी श्वेत दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—"ऐसी नारियों को कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाना होगा। क्योंकि हमारे विधान में अधिकार का ढोल पीटना अविचार कहलाता है। और प्रश्न विधान पर है। जिस दिन हमारा विधान जनता द्वारा हृदय से अङ्गीकार हो जाएगा, उस दिन ऐसी आपत्ति न दीख पड़ेगी।"

सभी की दृष्टि नवागन्तुक पर पड़ गई। वह वृद्ध होते हुए भी अत्यन्त तेजस्वी और दृढ़ दिखाई देता था। उसने प्रतिवादियों को उत्तर देने वाले युवक के कन्धे थपथपाते हुए कहा—

"मैं तुम्हारे विचारों से सहमत हूं युवक! तुमने निःसंदेह अकाट्य युक्ति दी है। यदि स्त्री को भी किसी सीमा तक हम स्वाधीनता प्रदान कर दें तो निश्चय ही पुरुष उसे सबला जानकर उसका समुचित आदर करेगा। और इस आदर सत्कार से दोनों में अटूट प्रेम बना रहेगा। इसी से ही हमारी भावी सन्तानें स्नेहशील और सभ्य बनेंगी। नारी और पुरुष दोनों ही भटकने से बच जाएंगे। और फिर देखना, हमारा गृहस्थ जीवन कितना सुखी हो जायगा। हमारा मानव समाज कितनी उन्नति कर लेगा।"

प्रतिवादी इस उत्तर से निरुत्तर तो हो गए, पर उनके लिए यह बात असह्य अवश्य थी। उन्होंने चीत्कार करते हुए कहा—"महाशय! आप विद्वान् हैं, वृद्ध हैं; हम आपकी युक्तियों को काट नहीं सकते। किन्तु हम अनुभव करते हैं कि जब से अंजना देवी ने यहां आकर महिला उद्धार-समिति की स्थापना करके उसके द्वारा अपने विषय का प्रचार किया, तब से हमारी स्त्रियां उद्दण्ड हो गई हैं। यहां की भोली-भाली ग्राम बालाएं भी बात-बात पर तर्क करने लग गई हैं। न सन्ध्या, न वन्दन, न पूजा-पाठ, न शिष्टाचार, न साधु-प्रेम—कुछ भी तो नहीं

रह गया उनमें, फिर भी आप कहते हैं कि हम भारतीयता के चरम-शिखर की ओर बढ़ रहे हैं।"

वृद्ध ने शान्त स्वर में कहा—"अंजना देवी की बातों का उद्धाहरण देते हो, परन्तु यह क्यों भूलते हो कि उन्होंने यह भी कहा है ईंटों और पत्थरों के देवताओं की उपासना से कल्याण नहीं हो जाता। आस्था और कर्त्तव्य-निष्ठा ही कल्याण का साधन है।"

किसी ने प्रश्न किया—"आप ईंटों और पत्थरों के देवताओं की उपासना निषिद्ध मानते हैं तो फिर आस्था किस के प्रति ?"

वृद्ध ने उत्तर दिया—"अपने प्रति। अपने ऊपर विश्वास करना सीखो। जब तुम्हें आत्मनिष्ठा प्राप्त होगी, तब कर्त्तव्यनिष्ठा स्वमेव जागृत हो उठेगी। और जहां कर्त्तव्यनिष्ठा जाग उठी, वहां अधिकार लालसा समाप्त हो जाएगी और संसार के सभी बखेड़े समाप्त हो जाएंगे।"

वृद्ध का उत्तर सुनते ही सब लोग शान्त होकर धीरे-धीरे खिसकने आरम्भ हो गए। कुछ ही क्षण में मन्दिर का आंगन जन-शून्य सा प्रतीत होने लगा। केवल कुछ भक्त पुरुष और स्त्रियें आरती की सामग्री में तन्मय थीं। पुजारी जी महाराज इधर उधर भाग-दौड़ कर रहे थे। युवक ने ध्यान पूर्वक वृद्ध की आंखों में देखा और आंखों में ही मुस्करा दिया। फिर कहने लगा—"आपने तो ऐसा उत्तर दिया कि बेचारे निरुत्तर हो गये।"

वृद्ध ने कहा—'क्या तुम उस अछूत की प्रतिभा न मानोगे, जिसने हम सब से पहले उस घमंडी ब्राह्मण से लोहा लिया था ?"

युवक ने पूछा—"तो क्या आप इस विवाद के आरम्भ से ही यहां हैं ?"

वृद्ध ने उत्तर दिया—"हां।"

फिर इधर-उधर देख कर युवक को एक ओर ले जाकर कहा—

"कुछ देखा हरिहर ?"

युवक ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—"हां महाराज ! पहला व्यक्ति जिसने गंगाराव को मूर्ति प्रक्षालन के लिए मना किया था वह कर्णसिंह का दूत हरिभाऊ था। और दूसरा व्यक्ति जो बढ़ बढ़ कर हरिभाऊ का समर्थन कर रहा था वह था कुमारगिरि का शिष्य सोमदेव।"

वृद्ध ने दाढ़ी और मूंछ ठीक करते हुए कहा—"कुछ भी हो हरिहर ! विपक्षियों ने अपना काय आरम्भ कर दिया है। हमें सावधान होकर कार्य करना होगा।"

युवक ने उत्तर दिया—"निश्चिन्त रहें महाराज ! हम सचेत हैं। और यह भी आप ने देख लिया होगा, कि अंजना जी का प्रभाव अभी तक जनता पर इतना है कि वह हमारी बातों को सुनना पसंद करती है। कल मैंने एक स्थान पर कई एक व्यक्तियों को कहते सुना कि अंजना जी के देहान्त ने तो हमारी कमर तोड़ दी है। हमें उन्होंने नया जीवन दिया है। हमें उनके आदेशों का पालन करना चाहिए।"

वृद्ध ने कहा—'यह तो ठीक है हरिहर, परन्तु विरोधियों ने ऐसा तत्व भी उत्पन्न कर दिया है जो हमारा विरोध करने के अनेकों साधन एकत्रित कर रहा है। मैंने कल यहां सुना है कि जनता को इस बात के लिये कटिबद्ध किया जा रहा है कि वह स्वयं अपने मतानुसार व्यक्तियों को चुन कर प्रदेश के कार्य सौंपे। इस के लिए इन्होंने विरोधी पक्ष की ओर से कर्णसिंह को चुनाव लड़ने के लिये तैयार किया है। परन्तु इन लोगों को विश्वास है कि जब तक जननायक जीवित है इनकी योजना सफल नहीं हो सकेगी। इस लिये इन्होंने अपना एक सज्जित दल जननायक के प्राण लेने के लिये यहां से नगर में भेज दिया है। इसके लिये हरिहर तुम स्वयं जाओ, और इसकी सूचना मां को पहुँचा दो। जाओ, इस कार्य में विलम्ब न करो।

क्योंकि वह लोग निश्चय ही आज सायंकाल तक वहां पहुँच जाएंगे। वैसे मैंने एक व्यक्ति द्वारा भागवत को भी इस बात से सूचित कर दिया है।"

युवक ने पूछा—"तो आप फिर कहां मिलेंगे ?"

वृद्ध ने कहा—"झरनों के बांध पर, झाड़ियों के पीछे वाली पर्ण-कुटी में।"

युवक अभिवादन करके शीघ्र ही वहां से प्रस्थान कर गया। तदनन्तर वृद्ध ग्राम के गली-कूचों में घूमता हुआ चौपाल पर पहुँचा तो वहां पर उसने एक महिला को उच्च स्वर में भाषण देते हुए पाया। महिला पुकार-पुकार कर कह रही थी कि—"हमें यह गणतन्त्र नहीं चाहिए। इस व्यवस्था ने हमें अस्त-व्यस्त कर दिया है। यदि गणतन्त्र रखना ही है तो जनता को अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिलना चाहिए। मुट्ठी भर व्यक्तियों की स्वीकृति से बने हुए जननायक को हम स्वीकार नहीं करेंगे। या तो राजवंश के उत्तराधिकारी को पुनः राजसिंहासन पर विराजित किया जाए, नहीं तो नए सिरे से चुनाव होना चाहिए। जनता जिसे भी अधिक मत प्रदान करे, उसे ही प्रदेश का अधिकारी माना जा सकेगा। भला, आप लोग सोचिए कि कहां महाराज अजयसिंह का शासन काल जिसमें न तो कोई दुविधा थी न द्वन्द। और यह अंधेर नगरी जिसमें न कोई गरीब, न अमीर, न कोई आविष्कार।"

वृद्ध ने उसका वाक्योच्छेद करते हुए कहा—"देवि! क्या अनावश्यक आविष्कारों को रोकने से भी कोई असुविधा हो सकती है? प्रायः आवश्यकता आविष्कार की जननी कही जाती है। पर, यहां कोई ऐसी आवश्यकता दृष्टिगोचर नहीं होती, जिसके लिए मृथा ही वैज्ञानिक तन्तुओं को खरोंच खरोंच कर आविष्कार किये जाओ। मेरी धारणा में आविष्कार को आवश्यकता का पिता न बना कर,

आवश्यकता को आविष्कार की जननी ही रहने दें तो उत्तम होगा। हमें ट्रेक्टर नहीं चाहियें, मशीनें नहीं चाहियें। हमारे पास जनशक्ति पर्याप्त है। उसे सबल और व्यवस्थित बनाकर हम उसकी पूर्ति कर लेंगे, और जब हमें मशीनों की आवश्यकता नहीं तो उनके निर्माण से मुक्ति पाकर क्यों नहीं देश के मानसिक और शारीरिक निर्माण की ओर ध्यान दें। आप जननी शक्ति का प्रतीक हैं। मैं आप से अनुरोध करूंगा कि आप अन्यान्य बातों में समय और शक्ति का अपव्यय न करके इसी समय इस शक्ति को भावी सन्तानों के निर्माण में लगाएं। फिर देखिये, आप का देश कहां पहुँच जाएगा।"

महिला ने तीव्र स्वर में कहा—"रसातल में; अथवा पाषाण युग की ओर भाग चलेगा। मेरी बुद्धि में यह बात नहीं अटक पाती कि एक ओर तो अंजना जी ने इस बात का प्रचार किया कि आज प्रगति का युग है और प्रगतिशील होना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। इसी विषय को लेकर उन्होंने ग्राम-सुधार किया, नए-नए मार्ग बनाए, शिक्षण संस्थायें व अनुसंधान-शालायें खोलीं वेदों और उपनिषदों में से सुन्दर और उपयोगी बातें ढूंढ निकालीं। अब यदि उन्हीं अनुसन्धानों का हम प्रयोग करते हैं तो आप हमारे मार्ग में बाधायें उपस्थित करते हैं। यदि हम ट्रेक्टरों और मशीनों द्वारा अपनी त्रुटियों को पूर्ण कर सकें तो क्या हानि है?"

वृद्ध ने कहा--"परन्तु इस समय हमारे खाद्य की समस्या तो अत्युत्तम है, वस्त्रादि अन्य जीवनोपयोगी पदार्थ भी नियमित रूप से तैयार होते रहते हैं। इस के अतिरिक्त सभी एक सा कार्य करते हैं और समान रूप में खाते-पीते एवं सुख में रहते हैं। सभी श्रमप्रिय हैं। पढ़ने-लिखने में रुचि रखने लगे हैं। फिर हम व्यर्थ में क्यों दौड़-धूप करें। शेष रही दुबारा चुनाव की बात; यह तो एक दम असंगत बात जान पड़ती है। मैं यहां खड़े सज्जनों से पूछता हूं कि आपको वर्त्तमान

जननायक और उनके सहयोगियों पर विश्वास क्यों नहीं होता। और फिर जिस दिन इन लोगों को चुना गया, उस दिन भी तो आप सब लोग विद्यमान होंगे। तब आपने उसी समय विरोध क्यों न किया। और यदि उस समय विरोध करना आवश्यक न समझा तो अब कौन सी समस्या आ खड़ी हुई, जो आप नए सिरे से चुनाव कराने के लिये ज़ोर दे रहे हैं?"

महिला ने उत्तर दिया—"वह चुनाव इतना शीघ्र कर दिया कि किसी को सोचने विचारने का अवसर ही नहीं मिला, परन्तु अब तो हमारे पास पर्याप्त समय है। एक नियत अवधि के पश्चात् यदि हम निर्णय करेंगे तो अवश्य ऐसे व्यक्तियों को अधिकार देने में समर्थ हो सकेंगे जिनके द्वारा हमारी समस्त कठिनाइयां दूर हो जायेंगी।"

एक अन्य व्यक्ति ने प्रश्न किया—"देवी जी, क्या आप अपनी कठिनाइयों का ब्योरा बता सकती हैं। मैं विश्वास दिलाता हूं कि यदि आपकी बात युक्ति-संगत हुई तो उसका समाधान हो जाएगा।"

महिला ने कहा—"आपने युक्ति-संगत की तो ठीक बात कही। जो बात अरुचिकर होगी, वह आप तुरन्त असंगत कह देंगे। फिर इस बात का प्रयोजन ही क्या रह जाएगा? इस लिए इस समय केवल दो ही बातों की मांग प्रस्तुत करते हैं कि या तो राजवंश के उत्तराधिकारी कर्णसिंह जी को एकछत्राधिकारी मान लिया जाए अन्यथा........।"

वृद्ध ने इस बार किंचित् और गम्भीर होकर कहा—"तो क्या आप उस आतताई को पुनः एकछत्राधिकारी बना देने की सम्मति देती हैं जिसने सिंहासन के लोभ में अकस्मात् ही अपने बड़े भाई महाराज अजयसिंह पर रात्रि के समय घातक आक्रमण किया था। उसने राज्य की व्यवस्था को इतना अस्त-व्यस्त कर दिया कि जनता त्राहि-त्राहि कर उठी थी। और स्वयं महाराज अजयसिंह तथा उनकी सुपुत्री अंजना जी को निरन्तर कई वर्ष तक द्वार-द्वार की धूलि फांकनी पड़ी

थी। उस व्यभिचारी और आतताई के आंतक से बहु-बेटियों को स्वतन्त्रता-पूर्वक चलना-फिरना भी असम्भव हो गया था। न जाने कितने व्यक्तियों को उसने केवल इसीलिए गोली से उड़वा दिया था कि उन पर महाराज अजयसिंह के पक्षपाती होने का संदेह था। अनेकों कुमारियों के सतीत्व उनके माता-पिता के सम्मुख केवल इसलिए भंग किए गए थे कि उन्होंने उस दुष्ट के राज्याभिषेक पर उस पर छतों पर से फूल नहीं बरसाए थे। क्या यहां की धरती कर्णसिंह के इन अत्याचारों को कभी भुला सकती है, जब कि जननायक ने सर्वसाधारण के बीच प्रथम गण-दिवस के अवसर पर उस नराधम को मृत्यु-दण्ड न देकर महाराज अजयसिंह की अनुमति से सम्मान-पूर्वक मुक्त-दण्ड न देकर महाराज अजयसिंह की अनुमति से सम्मान-पूर्वक मुक्त कर दिया था?"

महिला को इस बात का एकाएक कोई उत्तर न सूझ पड़ा। उसके सम्मुख बैठे स्त्री-पुरुषों ने भी वृद्ध की बात का समर्थन किया। और मिश्रित स्वर में पुकार कर उच्च स्वर में कहा—"हमें नया चुनाव नहीं चाहिये। हम कर्णसिंह को राजा नहीं मानेंगे। जननायक ज़िन्दाबाद! मुक्ति-प्रदेश अमर रहे!"

पासा पलटते देखकर महिला तुरन्त वहां से चल दी। लोगों ने उसके मंच पर से उतरते ही हो-हो करना आरम्भ कर दिया। उसी कोलाहलमय वातावरण में वृद्ध एक ओर दृष्टि गाड़े कुछ देखने लगा। अनायास ही कोलाहल और प्रचण्ड हो उठा और उसी वातावरण में से छनकर बन्दूक से गोली छूटने की आवाज़ सुनाई दी। लोगों ने मुड़ कर देखा तो वृद्ध धरती पर औंधे मुंह पड़ा था। सभी उसी ओर भागे, पर उसने एक दम खड़े होकर स्वस्थ स्वर में कहा—

"मैं इन गोलियों से मरने वाला नहीं। मैं एक साधारण मनुष्य हूं परन्तु, जननायक से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् मैं अपने

आपको इतना प्रबल अनुभव करता हूं कि विरोधियों की संगीनें भी मेरी छाती से टकरा कर टूट जाएंगी। यदि विरोध-कर्त्ता सब प्रकार से असफल होकर हिंसा का घृणित मार्ग ग्रहण करके मुक्ति-प्रदेश को हड़प करना चाहते हैं तो इनकी मूर्खता है। क्योंकि इन्हें विदित होना चाहिये कि कुछ व्यक्तियों की हत्या ही से ये उन्हें हस्तगत नहीं कर सकेंगे। मुक्ति-प्रदेश का बच्चा बच्चा जननायक है और वह शत्रु को भली-भांति छकाना जानता है।"

निकट खड़े एक और व्यक्ति ने लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"क्या यह आक्रमण कर्णसिंह की ओर से युद्ध का आह्वान न समझना चाहिए? क्या इन्हीं हिंसक प्रवृत्तियों का दास स्वार्थी और आततायी कर्णसिंह निरीह जनता पर गोलियां बरसा कर उनका मत प्राप्त करने का स्वप्न देखता है?"

अभी वह वाक्य भी समाप्त न कर पाया था कि कुछ व्यक्ति एक युवक को मारते-पीटते घसीट कर वृद्ध के सम्मुख ले आए। वृद्ध ने आक्रमणकारी युवक को सिर की चोटी से लेकर पांव के नाखूनों तक ध्यान से देखा; फिर सत्ता पूर्ण स्वर में प्रश्न किया—"युवक! मुझे मारना चाहते हो? क्या मेरे मर जाने पर तुम्हें मुक्ति-प्रदेश का एक छत्र सिंहासन प्राप्त हो सकेगा? तो लो, उठाओ पिस्तौल; तुम्हारी बन्दूक की गोली सम्भवतः इस पाषाणवत् कठोर छाती को छेदने में असमर्थ रहेगी। परन्तु विश्वास करो, इस पिस्तौल का निशाना कभी नहीं चूकता।"

युवक ने बुरी तरह कांपते हुए वृद्ध के चरणों पर सिर रगड़कर कहा—"मुझे क्षमा कर दीजिए: मुझसे भूल हुई।"

वृद्ध ने हास्यपूर्ण पर गम्भीर स्वर में कहा—"मुक्ति-प्रदेश के समर्थक तो प्रारम्भ से ही शत्रुओं को क्षमा करते आए हैं, आज तुम्हें

क्षमा करके कौनसी नई बात होगी ? तुम मुक्त किये जाते हो, मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूंगा।"

युवक ने एक क्षण भी वहां रहना अनुचित समझा। वह झुक कर बार बार प्रणाम करता हुआ वहां से चल दिया। उसके जाते ही किसी ने वृद्ध के कान में आकर कहा—

"महाराज ! यह सोमदेव था। आपने छोड़ क्यों दिया ?"

वृद्ध ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—"जननायक का शिष्य जो हूं।" और वह हंस दिया। सभी वृद्ध की ओर श्रद्धा से देखने लगे। उसने पास खड़े व्यक्ति को चलने का संकेत करते हुए कहा—"जनता को ऐसे ऐसे व्यक्तियों से बच कर रहना चाहिए। ऐसे विद्रोह को पूर्ण शक्ति द्वारा दबा लेना चाहिए।"

एक अधेड़ ने वृद्ध को रोकते हुए विनीत भाव से पूछा—"क्यों महाशय ! आप यहां कहां रहते हैं ? इससे पूर्व तो हम ने आपको नहीं देखा।"

वृद्ध ने नम्र स्वर में कहा—"भाई, मैं इस समय दक्षिण भारत से आ रहा हूं। कई वर्ष हुए जब मेरी शिवालक के महासामन्त जो आज जननायक हैं, से भेंट हुई थी। मैं कुछ दिन तक उनके पास ठहरा भी था। उनके सहवास से जो शिक्षा मुझे प्राप्त हुई, वह मैं आज तक नहीं भूल पाया। तब मैंने महाराज अजयसिंह और उनकी सुपुत्री अंजना जी से भी भेंट की थी।"

अधेड़ ने पूछा—"हां, तो यहां कहां ठहरे हैं ? चलिए कुछ दिन हमारे झोंपड़े को ही पवित्र कीजिए।"

वृद्ध ने व्यस्त भाव से कहा—"धन्यवाद बन्धु ! मुझे इसी समय वापिस जाना है। फिर कभी दर्शन करूंगा। अच्छा बन्दे !"

वृद्ध त्वरित गति से चला गया; तो अधेड़ ने एक युवक को पास बुलाकर क्षीण स्वर में कहा—"हरिभाऊ ! अजयसिंह अभी जीवित है।

निश्चय ही अंजना भी। साधु बाबा को तुरन्त सूचना दे दो। मैं उसका पीछा करने चला हूं। सोमदेव को पुनः इस ओर आने की मनाही कर देना क्योंकि इस गांव के लोग उसके प्राणों के ग्राहक बन चुके हैं।"

हरिभाऊ ने अभिवादन करते हुए कहा—"पंडित जी! आपने कहां देखा अजयसिंह जी को?"

अधेड़ ने कहा—"जिसे सोमदेव ने गोली मारी थी। धूर्त बच गया।"

हरिभाऊ ने चकित होते हुए कहा—"पूरा बहुरूपिया है पंडित जी! हम तो नहीं पहचान पाए उसे।"

अधेड़ ने कहा—"बहुरूपिया ही नहीं, बहुत सतर्क और दूरदर्शी भी।"

हरिभाऊ ने कहा—"घुटा हुआ है।"

अधेड़ ने सत्तापूर्ण स्वर में कहा—"हाँ, तभी तो कहता हूं शीघ्र सूचना पहुँचाओ। अवश्य कोई न कोई गुल खिलने वाला है।"

दोनों अगले ही क्षण एक दूसरे से विदा हो कर विपरीत दिशाओं की ओर लम्बे लम्बे पग बढ़ाते हुए चल दिए। अधेड़ व्यक्ति अभी सौ पग ही कठिनाई से आगे बढ़ा होगा कि एक गली की मोड़ पर उसे एक मकान में से कुछ नर-नारियों का मिश्रित स्वर सुनाई पड़ा। एक स्त्री कह रही थी—"इस भांति भला जनता से सम्मान प्राप्त किया जा सकता है? मैं अभी तक यह नहीं समझ सकी कि गणतन्त्र के विरोधी निरीह जनता को पीसने का उपक्रम क्यों करते हैं? भला उस वृद्ध ने कौन सा अपराध किया था जो उसे गोली मार देने की सूझी। कुछ भी हो हमें इन आतंकवादियों से देश को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करना चाहिए। गत-सप्ताह कई एक रेलगाड़ियाँ उलट दी गईं। राह जाते पथिकों को निर्दयता पूर्वक लूट लिया गया। और भी ऐसे उपद्रव

दिनोंदिन बढ़ते ही जा रहे हैं। मेरे विचार में जननायक के समक्ष यह प्रस्ताव प्रस्तुत करना चाहिएं कि सत्तापूर्वक देश के अत्याचारी शत्रुओं का दमन कर देना चाहिये। ऐसे दुष्टों को क्षमा न करके कड़े से कड़ा दण्ड दें।"

अधेड़ व्यक्ति ने एक पेड़ पर चढ़कर मकान के आंगन में एकत्रित जनसमूह को देखा। अब की एक युवक कह रहा था—"भई, हमें मुक्ति-प्रदेश के विधान में कोई धारा नहीं अखरी। सारे का सारा विधान कल्याणकारी है, किन्तु विधान में दण्ड प्रथा न रखने से बहुत अराजकता फैल रही है। इसे दूर करने के लिए विधान में दण्ड को विशेष स्थान देना चाहिए।"

वृक्षारूढ़ व्यक्ति ने आँखें फाड़ फाड़ कर सभी को देखा, परन्तु उसे अजयसिंह या उसका कोई सहयोगी वहां न दिखाई दिया। वह चुपचाप वहाँ से नीचे उतर आया और मन ही मन विचार करने लगा कि किस प्रकार हम इस गणतन्त्रोन्मूलन कार्य में सफल हो सकेंगे ? विरोधी पक्ष पूर्ण रूप से सजग है। वह हम लोगों को समय समय पर अभयदान और क्षमा दान देकर जनता के हृदय में अपना सम्मान दिनोंदिन बढ़ा रहा है। कोई भी तो हमारी बात सुनने को तैयार नहीं होता। कुछ भी हो मैं तो यह समझा हूं कि कुमारगिरि की नीति जितनी हम लोगों के अग्रसर होने में सहायक होती है, कर्णसिंह की नीति उतनी ही हमें पीछे खींचती है। परन्तु मैंने यह क्या किया ? सोमदेव से अजयसिंह पर गोली चलवा कर तो मैंने बहुत बुरा काम किया। इससे शत्रु पक्ष और भी सचेत हो जाएगा। कुछ समझ में नहीं आता, कि क्या किया जाए। यही सोचता हुआ वह वहां से दो पग आगे बढ़ा, तो प्रवेश और उसके सहयोगियों को उसने अपनी ही ओर आते हुए पाया। प्रवेश नें निकट आ कर बड़े ही कोमल स्वर में कहा—

"कहो पंडित गणेश शंकर जी ! आज किधर चढ़ाई कर दी;

कुशल तो है ?"

अधेड़ ने एकाएक मुद्रा परिवर्तित करते हुए अंगुलियों पर नवग्रह गिनते हुए कहा—"भैया ! मुहूर्त ठीक नहीं है। चला था साथ वाले ग्राम में भागवत् की कथा करने, पर देखता हूं कि इस समय इस ओर जाने पर दिशा-शूल रोकती है। राहु और मंगल भी विपरीत बैठते हैं। अब तुम ही बताओ, यह बूढ़ा ब्राह्मण किधर जाए और किधर न जाए ?"

प्रवेश ने कौतूहलमय एवं किंचित व्यंग्य-पूर्ण स्वर में कहा—"ब्राह्मण देवता ! मेरा कहा मानो तो छोड़ो इन कथाओं को। इस समय तो सचमुच ही घर के अतिरिक्त सभी दिशाएं ग्रह-दोष के कारण वर्जित दिखेंगी। सीधे घर जा कर पंडितानी जी से हलवा बनवाकर खाओ।"

पंडित जी ने घूरते हुए कहा—"सो तो होगा ही भैया ! अब तुम्हारे राज्य में ब्राह्मणों के लिए खटिया पर लेटने या पंडितानी जी से हलवा बनवाकर खाने के अतिरिक्त और काम ही क्या रह गया है ? भला हो भैया, तुम लोगों का। नहीं तो प्रतिदिन दो चार गांव घूमकर ही परिवार का पेट भर जाता था, पर अब तो बिना मांगे ही चौधरी जी पहुँचा देते हैं। सच पूछो भैया ! अब निठल्ले भी तो बैठा नहीं जाता।"

प्रवेश ने कहा—"घबराइए नहीं पंडित जी महाराज ! तुम्हारे मन की बात भी हो जाने को है। जननायक ने आदेश दिया है कि ब्राह्मणों और वैश्यों को भी इतनी भूमि दी जाए कि वह अपने हाथ से हल चलाकर अपने हिस्से का अनाज उत्पन्न कर लें। अब बताओ, हो गई न तुम्हारी चिन्ता दूर ?"

अधेड़ व्यक्ति ने उक्त आज्ञा सुनते ही सकपका कर कहा—"यह तो सब ठीक है भैया ! पर हम ब्राह्मणों को पठन-पाठन का समय

कैसे मिलेगा ? सुबह से शाम तक खलिहानों में काम करेंगे, पशुओं को चारा पानी देंगे। केवल सोने भर को समय बचेगा हमारे पास। नहीं भैया ! ऐसा मत मारो ब्राह्मणों को। हम लोग तो विद्याभ्यास करवाते हैं।"

प्रवेश ने कटाक्ष करते हुए कहा—"विद्याभ्यास के लिए इतने बड़े बड़े विद्यालय जो खुल गए हैं फिर आप जैसे नाम के वेद-पाठियों का महत्व ही क्या रह गया ? अजी पंडित जी, तुम लोगों ने अपने हाथों अपना भविष्य बिगाड़ लिया। मनु महाराज ने तुम लोगों की सुविधा के लिए ही तो यह नियम बनाया था कि ब्राह्मण का कर्त्तव्य है परिश्रम से विद्याभ्यास करना और कराना। पर तुम लोगों ने उनके आदेश का पालन ही नहीं किया। अब भला आप ही बतलाइए कि दुधारी गाए की तो कोई लात भी सह ले, बाँझ को तो धक्के ही पड़ेंगे ! देखो, पहले जो था सो था, परन्तु अब तो मुक्ति-प्रदेश का निर्माण हो चुका है। उसके विधान के अनुसार उत्पत्ति से नहीं कर्म से वर्ण की गणना होगी। अब तो वह चमार भी ब्राह्मणत्व का अधिकार भोगेगा जो परिश्रम से विद्याभ्यास करेगा और कराएगा।"

अधेड़ ने तर्क करते हुए कहा—"तो भैया ! यूं कहो कि तुम लोगों ने मनु जी के बनाए हुए चार वर्णों को अस्त-व्यस्त कर दिया है।"

प्रवेश ने दृढ़ता से उत्तर दिया—"कदापि नहीं। हम तो मनु महाराज द्वारा बनाए हुए चारों वर्णों को सक्रिय रूप में व्यवस्थित कर रहे हैं। हमारे यहां किसी भी खोखले सिद्धान्त के लिए स्थान नहीं रहा।"

फिर उसने पश्चात्ताप करते हुए ब्राह्मण की ओर ध्यान-पूर्वक देखा और अपने सहयोगियों समेत आगे बढ़ते हुए कहा—"तो आओ पंडित जी ! घर चलेंगे न ?"

अधेड़ ने विपरीत दिशा में बढ़ते हुए उत्तर दिया—"तुम चलो भैया! मुझे कहीं और जाना है।"

और उसने गति तीव्र कर दी। प्रवेश के एक साथी ने ठिठोली करते हुए कहा—"पंडित जी! दिशा विचार तो कर लीजिए ना?"

और साथ ही उसने ज़ोर से छींक दिया। छींक की आवाज़ सुनते ही पंडित जी के जैसे पैर लड़खड़ा से गए। धीमे स्वर में मुंह बनाते हुए बोले—"अब तो सभी ग्रह समान हैं। अब बचा ही क्या है? जब प्रातः से सन्ध्या तक मज़दूरों की तरह पिसना ही है फिर शेष ही क्या रह गया?"

अब की प्रवेश और उसके साथियों ने भी घोड़े को एड़ लगाई और गांव में जा घुसे। दो-तीन घण्टे निरन्तर गांव में घूम-फिर कर उन्होंने भूमि वितरण का नवीन आदेश सुनाया। फिर अपने सहयोगियों को कुछ समझा बुझा कर प्रवेश एक ओर को चल दिया। कुछ देर और घूम-फिर कर उसने जेब में से घडी निकाल कर देखी और घोड़े का मुंह फेर कर जङ्गल के बीचोंबीच घने पेड़ों की ओट में बनी हुई एक प्राचीन खण्डहरवत् गुफ़ा में जा घुसा। गुफ़ा के भीतर घुसते ही कुछ व्यक्ति उस की ओर बढ़े और उसका अभिनन्दन करते हुए भीतर ले गए। वहां पहुँच कर उसने अजयसिंह को अपने साथियों से बात-चीत करते हुए पाया। प्रवेश को देखते ही अजयसिंह भाग कर उसके निकट आ गए। उसने धीमे स्वर में कहा—"महाराज! आप को पंडित गणेश शंकर ज्योतिषी ने पहचान लिया है। और आप तो जानते ही हैं कि वह धूर्त कर्णसिंह का अन्तरंग मित्र है और कुमारगिरि का शिष्य। आप ही के वंश का अन्न खा-खा कर मोटा हो रहा है और आप ही के प्राणों का ग्राहक बना हुआ है। महाराज, मुझ से पूछो तो हरिभाऊ और इस पातकी ब्राह्मण को कुत्तों से नुचवा देना चाहिए।"

अजयसिंह ने हंसते हुए कहा—"ये लोग भी हमारे लिए ऐसा ही सोच रहे होंगे।"

प्रवेश ने कहा—"अस्तु, अब आप को किसी भी अवस्था में यहां इस प्रकार प्रकट रूप में नहीं चलना फिरना चाहिए।"

अजयसिंह ने प्रश्न किया—"तो फिर मुझे कहां जाना चाहिए? मुझे तो पहचानने वाले प्रत्येक स्थान पर मिल जायेंगे। इस प्रकार मुंह छिपा कर बैठा से तो काम नहीं चलने का? हां, मेरा यह प्रयत्न अवश्य रहेगा कि जहां तक सम्भव हो कोई मुझे न पहचान पाए। इसके लिए मैंने नई वेश-भूषा तैयार करवा ली है। देखोगे तो चौंक उठोगे। बस महर्षि वशिष्ठ ही दीखूंगा।"

और उन्होंने एक डिबिया खोलकर एक विचित्र प्रकार का लेप दिखाया कि जिसके लगते ही त्वचा का वर्ण कोयले से भी अधिक काला दिखने लगा। अन्य भी ऐसी ही अनकों वस्तुएँ उसे दिखाईं और फिर कहा—"देखो भैया! कल सूर्योदय के साथ ही एक काले-कलूटे हड्डियों के कङ्काल-मात्र तापस अपने शिष्यों के साथ कुमारगिरि के दर्शनों को जाएंगे। वहाँ से लौटकर फिर वह पर्वत की किसी निकटवर्ती उपत्यका में एक मास के लिए धूनी रमाएंगे। तुम भी जहां जहां जाओ, इस बात का प्रचार अवश्य कर देना।"

फिर उन्होंने प्रवेश को एक ओर एकान्त में ले जा कर कुछ पत्रादि दिये और उसके कान में ही कुछ क्षण फुसफुसा कर एकाएक बोले—"अच्छा, प्यारे! कुछ जलपान करो और शीघ्र ही यहां से निकल जाओ।"

उत्तरीय सीमा की भली प्रकार छान-बीन करने के पश्चात् अंजना अलमोड़ा से दस मील के व्यवधान पर एक नगर में जा घुसी। उस समय रात्रि का अन्धकार आच्छादित होना प्रारम्भ हो गया था। वह सिमटती हुई चुपचाप एक बड़े से भवन में जा घुसी। एकाएक किसी को इस प्रकार चुपचाप घर में घुसते हुए देखकर चौकीदार ने निकट आकर कड़े स्वर में पूछा--"कौन हो, आगे बढ़ने से पूर्व नाम बताओ?"

अंजना ने सरल व निःशंक स्वर में कहा—"मेरा नाम कमला है। बीवी जी ने मुझे बुलाया है। जाओ जाकर सूचित कर दो।"

चौकीदार ने दो क्षण के लिए उसे ध्यान-पूर्वक देखा। उसने भी उसकी ओर ध्यान-पूर्वक देखा और फिर ज़ोर देकर कहा—

"जाओ भाई; शीघ्र सूचना दे डालो। अन्धेरा बढ़ रहा है। मुझे वापिस भी जाना है।"

चौकीदार जैसे नींद से जाग उठा। हड़बड़ा कर डयोढ़ी की ओर भाग गया। घबराहट से उसकी विकृत हो रही मुख को देखकर अंजना को हंसी आ गई। पर, वह खिलखिला न सकी क्योंकि जब वह चौकीदार की कोठरी की ओर सहज भाव से ही बढ़ी तो झोंपड़ियों के पीछे से उसे कुछ व्यक्तियों का दबा हुआ स्वर सुनाई पड़ा। वह वहीं कान लगाकर खड़ी रही। उसने सुना जैसे कोई कह रहा था, "गंगाराव! कोई आया; शायद कोई स्त्री है। पर इसका स्वर असाधारण और कुछ परिचित सा लगता है।"

जैसे दूसरे से ठिठोली करते हुए कहा--"तो क्या अंजना है?"

दूसरे ने उत्तर दिया--"अरे भई, वह तो न जाने किस लोक में होगी।"

फिर किसी ने कहा—"इस भूल में न रहना भैया! वह बड़ी सख्त जान है। हम तुम जैसे कईयों को स्वर्ग में भेजकर जाएगी। अच्छा हुश···कोई पास आ रहा है। यहीं दुबक जाओ।"

इन अस्फुट वाक्यों को सुनकर अंजना को यह विश्वास होने में विलम्ब न हुआ कि ये लोग कौन हो सकते हैं। उसने चौकीदार के वापिस लौटते ही मनोमन विचार किया और डयौढ़ी की ओर चल दी। इतने में सामने से चौकीदार ने आकर कहा—"चली जाइए, वह आपको भीतर बुला रहीं हैं।"

और वह वहां सरकने लगा, परन्तु अंजना ने स्थिति पर अधिकार प्राप्त करते हुए सत्तापूर्ण स्वर में कड़क कर कहा—चौकीदार! तुम मेरे साथ ही भीतर चलो।"

चौकीदार यह आदेश सुनते ही मंत्रबद्ध सा होकर साथ हो लिया। वह बीच-बीच में पीछे मुंह मोड़कर देखने लगा। जब उसे और कोई ढङ्ग न सूझा तो उसने कहा—"मुझे भीतर जाने में तो भला क्योंकर इन्कारी हो सकती है, परन्तु रात बहुत हो चुकी है। यदि कोई दीवार फांद कर आंगन में आ कूदा तो········।"

अंजना ने पूर्ववत् सत्तापूर्ण स्वर में कहा—"इसकी चिन्ता तुम मत करो चौकीदार! जिन्होंने इतना बड़ा भवन बनाया है, वह उसकी रक्षा करना भी जानते होंगे। जो मैं कहती हूं, वह करो। इस समय मेरी आज्ञा को अपनी मालकिन की आज्ञा समझो।"

दो ही क्षण में दोनों ड्योढ़ी पार करके आगे बढ़े तो एक भद्र महिला ने आगे बढ़कर अंजना का स्वागत करते हुए कहा—"आओ कमला बहिन! मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही थी।"

अंजना ने उसके निकट जाकर उससे आलिङ्गन करते हुए ही उसके कान में कुछ कह दिया। महिला के नेत्र अकस्मात् ही आश्चर्य और आशंका से विस्फारित हो उठे। उसने उच्च स्वर में कुछ व्यक्तियों

को पुकारा और आज्ञा दी—"नीरू, हरिया, केसरी और काश्मीरी तुम चारों व्यक्ति ड्योढ़ी के बाहर पहरा दो और कोई भी व्यक्ति यदि बिना आवाज़ दिये भीतर आता दिखाई दे तो तुरन्त गोली मार दो अथवा उसे अच्छी तरह जकड़ कर कोठरी में बन्द कर दो। और हां, इस धूर्त्त चौकीदार को भी बांधकर एक कोठरी में फैंक दो और कल मध्याह्न के पश्चात् मेरे सम्मुख उपस्थित करना।"

आदेश प्राप्त होते ही बलिष्ठ कर्मचारियों ने चौकीदार की मुश्कें बांध लीं और अपने बीस पच्चीस साथियों को बुला कर ड्योढ़ी की ओर चल दिए। महिला ने हरिया को फिर अपने पास बुला कर उसके कान में कुछ कहा और अंजना को साथ लेकर तुरन्त भीतर चली गई। भीतर पहुँच कर उसने ताली बजा कर कुछ महिलाओं को जो दूसरे कमरे में एकत्रित हो रही थीं, बुला भेजा। उन सब के वहां पहुँचते ही महिला ने अंजना का सब से परिचय कराते हुए कहा—अंजना जी। ये सब अपनी विश्वस्त कार्य-कर्त्रियां हैं। ये आपकी योजना में सक्रिय रूप से भाग लेना चाहती हैं।

अंजना ने प्रसन्नता पूर्वक सब का अभिनन्दन करते हुए कहा—"अहोभाग्य, आपका सहयोग पाकर तो निश्चय ही मैं उन कठिनाइयों को पार कर सकूंगी जो पग-पग पर मेरा पंथाविरोध करती हैं। पधारिए, तो कुछ विचार-विनिमय किया जाए।"

सोफे पर बैठते हुए अंजना ने प्रश्न किया—

"वर्त्तमान स्थिति का अध्ययन करते हुए हमें क्या करना चाहिए? एक ओर अराजकता तथा अव्यवस्था बढ़ जाने की आशंका है। दूसरी ओर शत्रु ने प्रत्येक दिशा में हम से भिड़ने का कार्य-क्रम बनाया हुआ है। पग-पग पर मृत्यु से मुठभेड़ करनी पड़ती है। इससे भी भयानक और आपत्तिजनक बात यह उत्पन्न हो चुकी है कि विपक्षी की ओर से महिलाएं भी उनके कार्य-क्रम में भाग ले रही हैं। उन्होंने कई

ग्रामों में घूम फिर कर वहां की स्त्रियों को अपने साथ मिलाने का प्रयत्न किया है। इससे हमारे सिर पर दो-धारी तलवार का आक्रमण हो रहा है। क्या आप लोगों में से कुछ कार्य-कर्त्रियां ऐसी प्राप्त हो सकती हैं जो मेरी अनुमति से सभी क्षेत्रों में मेरे निर्देशानुसार पहुँचकर विरोधी तत्वों को नष्ट कर सकें ? हमारा मार्ग प्रायः शान्तिपूर्ण और अहिंसक हुआ करता है। परन्तु अवसर पड़ने पर आत्मरक्षा के प्रसाधन भी प्रयुक्त कर लिये जाते हैं। कार्य निःसन्देह कठिन है किन्तु आप लोगों के सहयोग के बिना इस समय सफलता प्राप्त न कर सकेंगे, क्योंकि कर्णसिंह ने पुनः स्पष्ट रूप में विद्रोह खड़ा कर दिया है। वह और उसके साथी कुमारगिरि की मन्त्रणा से हमारे विरुद्ध भयङ्कर कार्यवाही कर रहे हैं।"

एक महिला ने पूछा—"ऐसे संघर्षमय समय में हम लोगों से आप किस प्रकार का कार्य ले सकेंगी ?"

भवन-स्वामिनी ने भी इस बात का स्पष्टीकरण करवाने के विचार से कहा—"हां, तो अंजना जी ! आप हमें क्या करने को कहती हैं ?"

अंजना ने गम्भीरता पूर्वक दो पल विचार किया, फिर ओजपूर्ण गम्भीर स्वर में कहा—"हम नारियों को अपनी घरेलू व्यवस्था को सम्भाले रहना होगा। नारी में उच्छृङ्खलता को प्रोत्साहित न करने में ही कल्याण है। विरोधी दल ने हमारे गृहस्थों को बिगाड़ने के लिए ही कुछ महिलाओं को नियुक्त किया है। वह पुरुष व नारी में एक दूसरे के प्रति स्वाभाविक रूप में उत्पन्न हो रहे प्रेम और विश्वास को समाप्त करने की साध में संलग्न हैं। हमें इस अविचार से नारी और पुरुष दोनों की रक्षा करनी होगी।"

एक ने प्रश्न किया—"परन्तु दुर्भाग्य से ऐसी भावनायें घर कर चुकी हैं। नारी और पुरुष अपने अपने अधिकारों के लिए एक दूसरे से जूझने के लिए कटिबद्ध हो रहे हैं।"

अंजना ने दृढ़ स्वर में कहा—"हमें किसी भी मूल्य पर इन भावनाओं से उन्हें मुक्त करना है। उन्हें अधिकार और अहम्मन्यता के स्थान पर कर्त्तव्य और अभिन्नता का पाठ पढ़ाना है। मैंने कल सुना कि अल्मोड़ा में कुछ नारियों ने मुक्ति-प्रदेश के जननायक के सम्मुख अपने अधिकारों की रक्षा के लिए एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया है जिसके अनुसार उन्होंने मांग की है कि नारी को भी पुरुष की भांति अपने पति को त्यागने की वैधानिक सुविधा प्राप्त हो।"

पास बैठी स्त्री ने इस पर चिन्ता प्रकट करते हुए कहा—"इससे निःसंदेह हमारा जीवन ही अनिश्चित हो जाएगा। क्योंकि इतने विशाल संसार में सभी सम्बन्ध ढीले पड़ जाते हैं। यहां तक कि ऐसा समय आ जाता है कि माता पिता भी किनारा कर जाते हैं और पति-पत्नि के अतिरिक्त दूसरा कोई अपना रह ही नहीं जाता। यदि यह सम्बन्ध ढीला पड़ गया तो हमारे घरेलू जीवन का क्या होगा? हम भटक जाएंगे।"

पीछे बैठी एक स्त्री ने वाक्य की पूर्ति करते हुए कहा—"और भटके हुए प्राणों से हम राष्ट्र निर्माण की आशा कैसे कर सकेंगे। वे तो अपने में ही उलझ कर रह जाएंगे।"

अंजना ने कहा—"यह तो होगा ही पर, हम ऐसा न होने देंगे। हमें जीवन को प्राचीन रूढ़िमय सिद्धान्तों और हमारी विशुद्ध भारतीय संस्कृति के शत्रु पाश्चात्य विचारों से बचाकर रखना होगा। तभी हम अपनी नैतिकता और सभ्यता को अडिग बनाए रख सकेंगे।"

भवन-स्वामिनी अभी कुछ कहने को ही थी कि काश्मीरी ने आकर कहा—"हम सब बाल-बाल बच गए देवी जी! आपने ठीक समय पर हमें भेज दिया। ज़िला अधिकारी और उसके सहयोगी इस भवन को उड़ाने के लिए इसके नीचे सुरंगें बिछाने को थे। हमने आकस्मात् आक्रमण करके बारह व्यक्तियों को वन्दी बनाया है। चार व्यक्ति गोली लगने से धराशायी भी हो गए हैं। और यह सब चौकीदार

की सहायता से होने वाला था। चौकीदार वास्तव में उन्हीं का अन्तरंग मित्र था।"

अंजना ने पूछा—"काश्मीरी ! जिला अधिकारी कहां हैं ?"

काश्मीरी ने सिर झुका कर कहा—"वह हमारे हाथ नहीं आ सका देवी जी !"

अंजना ने गम्भीर होकर कहा—"हूं···भाग गया। किन्तु कब तक·········।"

तदनन्तर वह एकाएक सीधी खड़ी हो गई और कहने लगी—"उसका पीछा मैं स्वयं करूंगी। दीदी ! आप आज ही अपनी योजना के अनुसार इन सबको इनका कार्य समझा कर विदा कर दें और स्वयं मेरे साथ कल प्रातःकाल चलें। जिला अधिकारी को अपने वश में करके फिर दूसरा कार्य करना होगा।"

यह कहकर वह गृहस्वामिनी को कुछ संकेत करके साथ वाले कमरे में चली गई। इसके पश्चात् गृहस्वामिनी ने सम्मुख बैठी सभी महिलाओं को क्रमशः समस्त कार्य-क्रम समझा दिया। इस पर एक ने कहा—

"रमा जी ! क्या हमें अंजना जी से सदैव की भांति अब भी विलग घूम कर कार्य करना होगा ? हमें उनके साथ कार्य करने की बड़ी इच्छा है। क्या हममें से किसी को भी अपने साथ रखना नहीं चाहतीं ?"

रमा ने उत्तर दिया—"यह सब भी तो उन्हीं की इच्छा से हो रहा है। वह समय समय पर आपको मिलती ही रहेंगी। मैंने भी इस विषय पर एक बार उनसे बात की थी, परन्तु एक ही उत्तर मिला इस बात का, कि 'मेरा मार्ग अति दुष्कर और आशंकापूर्ण है। मैं यथाशक्य अपने सहयोगियों को इस कंटकाकीर्ण मार्ग पर अपने साथ में घसीटूंगी।' और वास्तव में इन्हें पल पल पर मृत्यु से भेंट करनी पड़ती है। इन्हें

बहुत ही सतर्क हो कर डग भरना होता है। विश्रान्ति इनके जीवन में जैसे लुप्तप्राय हो चुकी है। इनका आदेश है कि आप लोगों को एक एक करके जैसा कि आप को पहले बताया जा चुका है मुक्ति-प्रदेश के घर घर में किसी भी रूप में प्रवेश करना होगा। जनता को अपने विचारों से सहमत करने का भरसक प्रयत्न करना होगा। आज से एक सप्ताह के पश्चात् अर्थात् आज ही के दिन ठीक इसी समय यहां से एक कोस के अन्तर पर बने हुए शिव के जीर्ण-शीर्ण मन्दिर में मिलना होगा, और अपने अपने कार्य का व्योरा देना होगा। सम्भव है उस समय यदि अंजना जी से अनुमति प्राप्त हो सकी तो आप में से किसी एक को उनका सहवास प्राप्त हो सकेगा। अच्छा, अब आप लोग शीघ्रातिशीघ्र यहां से प्रस्थान करिए। पश्चिमी सीमा से चार कोस उत्तर की ओर एक गुफ़ा है जिसे आप में से कुछ महिलाएं जानती हैं, वहां आप को एक उपत्यका के चरणों में एक काले-कलूटे तापस के दर्शन होंगे। आप उन्हें जाकर यह पत्र दिखाइए। परन्तु इससे पहले उनके देखते ही अपनी सांकेतिक भाषा में उनकी परीक्षा अवश्य कर लीजिए। उनका उत्तर यथार्थ होने पर उनके आदेशानुसार अपने अपने काम पर जुट जाना। जय जननायक!!"

रमा का आदेश पाते ही सभी उन्हें अभिवादन करके वहां से एक गुप्त मार्ग द्वारा चल दीं। रमा ने सिंगी बजाई जिसे सुनते ही हरिया और केसरी भागते हुए आ पहुँचे। रमा ने अनुशासन पूर्ण स्वर में कहा—"केसरी! तुम लोग शीघ्र तैयार हो कर आओ। देखो हरिया! तुम सीधे मां को यह पत्र पहुँचा दो और केसरी! अभी अभी जो महिलाएं गुप्त मार्ग से गई हैं तुम्हें उनके पीछे पीछे जाना होगा, परन्तु छिप कर। जिस समय इन्हें वह काला तापस कार्य-क्रम समझा दे, उसके पश्चात् इन सब की गति विधि जांचते हुए तुम्हें सामने के पर्वत पर लता-मंडप में कल निशीथ के पश्चात् भागवत् को मिलना होगा, और उसका संदेश

लेकर प्रवेश को देते हुए पुनः हमें सेठ राधा लाल के बङ्गले से सटकर आनन्द निवास नामक मकान में मिलना होगा। वहां पर तुम मेरे भाई के रूप में आओगे। अपना नाम कंचन लाल और मेरा नाम रधिया बतलाना होगा। अंजना जी भी वहीं मेरे साथ होंगी। उनका नाम फूला स्मरण रखना। आनन्द निवास में अंजना जी की एक सखी रहती है। उन्हीं के उपक्रम से हमें सेठ राधा लाल के यहां नौकरी मिल गई है। समझे भाई साहिब ?"

केसरी ने किंचित् हास्य मुद्रा में कहा—"जो आज्ञा बहिन जी !"

रमा ने कहा—"तो जाओ तुम लोग। हां, हरिया ! तुम्हें भी यदि मां का कोई संदेश पहुँचाना हो तो सेठ राधा लाल के आ जाना, या आनन्द निवास में पहुँचना. यदि कोई ऐसी आज्ञा हो तो जननायक और कविवर शशांक को मिल कर यहीं आ पहुँचना। जय जननायक !!"

दोनों अभिवादन करते हुए चले गए। रमा वहीं से लौटकर सीधी अंजना के पास जा पहुँची। अंजना ने उसे देखते ही हंसकर कहा—"अब हमें चल देना चाहिए रमा दीदी ! रात्रि बहुत व्यतीत हो चुकी है। और सम्भव है कल की रात भी विश्राम न कर पायें ; क्योंकि अधिकारी महोदय आधी रात के पश्चात् ही सेठ जी की सेवा में आते हैं; उनका भी तो स्वागत करना है। देखो, काश्मीरी को यहीं भवन में रहने देना, और नीरू को वहां अपने पास सेठ राधालाल के बङ्गले पर पहुँचने का संकेत कर देना। बलिष्ठ व्यक्ति है। अधिकारी को सम्भाल लेगा।'

रमा ने जाते हुए कहा—"उसे कह दूंगी। हां—तो सूर्योदय से दो घण्टे पूर्व तैयार रहना। मैं सोने जाती हूं।"

अंजना मुस्का दी। और रमा वहां से चली गई। तब क्लाक ने बारह बजाए, टन-टन की ध्वनि सुनते ही अंजना की आत्मा सिहर उठी, हृत्तन्त्री झंकृत हो उठी, भावोद्रेक से उसके नेत्र मुंद गए। उसे

ऐसा प्रतीत हुआ कि क्लाक की टन-टन के साथ विचित्र वीणा का सा स्वर सुनाई दे रहा है और उसकी अंगुलियों के थिरकन के साथ साथ शशांक गाए जा रहा है। गीत की स्वर लहरी से विमुग्ध होकर वह झूम रही है। जीवन की समस्त विषमताएं जैसे उसे भूल सी गई हैं। वह अपलक अपने प्रिय की ओर देख रही है विस्मृत और मन्त्र-मुग्ध सी होकर। फिर उसने स्वप्निल मादकता में ही कह डाला—'कवि, या तो तुम गीत गाना छोड़ दो या मेरे हृदय में बसना छोड़ दो। मैं तुम्हें पाने के लिए पर-कटे पक्षी की भांति फड़फड़ा कर रह जाती हूं, पर तुम तो सचमुच शशांक ही हो। शक्रवाहनों के आवरण में से तुम कभी कभी अपनी रजत रश्मियों से आह्लादित करके अदृश्य हो जाते हो। मैं तुम्हारी उस छवि की जिज्ञासा में निरन्तर ऊर्ध्व मुख होकर बैठी रहती हूं। निठुर प्रिय! तुम सारी सृष्टि को अपने अमृत द्वारा सींचकर पुनर्जीवन का वरदान दिया करते हो, परन्तु अपनी परोपकारमय भावनाओं की उपेक्षा करके कभी प्रेम के संसार में प्रेम की अन्तर्ज्वाला भी तो शान्त कर दिया करो।" तत्पश्चात् इसे ऐसा आभास होता है कि नीले और गहरे श्याम वर्ण मिश्रित पयोदों के ऊपर बैठकर उसका शशांक उसके सामने आ जाता है तथा उसकी ओर अपना हाथ बढ़ाकर प्यार भरे स्वर में कहता है—"मैं आ गया देवी! उठो, मैंने कुछ समय के लिए कर्त्तव्य से अवकाश प्राप्त किया है। अब कुछ क्षण जीवन के संगीत में तन्मय होने का अधिकार भोग लें।" और वह उसका हाथ पकड़कर स्वर्ग की ओर ले गया। वहां पहुँचकर दोनों ने गन्धर्व कन्याओं के नृत्य देखे, गन्धर्वों का संगीत सुना। कुछ पग और आगे बढ़कर उन्हें एक विरही का स्वर सुनाई दिया। वह उसी ओर चल दिए। विरही का स्वर अन्तर्वेदना की ज्वाला से द्रवित हो दहकते हुए प्रवाल की तरह फूट पड़ता जान पड़ने लगा। अनायास विरही का स्वर बदला। निश्चय ही वह भस्म-प्रया

हो चुका था। मृतिका के कलेवर से संगीत कैसे फूट पड़ता ? बुझते हुए दीप की तरह उसने एक तीव्र निःश्वास छोड़ा। उसका संगीत स्वरों की पराकाष्ठा पार कर गया। उसकी हृत्तन्त्री के सभी तार टूट गए और वह लुढ़क गया। अंजना और उसके प्रिय ने भी यह दृश्य देखा, तो विचलित हो उठे। अंजना की तो जैसे चीख निकल गई। वह घबरा कर उठ बैठी। उसने कमरे में चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। न उसका प्रिय शशांक, न वह स्वर्गिक संगीत, न विरही का आलाप; कुछ भी तो न दिख पाया उसे वहाँ।

अब की क्लाक ने तीन बजाये। टन-टन की आवाज़ से उसकी निद्रा भङ्ग हो गई। उसने उठकर पानी का गिलास पिया, और स्वस्थ चित्त होकर कुछ समय तक चिन्तन करती रही। उसे शशांक सचमुच ही बहुत याद आ रहा था। उसका अभाव कांटे की तरह हृदय में खटकने लगा। कुछ ही क्षण में वह विह्वल हो उठी। परन्तु क्या करे। कर्त्तव्य का अनुशासन उसकी मधुर भावनाओं पर प्रतिपल कुठाराघात जो कर रहा था। उसने किसी प्रकार अपने हृदय को सान्त्वना दी, और दो ही क्षण में एक दम सीधी उठ खड़ी हुई। कुछ देर तक सामने पड़ी मेज़ के पास बैठ कर पत्र लिखती रही। अभी वह अन्तिम पत्र समाप्त करके बन्द भी न कर पाई थी कि एक काली सी छाया खिड़की द्वारा भीतर प्रविष्ट होते दिखाई दी। वह सचेत होकर उठ खड़ी हुई। उसने जेब में से पिस्तौल निकाल कर कड़कते हुए कहा—
'प्रत्यक्ष में आओ, नहीं तो गोली मार दूंगी।"

परन्तु छाया बिना कुछ उत्तर दिये धीरे-धीरे झूमती हुई कमरे के दूसरे कोने की ओर बढ़ रही थी। अब की वह अपने आप को वश में न रख सकी। पिस्तौल से गोली छूटी और साथ ही किसी के गिरने की ध्वनि उसे सुनाई दी। उसने दूसरी गोली और मार दी। इस पर कोई चीत्कार अथवा किसी भी प्रकार का प्रत्युत्तर स्वर उसे सुनाई न

दिया। उसने निकट जाकर ध्यानपूर्वक देखा तो किसी के धीरे-धीरे हंसने का स्वर उसके कान में पड़ा। उसने और निकट होकर देखा, तो चमकदार काले कपड़े में लिपटी हुई कोई चीज़ पुनः उठ रही थी। अबकी उसने क्रोध में आकर उस पर एक लात दे मारी, परन्तु उस पर कोई भी प्रभाव न दिखाई दे रहा था ! उसके विस्मय की सीमा न रही, जबकि उसने उस काली ढकी-ढकाई वस्तु को पुनः उठकर अपनी ओर आते देखा। इस बार पहले तो वह बहुत भय से व्याकुल हो उठी। फिर पूर्ण शक्ति से एक छुरी हाथ में लेकर उस पर झपट पड़ी। अभी वह वार करने को ही थी कि काला परदा सरक गया और एक गोरा एवं सुन्दर युवक दिखाई दिया। अंजना ने एक दो बत्तियां और जला कर तीव्र प्रकाश में देखा तो वह वास्तव में शशांक था। इस पर तो जैसे पूर्ण विश्वास हो गया कि यह कमरा प्रेतवास ही है, क्योंकि गोली के दो निशाने भी निष्फल हो गए थे। वह द्वार की ओर भागने लगी, तो शशांक ने हंसते हुए उसे अपनी ओर खींच लिया और कहा—

"अंजना ! क्या अपने कवि को इतना शीघ्र भूल गई। मैं तो तुम्हें नहीं भूला ! मुझ से भयभीत क्यों हो ? मैं तुम्हारा शशांक हूं।"

अंजना ने विस्मृत विस्फारित नेत्रों द्वारा ध्यान पूर्वक देखते हुए कहा—"कवि, नहीं नहीं तुम कवि नहीं हो। तुम तो प्रेत हो। मुझे छोड़ दो।"

और वह कांपने लगी। शशांक ने हंसते हुए कहा—"अन्त में नारी हो न ! कोमल मानसी ! अच्छी तरह पहचान कर देखो, मैं तुम्हारा कवि हूं या नहीं।"

यह कहकर उसने सांकेतिक भाषा में कुछ कहा। इस पर पहले तो अंजना कुछ सोचने लगी, फिर कहने लगी—"मैं तुम्हारी बात पीछे सुनूंगी। पहले यह बताओ कि मेरी पिस्तौल की गोली लगने पर भी जीवित कैसे रहे ?"

शशांक ने उत्तर दिया—"यह कोई अनहोनी बात नहीं अंजना ! यह हमारे वैज्ञानिकों का नवीनतम आविष्कार है। उन्होंने इस काले वस्त्र पर एक ऐसी धातु लगा दी है जिससे गोली का कोई प्रभाव नहीं होता। मेरे पास समय बहुत थोड़ा है। यह लो, इस पत्र में मां का संदेश है और इसमें बापू ने तुम्हारे लिए कुछ लिखा है। इन्हें बाद में पढ़ना। पहले यह कुछ काले वस्त्रों के टुकड़े हैं और ये सफ़ेद वस्त्र के। अपने उन साथियों में बांट देना, जिन्हें शत्रु के शिवरों में समय असमय घूमना पड़ता है। बस, अब मैं चलूंगा। हां, तुम और रमा जी यहां से कब जाने वाली हो ?"

अंजना ने उत्तर दिया—"अभी आध घण्टे के भीतर ही हम यहां से चल देंगे।"

शशांक ने ज़ोर देकर कहा—"किसी भी प्रकार से साढ़े चार बजे से पूर्व ही यह स्थान छोड़ देना।"

अंजना ने अशंका पूर्ण स्वर में पूछा "क्या कोई······?"

शशांक ने चलते हुए कहा—"व्याख्या के लिए समय नहीं अंजना। इस स्थान को तुरन्त छोड़ दो। कुमारगिरि के कुछ कर्मचारी इस महल को सुरङ्ग द्वारा उड़ाने के लिए गत-सन्ध्या से ही इस भवन के निकट घूम रहे थे। एक गुप्तचर ने मुझे, कुछ समय हुआ, बताया कि तुम यहां हो, और ठीक साढ़े चार बजे वे लोग इस भवन को उड़ा देंगे।"

अंजना ने आगे बढ़ कर उसका हाथ पकड़ लिया और उसको बिठाती हुई विनोद-पूर्ण स्वर में बोली—"कवि महाशय ! आप इतनी दूर से इतना कष्ट करके आए, कुछ जलपान करके जाओ। यहां अब कोई डर नहीं रहा। वे सभी के सभी व्यक्ति गुफ़ाओं में बन्द किए जा चुके हैं। हाँ, एक व्यक्ति अवश्य बच गया हमारे हाथों से, और वह था ज़िला अधिकारी। न जाने किस प्रकार वह हाथ से निकल गया।"

शशाँक ने आपत्तिपूर्ण स्वर में कहा—"जब वह धूर्त्त ही हाथ से

निकल गया, तो फिर निश्चिन्तता कैसी ? वही तो इस सारे कार्य-क्रम का नेतृत्व कर रहा है यहां, तब तो एक पल भी विलम्ब न करो। क्योंकि सौ सुसज्जित व्यक्तियों का दल इस भवन को नष्ट करने के लिए आ पहुँचने को होगा।"

वाक्य समाप्त होते ही वह विद्युत् गति से खिड़की के बाहर कूद गया। अंजना ने निमेष मात्र के लिए खिड़की की ओर देखा, फिर मां का पत्र पढ़ने लगी। मां ने लिखा था—"बेटी ! किसी विषैले तत्व की गन्ध से मैं अस्वस्थ हो गई हूं ! प्रति क्षण शारीरिक शक्ति साथ छोड़ रही है। कार्य करने को हृदय मचलता है, और फिर तुम तो जानती हो कि इस समय कितना कार्य-भार है हम सब पर ? कड़ा प्रयत्न करने पर बड़ी ही कठिनाई से तीन चार घण्टे काम कर सकी हूं। चिकित्सकों और उपचारिकों ने परामर्श दिया है कि मैं रसायनशाला में कदापि प्रवेश न करूं; किन्तु क्या करूं; देश की दशों दिशाओं में हिंसक शत्रु मुँह बाए हमें लीलने का प्रयास कर रहा है। कुमारगिरि ने गत सप्ताह में तुम्हारे जाने के पश्चात् हमारी उत्तरीय और पूर्वीय सीमाओं पर इस प्रकार नृशंसता और अमानुषिकता का परिचय दिया है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। उसने ऐसे ऐसे साधनों से नर-हत्याएं की हैं कि उसे रोकने के लिए उससे भी अधिक शक्तिशाली आयुधों और आविष्कारों की आवश्यकता आ पड़ी है। अस्तु, शशाँक आठों पहर मेरे साथ रहता है। इस ओजस्वी और बलिष्ठ प्रतिभाशाली युवक की सहायता से मेरी मनोकामना किसी अंश में पूर्ण हो रही है। इस समय मेरा श्वास फूल रहा है। अङ्गों में सूजन और शिथिलता बढ़ रही है। सम्भव है अब हमारा मिलन न हो सके, परन्तु मैं तुम्हारे निकट ही रहूंगी—यह विश्वास करना। शशांक और प्रवेश को सदैव आत्मीय समझना और इन पर विश्वास रखना। अपने हृदय को असीम और विस्तृत बनाए रखना।

शेष.......................

—तुम्हारी, माँ।"

पत्र पढ़ते ही अंजना के नेत्रों में आंसू छलछला आए। मां की स्नेहमयी और शान्त मुद्रा उसके सम्मुख आ खड़ी हुई। उसने अस्पष्ट भाषा में कहा—"मां! मुझे दर्शन दिए बिना तुम कैसे चली जाओगी? मैं इसी समय तुम्हारे पास आ पहुँचती, परन्तु कर्त्तव्य मेरा पथ रोक रहा है। अनेकों व्यक्तियों के प्राण इस समय मेरे संकेत पर हैं। एक पल का भी विलम्ब न जाने कितने प्रिय सहयोगियों के प्राण हर सकता है? नहीं मां। तुम मेरी प्रतीक्षा करना। मैं यथाशीघ्र निवृत्त होकर तुम्हारी सेवा में उपस्थित हो जाऊंगी। अभी तो मैंने तुमसे बहुत कुछ सीखना है। मुक्ति-प्रदेश का भविष्य तुम्हारे बिना अन्धकारमय हो जाएगा। हम किस के पास दौड़े-दौड़े सलाह मांगने जाएंगे?"

इन्हीं विचारों में खोए हुए उसने दूसरा पत्र खोला। उसमें जननायक ने लिखा था—

"बेटी,

महादेवी का स्वास्थ्य प्रतिक्षण बिगड़ रहा है, न जाने वह कब हमें छोड़ जाएं। सम्भव है कि उन्होंने अपने पत्र में तुम्हें कुछ संकेत भी दिए हों। इस समय तुम्हारे लिए अपने कर्त्तव्य पर डटे रहना ही श्रेयस्कर है। महादेवी के पश्चात् इनका सारा कार्य-भार तुम्हारे ही कन्धों पर पड़ने वाला है। इस लिए तुम्हें और भी दृढ़ तथा कर्मठ बनना होगा।

आशा है इनके पत्र से तुम्हें आज की परिस्थिति का पूर्ण आभास मिल गया होगा। इस समय हमारे ऊपर बहुत बड़ा संकट है। यदि हम एक पल के लिए भी ढीले पड़ गये तो शत्रु हमें हड़प कर लेगा और हम कहीं के भी न रह जाएंगे। तुम्हारे चाचा ने प्रदेश में मनमाने अधिकार प्राप्त न होने पर कुमारगिरि से मिल कर खुलमखुला

विरोध कर दिया है। अस्तु, मैं तुम से यही आशा करूंगा कि अपनी पूज्य मां की तरह अपनी असमर्थता से जूझ कर कर्त्तव्यनिष्ठ बन जाओ। विषैले तत्त्वों ने उसकी नसें तक सुखा डाली हैं। किन्तु उनकी वाणी में अब भी वही ओज है, वही प्रेरणा है। ऐसी असाधारण विभूति को अपने बीच में से निकलते हुए देख कर हमारी आत्मा रो उठती है। इसी अवस्था में उन्होंने शशांक और प्रवेश को भी अपने अपने कार्य पर भेज दिया है। शेष·····

तुम्हारा,

प्यारा बापू।"

बापू का पत्र पढ़ते ही उसकी आंखें चमक उठीं। उसने क्लाक की ओर देखा। चार बजने को थे। वह भागती हुई रमा के कमरे में पहुँची। रमा भी हाथ मुंह धो कर तैयार थी। उसने छोटे छोटे दो थैलों में कुछ आवश्यक वस्तुएं डाल ली थीं। अंजना को देखते ही स्वस्थ स्वर में बोली—"चार बजने को हैं। क्या विचार है? अभी चल दिया जाए?"

अंजना ने भी स्वस्थ हो कर कहा—"अवश्य, और अविलम्ब। यहां पर एक पल भी ठहरना आशंका से रिक्त नहीं है।"

दूसरे ही क्षण दोनों सखियां एक दूसरे का हाथ पकड़े गुप्त मार्ग में से हो कर चल दीं।

उत्तर-पश्चिमीय सीमाओं पर की गई नर-हत्याओं से उक्त सीमाओं के निकटवर्ती क्षेत्रों में कुमारगिरि और कर्णसिंह के नाम का आतंक छा गया। जनता छिप-छिप कर रात्रि के अन्धकार में अपने घर-बार छोड़कर जाने लगी, तो कुमारगिरि की मन्त्रणा से कर्णसिंह ने अपने क्षेत्र की जनता को एकत्रित करके कहा—"मैं सर्वसाधारण को इस बात का विश्वास दिलाता हूं कि जो व्यक्ति हमारे मार्ग में अड़चनें उत्पन्न करेगा, उसे किसी भी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। मुझे राजसिंहासन का रंच-मात्र भी लोभ नहीं। मुझे अपना आत्मीय समझें। मैं तो जो कुछ कर रहा हूं, साधु बाबा की आज्ञा से; और आप लोगों की भलाई के लिए। गणतन्त्र का पाखण्ड बहुत बढ़ चुका है। उसके विधान में तो पाप-पुण्य, धर्म व नीति के लिए कोई स्थान ही नहीं। और न ही वहां किसी भद्र पुरुष की प्रतिष्ठा ही हो सकती है। उस पाखण्डी व दुष्ट सामन्त ने सच पूछो तो कितनी पीढ़ियाँ खाए हुए हमारे वंश के अन्न को कलंकित कर दिया है। मैंने कभी यह न सोचा था कि वह दुष्ट सांप हमारी ही चादर में पलकर हमें डस लेगा। उस धूर्त्त ने कितनी चतुराई से आप के महाराज और उनकी पुत्री अंजना को महल समेत जीवित भस्म कर दिया। और जनता में यह प्रचार कर दिया कि मैंने ही उनकी हत्या की है। मैंने ही महल को उड़वाया है। इसी प्रकार उस कपटी ने छल-पूर्वक शिवालक के राजवंश को अपने मार्ग से हटाकर मुक्ति-प्रदेश नामक गणतन्त्र की ओट में अपना तानाशाही राज्य स्थापित कर लिया है। मैं आप लोगों से पूछता हूं कि महाराज अजयसिंह अथवा हमारे किसी भी पूर्वज के राज्य में आप इससे अधिक सुखी न थे? जब से यह तानाशाही राज्य स्थापित हुआ है देश के कोने-कोने में मारकाट चल

रही है। अराजकता ही अराजकता दिखाई देती है। देव-स्वरूप ब्राह्मणों से उनका विद्याभ्यास और वेद-पाठ छीनकर, भङ्गियों और चमारों को सौंप दिया है। क्षत्रियों और वैश्यों को भी ब्राह्मणों की ही तरह उनके परम्परागत अधिकारों और संस्कारों से वँचित करके हल में जुटा दिया है निदान जितने भी पवित्र विचार हमारे थे उन सबको समाप्त कर दिया है। हमारे राज्य में आज तक अंग्रेज़ी सभ्यता न आ पाई थी। पर इन विधर्मियों ने ठोक-पीट कर हमारे भोले-भाले ग्रामीणों को ईसाई बना दिया है। हमारे देव-स्थानों में शंखों के स्थान पर गिद्ध बोल रहे हैं।"

एक ग्रामीण युवक ने साहस-पूर्ण स्वर में कहा—"महाराज! क्षमा हो, तो एक प्रश्न करूं?"

कर्णसिंह ने अतीव ही नम्र वाणी में कहा—"कहो, निःशंक होकर कहो। डरने की क्या बात है? मैं तो आपका सेवक हूं।"

युवक ने प्रश्न किया—"महाराज! क्या पहले भी बड़े महाराज पर आपने कोई कुत्सित आक्रमण नहीं किया था? क्योंकि अब तक तो यही सुना गया है कि आपने महाराज अजयसिंह के विरुद्ध अकस्मात् विद्रोह खड़ा करके उनकी हत्या कर डालने का यत्न किया था; परन्तु वह भाग्यवश बच गये। और............।"

कर्णसिंह ने वाक्य भंग करते हुए शान्त स्वर में कहा—"अरे भाई, यदि ऐसा न हो तो फिर उस बूढ़े सामन्त को कुटिल कौन कहे। भला आपको विश्वास होता है कि मैं अपने पितृ-सम अग्रज की हत्या करने को उद्यत हो सकता था? मैं आपको अपना कलेजा चीर कर कैसे दिखाऊं कि मेरे हृदय में अब भी पूज्य बन्धु महाराज अजयसिंह की पुनीत प्रतिमा विराजमान है। आप लोग यह क्यों भूल जाते हैं कि हमारा सांस्कृतिक सम्बन्ध भगवान श्री रामचन्द्र जी के सूर्यवंश से है और उस वंश का भ्रातृ-प्रेम भरत और लक्ष्मण के रूप में अनन्त काल

के लिए अमर रहेगा। मैं आपको अपने उन लोक-रंजक और प्रजा-सेवक आदर्श पृथ्वी-पालकों की सौगन्ध खाकर विश्वास दिलाता हूं कि यदि आप लोग शिवालक के राजसिंहासन का पुनरुद्धार कराने में सहयोग देंगे तो हम निश्चय ही यहां रामराज्य की स्थापना करके दिखाएंगे। अब पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय कलियुग के गुरु वशिष्ठ मेरे पूज्य गुरुदेव आप लोगों को अपना सन्देश सुनाएंगे।"

कर्णसिंह के बैठते ही उसके कर्मचारियों ने उच्च स्वर में कर्णसिंह का जय-नाद किया। तदनन्तर पीताम्बरधारी साधु बाबा कुमारगिरि झूमते हुए और तीव्र पर सशंक दृष्टि से दिशाओं में कुछ ढूंढते हुए आ खड़े हुए। अभी वह कुछ कह भी न पाये थे कि कुछ ग्रामीणों ने चीत्कार करते हुए कहा—

"राजगुरु, हमारी रक्षा करें। आपके सैनिकों ने हमारे छोटे-छोटे बच्चों को मार डाला। हमारी स्त्रियों की मर्यादा नष्ट कर दी। हमारे घर जला दिये। और तो और हमारे खलिहानों तक में आग लगा दी। आप······।"

कुमारगिरि ने हाथ के संकेत से उन्हें मौन कराते हुए गम्भीर दृष्टि से जनता के म्लान और व्याकुल मुखों पर दृष्टि गाड़ ली। क्षण भर में ही मृत्यु की सी स्तब्धता आच्छादित हो गई। उसने बड़े ही सत्तापूर्ण और गर्विष्ठ स्वर में कहा—"गत संघर्ष में असंख्य प्राणियों की हत्या हो गई नृशंसता और निर्ममता-पूर्वक।"

और उसने आकाश की ओर देखते हुए क्रूर हास्य किया। फिर वक्र दृष्टि से उस वक्ता की ओर देखते हुए व्यंग्य किया—

"सैनिकों ने तुम्हारे छोटे-छोटे बच्चों को मार डाला। तुम्हारी स्त्रियों की मर्यादा नष्ट कर डाली। तुम्हारे खलिहानों में आग लगा दी। हूं, दुष्ट और विधर्मियों का सहयोग देने वालों को दण्ड मिला ही करता है। और जाओ, उस कपटी सामन्त के तलुवे चाटने। क्या वह

इतना कायर बन गया कि तुम लोगों का सर्वनाश करवा के स्वयं चैन की बंसी बजा रहा है। और वह कहां गया उसका प्रतिभावान कवि ? क्या उसके सेनानायक प्रवेश को सांप सूंघ गया ? जाओ, वह तो बड़ा समर्थ है न, क्या वह तुम्हारी रक्षा न करेगा ? शासन प्राप्त होते ही क्या इसी तरह आंखें फेर ली जाती हैं ? बड़ा आया था जनता की सेवा करने। अरे, मूर्खो ! शास्त्रों में लिखा है कि जो व्यक्ति अपना धर्म छोड़ता है उसे ईश्वर भी भूल जाता है। क्या भला अपने खोए हुए धर्म को तुम पुनः पा सकते हो ?''

एक प्रजाजन ने प्रश्न किया—''राजगुरु ! हम न तो मद्य-मांस का स्पर्श करते हैं और न व्यभिचार करते हैं। ईश्वर-निष्ठा में हमारे रंचमात्र भी अन्तर नहीं आया। हम तो सदा-सदा ही कर्त्तव्य-परायण रहे हैं फिर भला हम······।''

कुमारगिरि ने बात काटते हुए कहा—''ईसाई कैसे हो गए ? अरे बुद्धिहीन ! क्या ईसाई सचमुच वही होता है जो गौ-मांस भक्षण करे या मद्यप हो ? अरे मनुष्य की जाति तो उसके विचारों पर निर्भर है। जब तुम्हारे विचार ही नष्ट हो गए तो तुम हिन्दु कैसे रह गए ? तुम तो आर्य्य सभ्यता के उन्मूलक हो। तुम्हारे लिए तो एक ही न्याय है कि तुम्हें शूली पर चढ़वाया जाए। अथवा कठोर से कठोर प्रायश्चित्त करवाया जाए। फिर भी हमने तुम लोगों पर दया करके तुम्हें छोड़ दिया। यदि अब भी तुम उस दुष्ट सामन्त के कर्त्तव्य-पाठ को रटते रहे, तो तुम्हारी निष्कृति के लिए कोई आशा नहीं।''

इतने में हरिभाऊ घोड़ा दौड़ाता हुआ सीधा मंच के निकट आकर रुका। उसके मुख पर के भावानुभाव को देख कर यह प्रतीत होता था कि कोई न कोई ऐसी घटना घट चुकी है या घटने वाली है जिसका सामयिक युग से घनिष्ट सम्बन्ध है। उसने कुछ क्षण के लिए अपने होंठ कुमारगिरि के कान पर लगा दिए। कुमारगिरि के मुंह पर पल-पल

में परिवर्तन हो रहा था। अन्त में सन्देश सुनते सुनते उसकी भवें चढ़ गईं। गोकरण की भांति कान खड़े कर लिए उसने ! और फिर कर्णसिंह के कान में कुछ कहा। कर्णसिंह ने जैसे स्तम्भित से होकर व्यस्त-भाव में प्रश्न किया—

"तो अब............?"

कुमारगिरि ने आँख के संकेत से ही उसे मौन करा दिया, और कुछ समय चिन्तन के पश्चात् मुद्रा परिवर्तन करते हुए मुख पर कृत्रिम सन्तुष्टि के भाव लाकर कहा—

"महाराज ! तब तो बाज़ी हमारे हाथ में है।"

फिर जनता की ओर मुख करके प्रभावक शब्दों में कहा—"शत्रु अपने जाल में स्वयं ही उलझ गया, हः-हः-हः; हरिभाऊ ! शीघ्रातिशीघ्र शिविर में जाकर भोजनादि से निवृत हो जाओ। सोमदेव से कहना कि वह भी तैयार हो जाए।"

इसके साथ ही कुमारगिरि और कर्णसिंह त्वरित गति से मंच छोड़ कर चल दिए। परन्तु उनके जाते ही जनता में भांति भांति की आशंकाएं उत्पन्न होने लगीं। एक वृद्ध व्यक्ति ने गम्भीरता पूर्वक विचार करते हुए कहा—"लक्षण अच्छे नहीं जान पड़ते। साधु बावा लाख छिपाएं, किन्तु मनोभाव छिपा नहीं करते। मेरे विचार में हम लोगों को इनके आश्रय पर न रह कर अपनी रक्षा का कोई और साधन ढूंढ़ना चाहिए।',

इस पर एक युवक ने आगें बढ़कर कहा—

"यहां कई दिन से एक वृद्ध तापस आए हुए हैं। ज्ञान में गुरु वशिष्ठ के समान हैं। जितने ऊपर से काले हैं उतने ही भीतर से नारिकेल की भांति शुभ्र व निर्मल। मेरे विचार में हमें इस संकट काल से बचने के लिए उनकी शरण में जाना चाहिए !"

समीप खड़े एक अधेड़ व्यक्ति ने कहा—

"हां, भई, सुना तो है। जो भी वहां हो आया है वही कहता है

कि उनके पास कोई चमत्कार है। एक तो कह रहा था कि उसने उन को बवर शेर के रूप में देखा, परन्तु वह उसे भयभीत देखकर तुरन्त अपने साधारण वेश में दिखाई देने लगे।"

तीसरे व्यक्ति ने कहा --"अरे भैया, तुम किसी की सुनी बात कहते हो। मैंने तो अपनी आंखों से देखा है कि उन्होंने भगवान श्री कृष्ण की तरह विराट रूप में दर्शन दिए और कहा कि यदि कल्याण चाहते हो तो मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें अभयदान दूंगा। और फिर उन्होंने एक ही घूंट में झरनों का सारा पानी पीकर कानों के रास्ते पुन: बाहर निकाल दिया।"

एक व्यक्ति जो दूर खड़ा यह सब सुन रहा था वह तो भागता हुआ वहां आ पहुँचा, और हाथ मार-मार कर उच्च स्वर में कहने लगा—"अरे बस, तुमने इतना ही देखा उनका चमत्कार ! भैया ! मैंने तो उनके साक्षात् चतुर्भुज भगवान विष्णु के रूप में दर्शन किए हैं। और सच पूछो तो उन्होंने मुझसे पहले ही कह दिया था कि देखो सृष्टि पर स्वार्थ और अर्थ-लोलुपता के वश होकर मनुष्य, मनुष्य के रक्त का प्यासा हो रहा है। मैं इस राक्षसवृत्ति के मनुष्यों को नष्ट कर दूंगा, प्रलय मचा दूंगा।"

एक ने प्रश्न किया --'पर भई, उन निर्दोष स्त्रियों और बालकों ने कौनसा अपराध किया था ?"

निकट खड़े व्यक्ति ने उत्तर दिया—"भैया ! जब चक्की चलती है तो गेहूं के साथ घुन को भी पीस डालती है। इस प्रकार विधाता के न्याय की चक्की भी चलती है, तो उसमें कई निर्दोष भी पिस जाते हैं। प्रलय जो हुई; ऐसा तो हुआ ही करता है, यह कोई नई बात नहीं। पुराणों और उपनिषदों में भी ऐसी ही घटनाएं पाई जाती हैं।"

फिर एक ने आपत्ति की—"क्या यह प्रलय इसी क्षेत्र में आनी थी ? मुक्ति-प्रदेश में तो अब भी सुख-चैन की वर्षा हो रही होगी। न

कोई दुःख, न कोई दुविधा, न किसी को खाने-पीने की चिन्ता, न बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षण की चिन्ता; बस विधाता के विधान की तरह स्वमेव जैसे सब कुछ चल रहा है।"

फिर कुछ लोगों ने मिश्रित स्वर में पूछा--"तो फिर उस महात्मा की शरण में क्यों न चला जाए ?"

दूसरे ने उत्तर दिया--"अरे भाई, इसमें हानि ही क्या है ? मान लो, चमत्कार तो जो देखें सो जाने। चलो ऋषि-दर्शन ही सही। शुभ कार्य में पूछ-ताछ ही क्या ?"

सभी ने उसकी बात का समर्थन किया, और समूह रूप में हरि नाम का कीर्तन करते हुए वह त्रस्त प्राणी अपने कल्याण की आशा से ऊंची-नीची पर्वत श्रेणियों को पार करते हुए उस उपत्यका के चरणों में जा पहुँचे, जहां वह देवतुल्य चमत्कारी महात्मा अपने चारों ओर बैठे भक्तों को कुछ उपदेश दे रहे थे। इस जन-समूह को निकट आते देख कर ऋषि ने सब को ध्यानपूर्वक देखा। नवागन्तुक में से कुछ एक की आंखों में तो उन्होंने निमेष मात्र के लिए अपनी आंखें गाड़ दीं। उन व्यक्तियों ने जैसे आनन्द विह्वल हो कर जय-घोष किया—

"महात्मा जी की जय ! महात्मा जी की जय !!"

कई एक ने महात्मा जी की अनेकों नामों से स्तुति की। इसके पश्चात् महात्मा ने मेघवत् गम्भीर स्वर में कहा--"त्रस्त मानवों के निस्तेज मुखों को देखकर मुझे मानसिक वेदना हो रही है। तुम्हारे दुःख से मैं विचलित हो उठा हूं। परन्तु जो हो चुका सो हो चुका। इसके उपरान्त कोई ऐसा उपद्रव न हो पाएगा। मैंने इसका उपाय सोच लिया है। तुम्हें केवल मेरे कहे अनुसार चलना होगा। तुम्हारे सभी संकट दूर हो जाएंगे।"

नवागन्तुकों में से एक अधेड़ ने विनीत भाव से करबद्ध प्रार्थना की--"हमें शीघ्र ऐसा उपाय बताईए, भगवन ! हमारा सर्वनाश हुआ

जा रहा है। हे शरण्य ! हम आपकी शरण में पड़े हैं। किसी भी प्रकार से हमारी रक्षा कीजिए।"

फिर सभी उपस्थित व्यक्तियों ने मिश्रित स्वर में इसी प्रकार का प्रार्थना की, तो महात्मा ने कहा—"यदि तुम निष्ठा-पूर्वक मेरे पास आए हो, तो यहां के मुक्ति-प्रदेश के जननायक के पास जाओ। उस महाप्राण ने तुम्हारे ही कल्याण के लिए और इस पृथ्वी को पापियों दुराचारियों के भार से हलका करने के लिए अवतार लिया है। चले जाओ उसकी शरण में, वह तुम्हारी रक्षा करेगा। जाओ, मेरी तरफ़ क्या देखते हो। एक क्षण का भी विलम्ब करोगे तो नष्ट हो जाओगे। सर्वशक्तिमान ईश्वर का यही संकेत है।"

यह कहते कहते महात्मा उठ खड़े हुए और सभी के देखते देखते वहाँ से चल दिए। उपस्थित प्राणियों के सम्मुख एक समस्या आ खड़ी हुई, कि वह मुक्ति-प्रदेश के जननायक के पास जाएं तो अपने परिवारों को कहाँ छोड़ें ? क्योंकि वहां से उन्हें एक विपरीत दिशा में बहुत ही लम्बे और टेढ़े रास्ते से होकर जाना पड़ता था। एक व्यक्ति ने भागकर महात्मा के चरण पकड़ लिए और गिड़गिड़ाते हुए कहा—

"भगवन ! मार्ग तो आपने बता दिया, परन्तु वह बड़ा ही कठिन और अगम्य है। और फिर ऐसी परिस्थिति में हम अपने परिवार को किस के आश्रय पर छोड़कर जाएं ?"

महात्मा ने सान्त्वना देते हुए कहा—"यह तो कोई चिन्तित होने की बात नहीं। अभी लो, मैं तुम्हें वहां तक पहुँचने का सरल और सीधा मार्ग दिखा देता हूं।"

उन्होंने सामने की घाटी की ओर देखा, फिर सत्तापूर्ण स्वर में आज्ञा दी—"पर्वत ! इन त्रस्त मानवों को अपने बीच में से मार्ग दो।"

आदेश छूटते ही अकस्मात् एक भीषण गड़गड़ाहट के साथ कुछ पग के अन्तर पर विशाल और ऊंचे पर्वत के चरणों के पास एक

बहुत बड़ा मार्ग दिखने लगा।

महात्मा ने व्यक्तियों को संकेत करते हुए कहा—

'जाओ, सभी इस मार्ग में प्रविष्ट हो जाओ। लगभग आधा प्रहर चलने के पश्चात् तुम लोग मुक्ति-प्रदेश की सीमा में जा पहुँचोगे। अगला द्वार तुम्हारे उस ओर पहुँचने से पूर्व ही खुल जाएगा। वहां पहुँचते ही सीधे जननायक की पर्ण-कुटी में पहुँच जाना और उन्हें अपना संकट सुना देना। जाओ तुम्हारा कल्याण होगा।"

एक भक्त ने कहा—"पर देव! हमारे परिवार इस समय अकेले हैं। उनके लिए भी तो कुछ कीजिए।"

महात्मा ने कहा—'मैं जो कहता हूं वह करो। सब ठीक हो जाएगा। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। तुम्हारे परिवारों की रक्षा स्वंय भगवान करेंगे।"

यह कहते ही महात्मा वहां से चल दिए। और थोड़ी दूर जाकर झाड़ियों की ओट में अदृश्य हो गए। सभी लोग त्वरित गति से महात्मा द्वारा बताए हुए मार्ग पर चल दिए। सभी के भीतर प्रविष्ट होते ही महात्मा ने बाहर आकर देखा, और एक छोटी सी शिला को पीछे हटा कर कहने लगे—"बाहर आ जाओ भागवत! काम हो चुका और तुम दूसरे मार्ग से शीघ्रातिशीघ्र पहुँच कर वहां दूसरा मार्ग खोल दो। फिर इन्हें अपने साथ जननायक के पास ले जाना।"

फिर उसने एक चाबी सी घुमाई, तो वह मार्ग पुनः बन्द हो गया। और भागवत भी अभिवादन करके वहां से एक ओर चला गया। महात्मा ने मुस्कराते हुए कहा—"कर्णसिंह! तुम बुद्धिबल से न जीत पाए, तो निरीह जनता पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। मूर्ख, जनता को पीसकर और धमका कर उसका सहयोग प्राप्त करना चाहता है? क्या कूटनीति के परम-पंडित तुम्हारे गुरु कुमारगिरि ने अभी तक यह नहीं सीखा, कि जनता को भयभीत

रखने वाला शासक कभी भी समाप्त हो सकता है ? तुम कितना ही एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाओ, अब जनता तुम्हारी नहीं हो सकती।"

इतने में एक घुड़सवार ने उस उपत्यका में प्रवेश किया और सीधा वहीं आ पहुँचा। महात्मा ने प्रश्न किया—"क्यों प्रवेश ! क्या कोई नई बात है ?"

घुड़सवार ने उत्तर दिया—"नहीं महाराज, कोई विशेष नहीं। क्या जो लोग अभी अभी यहां आए थे, उन्हें सम्भाल लिया न ?"

महात्मा ने कहा—"हां, वह तो आधा मार्ग तय भी कर चुके होंगे।"

प्रवेश ने कहा—"मैं उनके परिवारों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा आया हूं और उनके घरों में हमारे सैनिकों ने डेरा जमा लिया है। हमने चारों ओर से शत्रु को घेर लिया है। परन्तु मुझे अभी अभी पता चला है कि कुमारगिरि किसी मार्ग से हमारे व्यूह से बच निकला है। यह भी सुना है कि ज़मीदार राधालाल की आर्थिक सहायता से ज़िला अधिकारी ने हमें परास्त करने के लिये विदेशों से युद्ध की सामग्री मंगवाई है और वह इसी सप्ताह में विमानों द्वारा मुक्ति-प्रदेश और हमारे मित्र प्रदेशों पर आक्रमण कर देंगे। अब छिपने का समय व्यतीत हो चुका महाराज ! जननायक का आदेश है कि यहां का कार्य समाप्त करके जनता को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाकर आप प्रत्यक्ष रूप में सेना का उत्तर-पश्चिमीय सीमाओं का संचालन करें। पूर्वी और दक्षिणी सीमाओं को सम्भालने का आदेश मेरे लिए है। भीतरी व्यवस्था उन्होंने अपने हाथ में रखी है। मां की अस्वस्थता के कारण शशांक उनके साथ रसायन-शालाओं का निरीक्षण करेंगे। हमें अंजना के आनन्द-निवास में पहुँचने की सूचना प्राप्त हो चुकी है। पिछले दिनों अंजना से मेरी भेंट हुई थी। आशा है वह एक-दो दिवस में ही सेठ राधालाल के जा घुसेगी, और ज़िला अधिकारी अपने आप उसके पंजे में आ

फंसेगा। ऐसी अवस्था में कुमारगिरि वहां गया भी तो हमारे किसी न किसी व्यक्ति द्वारा पकड़ लिया जाएगा।"

महात्मा ने स्मित पूर्ण वाणी में कहा—"तो फिर अब मैं अपना काया-कल्प करके पुनः अजयसिंह बन जाऊं न ? परन्तु प्रवेश ! आक्रमण किसकी ओर से होगा, पहले हमारी ओर से या शत्रु की ओर से ?"

प्रवेश ने उत्तर दिया—"ज़िला अधिकारी के समाप्त होते ही उन के सहायक सूत्रों को भी नष्ट कर देना होगा। यह सब होते ही आपको सूचना पहुँचा दी जाएगी और आप पूर्ण शक्ति से शत्रु-शिविरों पर आक्रमण कर दीजिए। उनकी शिविर-सूची अपने पास रख छोड़िए।"

और उसने घोड़े का मुंह फेर लिया। अजयसिंह ने उसे जाते हुए देख कर कहा—

"प्रवेश ! मां और बापू के चरण स्पर्श करना।"

प्रवेश ने घोड़े को हल्की सी एड़ लगाते हुए कहा—"जय जननायक !!"

प्रत्युत्तर में अजयसिंह ने भी यही जयघोष किया। प्रवेश के अदृश्य हो जाने पर अजयसिंह ने अपनी कुटी के भीतर पहुँच कर सभी कार्य-कर्त्ताओं को एकत्रित किया और उन्हें नवीनतम सूचनाओं से अवगत किया। सहयोगी कार्य-कर्त्ताओं ने पहले तो कुछ क्षण मौन रह कर कुछ विचार किया, फिर एकाएक प्रसन्न हो कर कहा—

"चलो महाराज ! यह तो बहुत ही अच्छा हो गया। अब स्वच्छन्दता पूर्वक प्रकट रूप में चलने फिरने का सुभीता हो जाएगा।"

अजयसिंह ने अधरों को अंगुली से दबाते हुए उन्हें मौन रहने का संकेत करते हुए कहा—"उतावलापन हानिप्रद होता है। गम्भीर बनने का अवसर है।"

और सभी के सभी पूर्ववत् अपने-अपने कार्य में जुट गए। अजयसिंह कुछ जलपान करके और अपनी वेश-भूषा को ठीक करके उपत्यका के चरणों में अपने सिंहासन पर आ डटे।

एक ओर जन-तन्त्र के शत्रु उसकी रूप-रेखा तक को भी नष्ट करने की साध में संलग्न थे और दूसरी ओर उसकी मां घुनग्रस्त सूखी लकड़ी की भांति खोखली होती जा रही थी। उपचारकों की निरन्तर प्रार्थना करने पर भी वह मनस्विनी वृद्धा अपने कङ्कालों की समस्त शक्ति एकत्रित करके कार्य में जुटी हुई थी। एकाएक मस्तिष्क पर अधिक बोझा पड़ने से उसे तीव्र शिथिलता का आभास हुआ, वह निकट पड़ी एक चौकी पर बैठ गई और नेत्र मूंद लिए। कार्यकर्त्ता ने उसका सिर दबाते हुए पूछा—"मां, क्या शरीर दुःख रहा है? चलो, वहां खाट पर कुछ समय सुस्ता लो।"

मां ने तुरन्त नेत्र खोल दिए और उठ कर कहा—"नहीं, भाई, मैं ठीक हूं। हां बताओ, अणु-शक्ति का प्रयोग कर के देखा?"

वैज्ञानिक कार्य-कर्त्ता ने निमेष मात्र के लिए उसे देखो, फिर मेज़ पर पड़े हुए एक द्रव्य को हिलाते हुए कहा—"हां देखो, हमारा प्रयोग सफल रहा। इससे हम प्रत्येक गैस के प्रभाव से वच सकते हैं। इसके अतिरिक्त एक ऐसे यन्त्र का संचालन भी इससे हो सकता है कि हम मानव को आकाश में बहुत ऊँचाई तक उड़ने की शक्ति प्रदान कर सकते हैं। निश्चय ही वायुयानों से यह यन्त्र अधिक मितव्ययी और सुरक्षित रहेगा, क्योंकि कोई भी विस्फोटक पदार्थ इसका स्पर्श करते ही विफल हो जायगा।"

मां ने कुछ अन्य यन्त्रों का निरीक्षण करते हुए एक द्रव्य की ओर संकेत करते हुए कहा—"और यह अमोघ शक्ति द्रव्य होगा?"

वैज्ञानिक ने उत्तर दिया—"हां, परन्तु मां! यह कुछ पदार्थों

की सूची है। इन्हें मंगवा दीजिए तो यह अमोघ शक्ति एक दो दिन में तैयार हो जाएगी।"

मां ने सूची पर दृष्टि डालते हुए कहा—"सब यह पदार्थ भी यही बनाने होंगे। इस समय बाहर से किसी भी ऐसे पदार्थ के उपलब्ध होने की निकट भविष्य में आशा नहीं।"

इतने में शशांक वहां आ पहुँचा। मां ने वही सूची उसके हाथ में दे दी और जैसे किसी प्रकार की अन्तर्पीड़ा से मुंह फेर कर होंठ चबाने लगी। वैज्ञानिक अपने कार्य में व्यस्त था परन्तु मां की स्थिति शशांक से गुप्त न रह सकी। उसने किसी भावी आशंका से भयभीत हो कर विनीत स्वर में कहा—

"मां ! कुछ तो अपने स्वास्थ का विचार करो। देखो, यदि तुम्हें कुछ हो गया, तो हम सब अनाथ हो जाएंगे।"

यह कहते-कहते कवि की आंखें भर आईं। मां ने उसका हाथ पकड़ कर अपने समीप खींचते हुए स्नेह-सिक्त स्वर में कहा—

"धत् पगला, इतना बड़ा हो गया, पर बच्चों की तरह रोना नहीं छोड़ा। अरे, मुझे हुआ क्या है ? अन्त में बूढ़ी हो गई हूं। बस खड़ी खड़ी थक गई, सो सुस्ताने को मेज़ का आश्रय ले लिया।

शशांक ने करुण स्वर में कहा—

"अब तुम से दो क्षण के लिए भी खड़ा तो हुआ जाता नहीं। फिर भी हठ नहीं छोड़ती हो। चलो, चलकर लेटो। यहां पर मैं किसी और को नियुक्त कर देता हूं। तुम्हें तो कार्य हुआ चाहिए न मां ! हम लोगों को तुमने किस लिए पाल-पोस कर इतना बड़ा किया है ?"

मां ने आपत्ति की—"पर बेटा ! हाथ पर हाथ धर कर भी तो कैसे बैठ पाऊँगी ? बूढ़ी हड्डियों को यदि विश्राम करने का अभ्यास हो गया तो हिलना भी कठिन हो जाएगा। क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारी मां पंगु बन जाए ? सजीव होने पर भी निर्जीव मृतक की तरह निश्चेष्ट

रहे ? नहीं भैया, यह मुझसे नहीं होने का। हां, मुझे स्मरण हो आया; प्रवेश और भागवत से मिले थे ?"

शशांक ने उत्तर दिया—"मिला था। सब ठीक और हमारे अनुकूल चल रहा है। अजयसिंह जी भी बड़ी ही तन्मयता से कार्य कर रहे हैं। मां, सच पूछो तो सत्य और कर्मठता की प्रतिमा हैं। आजकल इस प्रकार कार्य में जुटे हैं कि खाने व सोने तक की सुधि नहीं। उन्होंने कुछ समय के लिए तापस बन कर सहस्त्रों तापसों तक को भी अपना मन्त्र पढ़ा दिया है। वह भी समय पड़ने पर देश के शत्रुओं से जूझने को तैयार है।"

माँ ने गम्भीरता पूर्वक चिन्तन करके कहा—"पर बेटा, शास्त्रों में लिखा है कि फ़कीरों पर विश्वास करना मूर्खता है। इसका कोई ठिकाना नहीं होता।"

शशांक ने कहा—"तुम्हारा कहना ठीक है मां ! पर जिस ढंग से अजयसिंह जी ने उन्हें अपने वश में किया है वह कदापि उनकी अवहेलना न कर पाएंगे। वे लोग तो उन्हें साक्षात् भगवान का रूप मानते हैं।"

मां ने कौतूहल पूर्ण स्वर में प्रश्न किया—"पर कोई तो चमत्कार दिखाया होगा अजयसिंह ने उनको !"

शशांक ने कहा—"यह भी ठीक रही, स्वयं ही ऐसे अद्भुत द्रव्य और पदार्थ उन्हें भेजे और स्वयं ही पूछती हो।"

इसके उत्तर में मां केवल मुस्करा दी और बोली—"यह सब ठीक है। आओ मेरे साथ तुम से कुछ बात करनी है।"

दोनों चुपचाप एक छोटी कोठरी में जा पहुँचे। मां ने एक गद्देदार चौकी पर बैठते हुए कहा—"बेटा ! मैं देश की व्यवस्था के साथ-साथ कभी-कभी स्वाभाविक मनोवृत्ति की बाढ़ में भी बह जाया करती हूं। तुम कवि हो, यह समझ लेना तुम्हारे लिए कठिन नहीं है, कि

प्रत्येक बाढ़ अपने साथ अनेकों पदार्थ बहा कर ले आया करती है। उन पदार्थों में निरीह कंकरों और पत्थरों के अतिरिक्त कुछ अमूल्य रत्न भी प्रायः आ जाया करते हैं। परन्तु अधिकतर स्वाभाविक पदार्थ उन अमूल्य पदार्थों से भी अधिक प्रिय लगा करते हैं। अस्तु, मेरी मनोवृत्तियों की बाढ़ इस समय मुक्ति-प्रदेश के कल्याणार्थ चमत्का -पूर्ण मुक्ता-मणियों तक ही सीमित न रह कर कुछ अन्य प्रिय और कोमल पदार्थ भी ले आई है।"

शशांक ने कुछ भी न समझते हुये मां को जिज्ञासा-पूर्ण दृष्टि से देखा; मां ने उसके नेत्रों में निहारते हुए कहा -- "नहीं समझ पाए न, मेरी मनोवृत्तियों को ?"

शशांक ने नतमस्तक होकर उत्तर दिया—"तुम्हारे असीम मानस के हृदय-कोष में जन्म-जन्मांत तक घुसे रह कर भी सम्भव है मैं अब की तरह कोरे का कोरा ही लौट आऊँ। मां, मैं निरीह और अस्पष्ट कल्पनाओं में ही विचरता हूं, किन्तु तुम स्वस्थ और सृजनात्मक विचारों की जन्मदात्री हो। तुम्हारे विषय में तो सम्भव है, कवि-कुल गुरु कालिदास, भवभूति एवं बाणभट्ट प्रभृति विलक्षण कवि भी इतना ही कह पाए कि मां की परिभाषा केवल मां है। इस शब्द को निर्मित करते समय न जाने किसी भाषा शास्त्री ने कितने सहस्र वर्ष पर्यन्त गम्भीरता पूर्वक मनन किया होगा। फिर मैं उस मां के हृदय की गहराइयों तक पहुँचने में कैसे समर्थ हो सकता हूं ?"

मां ने हास्यपूर्ण मुद्रा बना कर कहा—"वाह रे कवि ! लगे मुझे भी अपने शब्द-जाल में भुलावे देने। मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं की है जिस के लिए तुम ने पूरी की पूरी एक कविता कह दी। अन्त में अपना रंग दिखा जाते हो न। सुनो बेटा ! मैं अपने आशय को स्वयं ही स्पष्ट कर दूं। तुम देख रहे हो मेरे स्वास्थ को, किसी प्रकार घिस्ट-घिस्ट कर कुछ थोड़ा बहुत कार्य कर पाती हूं। इस लिए कई

दिन से यह विचार कर रही हूं कि प्रवेश या तुम्हारा विवाह करके अपनी सहायिका पा सकूं । इस विषय में जननायक से भी मेरी पर्याप्त बात चीत हुई है । उन्होंने भी समस्त उत्तरदात्त्व तुम्हारे ऊपर ही फैंका है ।"

शशांक ने अकस्मात् के इस प्रश्न का एकाएक कोई ठीक ठीक उत्तर न दे सकने पर कहा—

"सभी तो तुम्हारे आदेशानुसार चलते हैं मां ! जितनी भी कार्य-कत्रियां यहां हैं सभी तुम्हें मां कह कर पुकारती हैं, फिर तुम्हें यह अभाव इस समय क्यों अखरा ?"

मां की आँखों में अश्रु भर आए । प्रयत्न करके भी उसके कंठ से कोई बात न निकल पाई; फिर भी उसने बल पूर्वक अपनी अनुभूतियों पर अधिकार प्राप्त करके कहा--

"यह मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ शशांक ! यहां के सभी लोग मुझे मां कह कर पुकारते हैं, और मैं भी उन्हें अपने बच्चे समझती हूं । फिर भी स्त्री हूं न; मेरी दुर्बलता समझो । मेरे मन में यह बात सदैव ही खटकती है कि तुम और प्रवेश इतने बड़े बड़े हो कर भी बालक के बालक हो । अर्धाङ्गिनी के बिना मनुष्य कितना ही बड़ा हो जाए, बालक ही तो रहता है । फिर मां अपने बच्चों को बाल्यावस्था में ही छोड़ कर इस लोक से विदा होते हुए दु खी क्यों न होगी ? प्रवेश को भी मैं आज अवश्य यह बात कहूंगी । फिर सुन लो, अब मैं तुम्हें बालक नहीं, पुरुष देखना चाहती हूं ।"

शशांक ने कहा--"पर माँ । ऐसे समय में किस के पास अवकाश है जो हमारी असमय की वीणा सुनेगा ? लोगों को तो अपने और अपने परिवारों की चिन्ता है; पर तुम्हें पुत्र-वधुओं की चिन्ता हो रही है । मेरी प्रार्थना मानो, तो इस संघर्ष के निर्णय तक उक्त प्रस्ताव को स्थगित कर दो ।"

मां ने नकारात्मक सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं, यह नहीं हो सकेगा। कौन जाने भावी संघर्ष के अन्त तक मैं जीवित भी रह सकूं अथवा नहीं; और फिर ऐसी मारकाट में किसी का भी तो······।"

शशांक ने सांत्वना देते हुए कहा—'ऐसी दुश्चिन्ता न करो मां! हम सत्य और न्याय की रक्षा के लिए लड़ेंगे, और निष्कपट विचारों के आधार पर की हुई लड़ाई कभी निष्फल नहीं जाती। तुम अपने जीवन के विषय में भी कभी निराश न होना। एक दुराचारी और कुटिल शत्रु के पंजे से तुम्हारे अगणित बच्चों को छुड़ा कर तुम्हारी चरण-धूलि माथे पर लगाने आएंगे, और तुम आनन्द-विह्वल अश्रुंओं से हमारे क्लान्त मुखों का अभिषेक करोगी।"

मां ने दुर्ग की छत में अपने नेत्र गाड़ लिए और दीर्घ निश्वास त्याग कर कहने लगी—"तुमने दीर्घ अवधि मांगी है। तुम जानते हो कि मैंने कभी भी तुम्हारी कोई मांग अस्वीकार नहीं की। इस बार भी तुम्हारे प्रस्ताव को अस्वीकृत करके ये तुम्हें तुम्हारे कर्त्तव्य से डिगाने का प्रयत्न न करूंगी।"

इन शब्दों के साथ ही उसका कण्ठ भर आया। लोचनों से अविरल धार बह चली और वह भावातिरेक से अकुला कर चौकी पर चित्त पड़ गई, एवं नेत्र बन्द कर लिए। अब की तो शशांक भी इतना द्रवित हो गया कि वह अपने अश्रुओं पर अनुशासन न रख सका। उसने मां के चरणों को अपने हाथों में लेकर उन पर गाल रख दिए और कहने लगा—"मां! यह ऐसी भावनाओं में आत्मविस्मृत होने का समय नहीं, प्रत्युत हंसते-हंसते अपनी अनुभूतियों और वेदनाओं की होली दहकाने का समय है। उठो, इन अश्रुओं को रोको। यह पुनीत जल सम्भव है किसी अन्य दुखियों की दाह बुझाने के काम आ सके। इसे अपने हृदय में ही संचित किए रहो। मुक्ति-प्रदेश की मां के नेत्रों में इस समय अश्रूओं का क्या काम? उसकी आंखों में तो

शत्रु-शिविरों को भस्म कर देने वाले स्फुलिङ्ग देखने की लालसा है। अपने लाल लाल नेत्रों से हमारी ओर देखो, और प्रतिक्षण प्रतिपल हमारे हृदय में मुक्ति-प्रदेश के लिए अपने प्राणों का यज्ञ रचाने का उत्साह संचारित करो। उठो मां। मुक्ति-प्रदेश का दूत, तुच्छ कवि शशांक तुम्हारे सम्मुख प्रार्थना करता है नेत्र खोल दो! दो ही तीन दिवस में भयानक संग्राम छिड़ेगा। इतिहास अपना पुराना अतीत पुन: देखेगा। समझ लो यह राम और रावण का युद्ध है। मानवता को स्वार्थी और नृशंस सामन्तों की कैद से मुक्त कराना है। उठो, अपने हाथों से अपने बालकों का शृंगार करो। उनके माथे पर विजय का टीका लगा कर उन्हें मुक्ति-प्रदेश के कल्याण का वरदान दो।'

शशांक के ओजपूर्ण शब्दों ने मां के क्लान्त और थकित हृदय में उथल-पुथल मचा दी। कुछ क्षण पूर्व की वेदनामयी मूर्त्ति प्रचण्ड दुर्गा बन गई। कवि के शब्दों ने जैसे उस मां के हृदय से निरीह मातृत्व को धो सा दिया। मां ने दशों दिशाओं में आंखें फाड़ कर देखा। उसका मुख सतेज हो उठा था। उसने शशांक को अपने सीने से चिपकाया और कहा--"ऐसा ही होगा कवि! मैं क्षणिक दुर्बलता के वश में हो गई थी। इसका मुझे प्रायश्चित करना होगा। तुम्हारा कहना ठीक है। वास्तव में जो मुझे मां कहता है वही मेरा प्रवेश है और वही मेरा शशांक। सभी मेरे बच्चे हैं और सभी की मैं मां हूं। मुझे सभी की रक्षा अभीष्ट है। मैं जीवित रहूंगी अभी, और तब तक जीवित रहूंगी जब तक मैं अपने सभी बच्चों को पूर्ण सुखी और सन्तुष्ट न देख लूंगी।"

शशांक ने पुन: झुक कर प्रणाम किया और कहा--"मैं अंजना के पास जा रहा हूं मां। उसका संदेश मिला है कि नैनीताल में जहां वह आनन्द निवास में इस समय रहती है, वहां के धनाढ्य व्यापारियों और ज़मींदारों ने सम्बद्ध होकर मुक्ति-प्रदेश के विरुद्ध षड्यंत्र रचना आरम्भ

किया है। मैं एक दो दिन में ही लौट आऊँगा। बापू से कहना कि इन दो ही तीन दिनों में अपनी गृह-व्यवस्था की प्रवेश की सहायता से पूर्ण रूप में अनुकूल कर डालें।"

मां ने कहा—"कार्य निबट जाए तो अंजना को साथ लेते आना। ऐसी परिस्थिति में उसका यहां होना हमारे लिए अधिक लाभप्रद होगा।"

शशांक अभी दस पग ही द्वार की ओर बढ़ा होगा, तो उसे केसरी सामने खड़ा दिखाई दिया। बिना प्रश्न किए ही केसरी ने कहा—

'शशांक भैया! अभी आपके नैनीताल पहुँचने की आवश्यकता नहीं है। अंजना जी ने कहा है कि वहां का सारा कार्य वह स्वयं निबटा लेंगी। आप मां को छोड़कर और कहीं न जाएं।"

शशांक ने प्रश्न किया—'परन्तु वहां की स्थिति क्या है?"

उसने उत्तर दिया—"वहां पर हमें बहुत बड़ी सहायता प्राप्त हो चुकी है। महाराज अजयसिंह ने लगभग पांच हज़ार साधुओं को सैन्य-शिक्षा देकर हमारी सहायता के लिए वहां भेज दिया है।"

अब तक मां निकट आ चुकी थी। उसने केसरी के अभिवादन का संकेत में ही उत्तर देते हुए कहा—"तो ठीक है। अब तुम्हारे वहां जाने की आवश्यकता नहीं। तुम इसी समय पहले प्रवेश से मिलो, फिर यदि उचित समझो तो उसी से अजयसिंह का ठिकाना पूछ कर उससे मिलो। और वहां की सूचनाएं एकत्रित करके जननायक को उनकी पर्णकुटी में परसों दस बजे से पूर्व ही सूचित कर दो।"

शशांक अभिवादन करके तुरन्त वहां से चला गया, तो मां ने आदेश दिया—

"केसरी! तुम सीधे भागवत के पास पहुँचो। और दक्षिणी-पूर्वीय सीमाओं के समाचार प्रवेश को पहुँचा कर परसों दस बजे प्रातः से पूर्व जननायक से भेंट करते हुए मुझे मिलो।"

केसरी ने मां की आज्ञा को शीश नवाकर स्वीकार करते हुए अंजना का एक पत्र मां के हाथ में दे दिया। और प्रार्थना की—

"मां, इसका उत्तर शीघ्रातिशीघ्र किसी के हाथों अंजना जी तक पहुँचा दीजिएगा।"

मां ने पत्र खोलकर चुपचाप पढ़ना आरम्भ कर दिया। अंजना ने लिखा था—

"मां,

सप्रेम वन्दे।

कुछ दिन हुए कविवर द्वारा आपका सन्देश प्राप्त हुआ था। आप ऐसी अस्वस्थता में भी अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ हैं, यह जानकर उत्साह से मेरी छाती फूल उठी है। अवसर का विचार करते हुए मैं किसी भी प्रकार तुम्हारे दर्शन नहीं कर सकती। सेठ राधालाल के नौकरी की बात-चीत चल रही है। नितान्त अर्थ-पिशाच व्यक्ति है। करोड़ों रुपयों का सोना एकत्रित कर रखा है उसने। उसी की योजनानुसार ज़िला अधिकारी के निरीक्षण में एक वृहत कार्य-क्रम बनाया जा रहा है। अ, क, छ तथा ज आदि विस्फोटक द्रव्य एवं विशाक्त गैसें उसके भवन में और उससे थोड़े ही अन्तर पर एक गुप्त गुफ़ा में संग्रहित की जा रही हैं। हमारे कार्य-कर्त्ताओं ने उनके दो तीन बड़े कारखाने भी उड़ा दिए हैं। मैं भी चार-पांच दिन में ही ज़िला अधिकारी से भेंट करूंगी। तदनन्तर यदि कार्य सम्पूर्ण हो गया तो आपके पास तुरन्त आ जाऊंगी।

बापू को नमस्कार।

तुम्हारी पुत्री,

अंजना।"

पत्र समाप्त होते ही मां ने कहा—"केसरी! तुम जाओ और शीघ्र ही अपना कार्य करके लौटो। मैं इनका उत्तर भिजवा दूंगी।"

केसरी वहां से चला गया, और मां वहीं पर खड़ी कुछ देर सोचती रही। तब उसने रसायनशाला में जाकर कुछ और द्रव्य तथा पदार्थ देखे। फिर मुख्य वैज्ञानिक से धीमे स्वर से वार्तालाप किया; तदनन्तर एकदम स्वस्थ होकर यन्त्र गृह में नव-निर्मित यन्त्रों का निरीक्षण किया। वहां से निकल कर वह सभी कार्य-कर्त्ताओं से भेंट करती हुई त्वरित गति से जननायक के कमरे की ओर चल दी। इस समय सचमुच ही ऐसा जान पड़ता था कि न तो वह रोगिणी है, न वृद्धा; प्रत्युत वह एक ऐसी स्वस्थ एवं दृढ़ मानवी है जो थकना और हारना नहीं जानती। उसने जननायक के कमरे में घुसते ही अभिवादन करते हुए कहा—

"जननायक! यह रहा अंजना का पत्र। आपको नमस्कार लिखा है।"

जननायक ने पत्र पढ़कर चौकी पर रखते हुए कहा—"देवी! इसे पुत्री कहते हुए अतिशय गौरव का अनुभव होता है। न जाने किस नक्षत्र में इसने जन्म लिया होगा?"

मां ने कहा—'तभी तो उसे मुक्ति-प्रदेश के वासी अधिष्ठात्री कहा करते हैं। न जाने उस दुबली-पतली इकहरी काया में इतनी बलवती आत्मा कसे टिकी हुई है। उसकी दो आंखें जैसे दो प्रचंड सूर्यों की भांति चमकती हैं। कोई दो क्षण भी तो उसके सामने नहीं टिक पाता।"

जननायक ने कहा—"उसके नेत्रों में सूर्य की प्रचण्डता ही नहीं, चन्द्रमा की शीतल और सुधामयी आत्मा भी निहित है। तभी तो वह दो ही क्षण में किसी को भी अपने वश में कर लेती है। हां, वह शत्रु के लिए चण्डी का रूप अवश्य है। जितनी कोमल, उतनी ही प्रचण्ड।"

मां ने मुस्कराते हुए कहा—"आपको तो वह बापू कहती है न?"

जननायक ने कहा—"और तुम्हें मां, क्यों ?"

इस पर दोनों हंस दिये। हंसते हंसते बापू को एक बात सूझी, पूछने लगे—"प्रवेश कब पहुँचेगा ?"

मां ने सोचते हुए कहा—"अभी एक घण्टे के पश्चात् या रात्रि के प्रथम प्रहर में।"

बापू ने प्रश्न किया—"शशांक ने विवाह के विषय में क्या कहा ?"

मां ने उत्तर दिया—"यह शशांक भी कोई असाधारण मानव है। न जाने किस धातु का बना है ? कर्त्तव्य और कर्मठता का सजीव उदाहरण है। वह जनता को पूर्ण रूप में सुखी व समृद्धिशील देखकर ही इस प्रस्ताव पर विचार करने को कह गया है।"

बापू ने गम्भीरतापूर्वक कहा—

"ऐसे दृढ़ संकल्पी और कर्त्तव्य-निष्ठ सन्तानों के आश्रय पर ही तो देश के बड़े-बूढ़े समस्त उत्तरदायित्व छोड़ कर निश्चिन्त हो जाया करते हैं। क्या प्रवेश, क्या शशांक और क्या अंजना; इनके अतिरिक्त अजयसिंह को भी भावी इतिहास भूल न पाएगा। इतना बड़ा शासक विलासमय जीवन त्याग कर किस प्रकार जनता के सुख के लिए प्राणों की बाज़ी लगाए बैठा है। वाह रे नर-पुङ्गव ! तेरे व्यक्तित्त्व के सम्मुख भी झुके बिना नहीं रहा जाता।"

अभी वह और भी कुछ कहता, परन्तु मां का सिर घूमने लगा। वह दो ही क्षण में शिथिल सी हो कर पास पड़ी खाट पर लेट गई। जननायक ने उसके मुंह पर पानी छिड़कते हुए एक तरल पदार्थ उसके मुंह में डाल दिया और व्यजन डुलाने लगे। निरन्तर कुछ क्षण इसी प्रकार उपचार होने पर मां ने नेत्र खोल दिए। जननायक ने मृदुल स्वर में पूछा—

"अब तबियत कैसी है, क्या मन घबरा रहा है ?"

मां ने सचेत हो कर तुरन्त सम्भलते हुए कहा—"नहीं, मैं ठीक हूं। अच्छा, अब मैं चलूंगी।"

वह उठ कर चल दी तो जननायक ने कहा—"क्या कमरे तक पहुँचा दूं ?"

मां ने द्वार से बाहर पग धरते हुए कहा—"नहीं, अब मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हूं। यूं ही ज़रा झपकी सी आ गई थी।"

बापू ने पुनः कहा—"चिकित्सक को भिजवाए देता हूं। वह कह रहा था कि एक बहुत ही श्रेष्ठ औषधि तैयार की है।"

मां ने आशापूर्ण स्वर में कहा—"नहीं जननायक! मुझे किसी भी औषधि की आवश्यकता नहीं। शशांक ने एक ऐसी औषधि पिला दी है कि देखना, मैं दो ही दिनों में पहले से भी अधिक स्वस्थ दिखूंगी।"

और वह तीव्र गति से चली गई। बापू ने उसके चले जाने पर उसे झुक कर प्रणाम करते हुए कहा—"देवी, तुम कितनी महान् हो। आत्म-प्रशंसा का भार किसी और पर फैंक कर तुम्हें कितना सुख प्राप्त होता है। क्या शशांक, क्या प्रवेश और क्या अंजना; सभी तो तुम्हारे ही स्वर में गा रहे हैं। यह बात विलग है कि कभी कभी शिष्य भी अपने गुरु को उसी के सीखे हुए पाठ से प्रबुद्ध कर देता है। अस्तु, समय इस बात का निर्णय कर देगा कि कौन यश का भागी है। अभी तो कार्य करने का समय है। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि कल तक जो मातृ भावना तुम्हारा हृदय चीरती जा रही थी वह थोड़ा सा ही आघात पाकर विलुप्त हो गई। धन्य हो तुम!"

इसी प्रकार सोचते हुए वह कुछ क्षण विश्राम करने के लिए लेट गए।

जननायक से विदा होकर मां ने कुछ पत्र लिखे। और एक कार्य-कर्त्ता को देते हुए कहा—"रङ्गराव! यह एक पत्र अजयसिंह को देकर

इसका लिखित उत्तर कल प्रात:काल से पूर्व ही मुझे लाकर दो। पत्र अत्यधिक गुप्त और अनिवार्य है। अत: यथा-सम्भव तुम्हारे वहां पहुँचने का समाचार किसी को भी नहीं मिलना चाहिए।"

रङ्गराव के पत्र लेकर जाने के पश्चात् उसने दो अन्य विश्वस्त व्यक्तियों को बुलवाकर भी एक एक पत्र देकर उनके कानों में धीमे स्वर में कुछ कहा और उन्हें भी विदा करके वह अपने गुप्त मन्त्रणालय में कुछ महिला कार्य-कर्त्रियों के साथ किसी आवश्यक विषय पर विचार-विनियम करने में व्यस्त हो गई।

२२

अंजना और रमा को अपनी सखी शीला के नैनीताल स्थित आनन्द-निवास नामक भवन में पहुँचे चार दिन व्यतीत हो गए। इस समय में कोई विशेष कथनीय घटना न घटी। केवल सेठ राधालाल के यहां अंजना की नौकरी के लिए बात-चीत ज़रूर छिड़ी और सेठ राधालाल भी अंजना जैसी सुमुखी को अपने यहां रखने का सुअवसर नहीं खोना चाहता था। क्योंकि अंजना का मुंह ढका रहने पर भी उसने उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से सौंदर्य का अनुमान लगा लिया था। उसकी इच्छा होने पर भी अंजना किसी विशेष कारण वश उसके यहां नौकरी करने न पहुँच पाई थी। मध्याह्न के पश्चात् वह रमा के साथ बैठी वार्तालाप कर रही थी कि शीला एक युवक को साथ लेकर वहां आ पहुँची और परिचय कराते हुए कहने लगी—

"कमल! यही है अंजना देवी जिसके विषय में मैंने तुम्हें कई बार कहा सुना है और यह है इसकी सखी रमा जी। अंजना! यह हैं मेरे बड़े भैया कमलकान्त जी। प्रयाग विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के मुख्याध्यापक।"

अंजना जो अब तक खड़ी हो चुकी थी, उसने उनका अभिवादन करते हुए कहा—

"पधारिए, मुझे आप से भेंट करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। विद्वानों और मनस्वियों की तो मैं पुजारिन हूं।"

कुछ क्षण के शिष्टाचार के पश्चात् प्रोफ़ैसर कमलकान्त ने प्रश्न किया—"मुक्ति-प्रदेश के आर्थिक विधान के विषय में जो मैं सुनता हूं, क्या सत्य है?"

अंअना ने जिज्ञासापूर्ण स्वर में पूछा—"अर्थात्?"

प्रो० ने भली प्रकार से चौकड़ी जमा कर बैठते हुए कहा—"अर्थात् यही कि मुक्ति-प्रदेश में आपने जो मुद्रा निषेध धारा रखी है, क्या यह उचित है ?"

अंजना ने सरल भाव से कहा—"तो इसमें हानि ही क्या है ? बिना मुद्रा के भी तो देश का कार्य नहीं रुकता। उपज धरती से प्राप्त होती है और उसके लिए हमें किसी भी प्रकार की मुद्रा की क्या आवश्यकता है ? हमारे वहां सभी समान रूप में कार्य करते हैं। कोई किसी के आश्रित नहीं, और यदि हम एक दूसरे के आश्रित हैं, तो केवल इसी रूप में कि अपने परिश्रम द्वारा उपजाई गई वस्तु का आदान-प्रदान करने में।"

कमलकान्त ने प्रश्न किया—"और यदि कोई परिश्रम न कर सके तो ?"

अंजना ने उत्तर दिया—"परिश्रम न कर सकने के दो ही कारण हो सकते हैं—एक तो शारीरिक पंगुता और दूसरा अकर्मण्यता। पहली परिस्थिति में हम सामूहिक रूप में ऐसे व्यक्तियों के सहायक होते हैं। उन्हें द्वार-द्वार पर धक्के खाकर और गलियों में सड़कर भिक्षा नहीं मांगनी पड़ती। इसके अतिरिक्त दूसरी पंक्ति हमारे विधान के अनुसार अपराध है। मुक्ति-प्रदेश किसी भी स्वस्थ और समर्थ व्यक्ति को निठल्ले बिठा कर नहीं खिला सकता। हमारी भूमि हमारे यहां के निवासियों के लिए पर्याप्त सामग्री उत्पन्न कर देती है। फिर हमें किसी के आश्रित होने की आवश्यकता ही क्या है ?"

कमलकान्त ने कहा—"तब तो आपके वहां अर्थशास्त्र भी व्यर्थ की माथापच्ची का विषय है।"

अंजना ने आपत्ति प्रकट करते हुए कहा—"क्यों ? अर्थशास्त्र को तो हम भी मानते हैं। हमारे वहां के विद्यालयों में यह विषय विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है।"

कमलकान्त ने कहा "पर, ऐडम-स्मिथ का तो कहना है कि--

* 'अर्थशास्त्र सम्पत्तिका विज्ञान है।' अर्थात् इसमें केवल धन को महत्व दिया गया है, मनुष्य को नहीं। इसीलिए तो रस्किन, बर्क तथा कार्यालय जैसे विदेशी विद्वानों ने भी इस विषय को सम्भव है, इसीलिए बुरा कहा होगा।"

अंजना ने बात को सुलझाते हुए कहा--

"पर हमारी दृष्टि में तो अर्थशास्त्र का ही दूसरा नाम सामाजिक विद्या है। जहां तक मैंने अध्ययन किया है उसके अनुसार कह सकती हूं कि इस विषय का उद्देश्य केवल धनोपार्जन ही नहीं; प्रत्युत मनुष्य को सन्तुष्ट व समृद्धिशील बनाना है।"

कमलकान्त ने प्रश्न किया—"परन्तु सन्तुष्टि केवल कहने मात्र से ही तो नहीं हो जाती। उसके लिए भी धन की ही आवश्यकता पड़ेगी। बिना पूँजी के तो आप एक पग भी नहीं उठा सकतीं।"

अंजना ने कहा--"परन्तु बिना पूंजी के पग न उठा सकना तो ऐसे ही क्षेत्रों में हुआ करता है, जहां पूँजी की परिभाषा ही सोने-चाँदी के सिक्के हों, अर्थात् किसी नरपति द्वारा चालू किए गए नोट हों। हमारे यहां तो पूँजी ऐसी ही वस्तुओं को कहा जाता है जिनके आदान-प्रदान मात्र से ही हमारा जीवन चल सके। हां हमारी आर्थिक क्रियाओं में आप के यहां से अन्तर अवश्य है। चन्द्रमा और सूर्य की परिधि जाने बिना आपके वैज्ञानिकों के हृदय में कल नहीं पड़ती। इसीलिए आपके साहित्यकारों की दिव्य दृष्टि भी धरती पर ही न रहकर आकाश के कल्पित देवी-देवताओं में जा टिकती है। आपका कवि बादलों को संदेश वाहक बना कर महाकवि कालिदास का संदेश उनकी प्रेमिका तक अलकापुरी में भेज सकता है। परन्तु हमारा कवि इसके विपरीत सोचता

---

* "Economics is the science of wealth"
—Adam Smith.

है। उसकी दृष्टि कल्पित देवी-देवताओं और गगन-बिहारी बादलों में न अटक कर, पृथ्वी का वक्षस्थल चीर कर अन्न और कपास उत्पन्न करने वाले श्रमिकों में जा अटकती है। वह उन्हीं को प्रसन्न करने तथा प्रोत्साहन देने के लिए गाता है।"

कमलकान्त ने कहा—"इससे तो आप अपने मानव को अच्छा खासा कोल्हू का बैल बना देंगी। फिर भी मैं पूछता हूं कि निकटवर्ती चमकीले संसार को देखकर कभी तो उसकी इच्छा की तीव्रता (Intensity of want) सजग हो उठती होगी; तब तो उसे अपने चारों ओर अभाव अवश्य खलता होगा ? फिर तो वह निश्चय ही पुकार उठता होगा कि मुझे अर्थशास्त्र चाहिए और उसकी यथार्थ परिभाषा चाहिए। जैसाकि रूसके एक विद्वान् ने कहा है—"हम श्रम का आदर करते हैं। हमारे जीवन की समस्त वस्तुएं इसी से बन पाती हैं। परन्तु मुद्राओं के बिना हमारा अर्थशास्त्र निकम्मा हो जाता है।"

अंजना ने कहा—"अर्थशास्त्र को कुछ विद्वानों ने उसके वास्तविक स्वरूप से कहीं भिन्न भी तो समझा है। प्रो० रौबिन्स का कहना है कि †'हमारी असीम आवश्यकताओं और सीमित साधनों द्वारा जो समस्याएं उत्पन्न होती हैं, अर्थशास्त्र उन्हीं का अध्ययन है।' मोहरों और मुद्रओं का उद्धरण देते हुए तो प्रो० रौबिन्स ने यह कहा है—‡'अधिकाधिक पूंजी संग्रहित हो जाने पर भी मनुष्य और पूंजी एकत्रित करना चाहता है।' तो आप ही बताइए हम यदि अपने मानव के हृदय

---

† 'Economics is the science that studies human behaviour as a relationship between ends and scarce means which have alternate uses'

—Robbins: The nature and significance of economic science; P. I.

‡ 'The more one possesses, the more one desires.'
Prof. Robbins

में समस्त संसार की पूंजी एकत्रित करने की लालसा उत्पन्न करके उसे अर्थपिशाच और असन्तुष्ट न बनाकर सन्तुष्ट सरल प्रकृति का प्राणी बना दें तो क्या बुरा होगा ? क्या इससे वह अधिक स्नेहशील न हो जायगा ?''

कमलकान्त ने अंजना की इस युक्ति को काटने में असमर्थता प्रकट करते हुए उत्तर दिया—''अपना अपना विचार है। मैं तो यह समझता हूं कि ऐसी सन्तुष्टि को जन्म न देकर यदि हम उस असन्तोष को मानव के हृदय में सजग रखें, तो क्या वह भी अधिकाधिक परिश्रम करके धनाढ्यों की भांति समृद्धि-शील न हो जाएगा ?''

अंजना ने उत्तर दिया—''प्रोफ़ैसर साहब, आप भी कैसी बातें करते हैं ? पूंजी तो वास्तव में सीमित है। विशेष कर राज्य मुद्राएं तो निश्चय ही सीमित हुआ करती हैं। आपके मतानुसार यदि सभी व्यक्ति उस सीमित पूंजी को हथियाने में जुट जाएं तो क्या इस धरती पर पुन: देवासुर संग्राम न हो जाएगा ? दूर क्यों जाते हैं, आज जितना भी संघर्ष चल रहा है क्या यह उस परिमित पूंजी को हथियाने के लिए नहीं हो रहा ? अन्त में मुक्ति-प्रदेश निर्मित करने का हमारा उद्देश्य भी तो यही है; कि हम अपनी पूंजी को मुद्राओं में सीमित न करें। हमारी पूंजी और हमारे हृदय दोनों ही विशाल और अपरिमित बन जाएं। आप अर्थशास्त्र के प्रोफ़ैसर हैं। आपने समस्त विश्व का आर्थिक अध्ययन भी पुस्तकों द्वारा किया है और पल-पल पर उठने वाले उपद्रवों और युद्धों से भी अपरिचित नही हैं; फिर भी यह सोचने का कभी कष्ट नहीं करते कि इस द्वन्द और रक्तपात का मूल कारण क्या है ? यदि सृष्टि के समस्त मानव इकट्ठे बैठ कर ऐसी व्यवस्था का निर्माण कर डालें कि सब के अधिकार में समानता हो जाए, तो कोई किसी से क्यों लड़ेगा ? स्वमेव शान्ति समस्या का समाधान हो जाएगा।''

कमलकान्त ने एक प्रश्न किया—"तब तो फिर हमें नए नए आविष्कारों की भी आवश्यकता न पड़ेगी ?"

अंजना ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—"जिन आविष्कारों को हम दूसरे मानवों की हत्या करने में प्रयुक्त करते हैं, उनकी तो ऐसी व्यवस्था में आवश्यकता ही नहीं पड़ने की। वह ऐटम बम, मशीन-गनें, अग्नि वर्षा करने वाले विमान, भारी-भारी टैंक व तोपें इत्यादि का महत्व ही क्या रह जाएगा ? हमारी सृजन-शक्ति इन विध्वंसक पदार्थों में नष्ट न हो कर निर्माणकारी पदार्थों के लिए उपयोग हो सकती है। हम अणु शक्ति से ऐटम बम न बना कर अनेकों ऐसे भी तो आविष्कार कर सकते हैं जिससे कि मानव सुखी और समृद्धिशील बन सके। फिर इसमें आपके अर्थशास्त्र की परिभाषा भी की जाएगी।"

अब की कलमकान्त के पास अंजना की इस अकाट्य युक्ति का कोई उत्तर न रहा। उसने जैसे हार मानते हुए कहा—"अंजना जी ! निःसंदेह आपकी प्रतिभा और सूझ का उदाहरण नहीं मिलता। जान पड़ता है आपने ग्रामीणों को सहवास में भी अपना अध्ययन और मनन नहीं छोड़ा। निःसंदेह आपकी युक्तियों के सम्मुख मैं नतशिर होता हूं। आपके विस्तृत ज्ञान ने मुझे आपके समक्ष आत्मसमर्पण करने की प्रेरणा दे दी है। मैं कई बार इस विषय पर बड़े बड़े विद्वान अर्थशास्त्रियों से वाद विवाद तक कर चुका हूं पर, किसी की बुद्धि यहां तक नहीं पहुँची आपने सृष्टि पर शान्ति स्थापित करने का जो साधन ढूंढ निकाला है वह वास्तव में सर्वोत्कृष्ट है। अच्छा अब यह कहिए कि आपकी योजना में मैं क्या सहायता कर सकता हूं ? आप मुझे अपना शिष्य या विश्वस्त कार्य-कर्ता ही समझ लीजिए। यह तो मेरे मस्तिष्क में कुछ उलझनें थीं जिन्हें सुलझाने के लिए मैंने आपका समय नष्ट किया।"

अभी अंजना कोई उत्तर भी न दे पाई थी कि शीला ने आकर कहा "अंजना ! मैं तुम्हारे लिए एक शुभ समाचार लाई हूं।"

अंजना ने किंचित् चौंकते हुए कहा—"क्या ?"

शीला ने उसके कान में आकर चुपके से कहा, तो उसने अपने स्थान पर से उठते हुए कहा, "कहां पर बैठे हैं ?"

शीला ने दबे स्वर में ही कहा—"ऊपर की बैठक में। जाओ, मैं यहीं भैया के पास ठहरती हूं।"

उसके जाते ही शीला ने कमलकान्त से प्रश्न किया—"क्यों भैया जी ! खूब बातचीत हुई न अंजना जी से ?"

कमलकान्त ने प्रभावित स्वर में उत्तर दिया—"शीला ! मैंने जीवन में कितने ही मनुष्य और कितनी ही स्त्रियां देखी होंगी, परन्तु अंजना जी में वाद-विवाद में अकाट्य से अकाट्य युक्तियां देते हुए भी मैंने किसी प्रकार की शुष्कता और घबराहट नहीं पाई। जाने कितना पढ़ा है इन्होंने इस छोटी आयु में। अपनी धारणाओं के अतिरिक्त विदेशी विद्वानों की भी अकाट्य युक्तियों का इनके पास अभाव नहीं।"

शीला ने कहा—"अभी तो इसे ऐसी ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, जब कि मृत्यु और जीवन दोनों की होड़ सी लग गई थी। कितने ही वर्षों तक तो इन्हें पर्वत और बीहड़ बनों में रहना पड़ा और फिर वहां रहकर भी इनसे निठल्ले न बैठा गया। सच पूछो, तो गणतन्त्र की भावना को साकार और फलीभूत बनाने का प्रयत्न तो इन्होंने अपने उसी वनवास के समय में ही आरम्भ कर दिया थ। मुक्ति प्रदेश की रूप रेखा इन्होंने जननायक के साथ मिल कर वहीं तैयार की होगी। निरक्षर क्षेत्रों में इतने बड़े बड़े विद्यालय और अन्वेषण गृह स्थापित कर देना भी इन्हीं का ही काम था न। वहां के निवासियों ने पग-पग पर इनका विरोध किया, यहां तक कि कई बार तो उन मूर्ख ग्रामीणों ने इन्हें समाप्त कर देने तक की सोच ली।"

इस पर कमलकान्त ने समर्थन करते हुए कहा—"पर ऐसी महान् आत्माओं को असफल करना या उन्हें समाप्त करना भी तो

कोई अर्थ रखता है। मैं भौतिकवादी होकर भी इस बात को कभी अस्वीकार न करूंगा, कि आत्म-शक्ति के सम्मुख भौतिक शक्ति की कोई गणना ही नहीं।"

शीला ने हंसते हुए कहा—"तो भैया जी! पहली ही भेंट में दीक्षा लेने को तत्पर हो उठे। परन्तु यह कहे देती हूं कि इनका समर्थक बनने में तो कोई कठिनाई नहीं, परन्तु इनका शिष्य बनकर जो कठिनाइयां और असुविधाएं तुम्हारे आड़े आएंगी, उनका विचार कर लेना। हां, यदि दो दिन और दो रातें भी आप इनका साथ दे पाएं, तो मैं आपको मान जाऊंगी। यह जान छोड़िएगा, कि जिस प्रकार उन्होंने शिवालक के राजमहल को भुला दिया है, उसी प्रकार आपको भी आनन्द-निवास का वैभव भूल जाना होगा। क्या कर सकेंगे आप ऐसा?"

कमल कान्त ने साहस करते हुए कहा—

"अवश्य कर सकूंगा शीला! मैं तो ऐसे अवसर का प्रतीक्षक था। और तुम तो जानती हो कि मैं इनके गणतन्त्र का प्रारम्भ से ही समर्थक हूं। मैं आज ही इनसे आज्ञा प्राप्त करके कालिज को त्याग-पत्र भेज दूंगा फिर तो तुम्हें विश्वास हो जाएगा न?"

शीला के नेत्रों में स्नेह के अश्रु उमड़ आए। उसने गद्‌गद् स्वर में कहा—"भैया जी, मैंने आप पर अविश्वास भी तो कब किया है? मैं आपकी यह बातें सुनकर एक अलौकिक आनन्द का अनुभव कर रही हूं।"

कमलकान्त ने कहा—"तो तुम्हारी भी तो अनुमति है न? मैं उन से दीक्षा ग्रहण कर लूं क्या?"

शीला ने भाई की बलैया लेते हुए कहा—"पर अकेले नहीं, मुझे भी अपने साथ रखना होगा।"

कमलकान्त ने कहा—"तुम तो पहले से ही उनके भीतर घुसी हुई हो।"

शीला ने उत्तर दिया—"अब तक मैं केवल उनकी सखी थी। भविष्य में उनकी शिष्या बनकर उनकी आज्ञा से एक विश्वस्त कार्य-कर्त्री के रूप में कार्य करने की साध है।"

इतने में अंजना वापिस आ गई। शीला ने पूछा—"कहिए, हो आईं क्या ?"

अंजना ने संकेत में ही उत्तर दे दिया और रमा को सम्बोधित करते हुए कहा—"आओ, रमा बहिन ! कुछ समय के लिए बाहर चलेंगे। वस्त्र बदल लो।"

रमा के उठकर निकट आते ही अंजना उसे साथ लेकर ऊपर एक कोठरी में जा पहुंची। रमा ने प्रश्न किया—"कौन आया था, क्या मैं जान सकती हूं ?"

अंजना ने सरल भाव से कहा—"हां-हां, नहीं; प्रवेश जी थे। वह बता गए हैं कि यहां से लगभग चार मील के अन्तर पर जिला अधिकारी ने एक छावनी बनवानी आरम्भ कर दी है। जननायक के आदेशानुसार हमें किसी साधारण पर, विश्वस्त व्यक्ति को वहां भेज कर उनका ठीक ठीक समाचार प्राप्त करना चाहिए। कल प्रातःकाल भागवत यहाँ पहुंचेगा। मेरे विचार में उसे ही क्यों न वहां भेज दिया जाए ?"

रमा ने आपत्ति की—"नहीं अंजना जी ! भागवात को तो वह लोग देखते ही पहचान लेंगे। मेरे विचार में आप वहां प्रो० कमलकान्त जी को क्यों नहीं भेजतीं ?"

अंजना ने सोचते हुए कहा—"भेज तो दें, पर वह क्या इस जलती आग में कूदना पसन्द करेंगे ? काम ज़रा जोखम का है। थोड़ा सा भी सन्देह होने पर प्राण जाने की सम्भावना हो सकती है। क्या वह सचमुच मुझसे इतना प्रभावित हो गए कि इतना बड़ा संकट वह अपने ऊपर लेने को उद्यत हो जाएंगे ?"

कोई अर्थ रखता है। मैं भौतिकवादी होकर भी इस बात को कभी अस्वीकार न करूंगा, कि आत्म-शक्ति के सम्मुख भौतिक शक्ति की कोई गणना ही नहीं।"

शीला ने हंसते हुए कहा—"तो भैया जी! पहली ही भेंट में दीक्षा लेने को तत्पर हो उठे। परन्तु यह कहे देती हूं कि इनका समर्थक बनने में तो कोई कठिनाई नहीं, परन्तु इनका शिष्य बनकर जो कठिनाइयां और असुविधाएं तुम्हारे आड़े आएंगी, उनका विचार कर लेना। हां, यदि दो दिन और दो रातें भी आप इनका साथ दे पाएं, तो मैं आपको मान जाऊंगी। यह जान छोड़िएगा, कि जिस प्रकार उन्होंने शिवालक के राजमहल को भुला दिया है, उसी प्रकार आपको भी आनन्द-निवास का वैभव भूल जाना होगा। क्या कर सकेंगे आप ऐसा?"

कमल कान्त ने साहस करते हुए कहा—

"अवश्य कर सकूंगा शीला! मैं तो ऐसे अवसर का प्रतीक्षक था। और तुम तो जानती हो कि मैं इनके गणतन्त्र का प्रारम्भ से ही समर्थक हूं। मैं आज ही इनसे आज्ञा प्राप्त करके कालिज को त्याग-पत्र भेज दूंगा फिर तो तुम्हें विश्वास हो जाएगा न?"

शीला के नेत्रों में स्नेह के अश्रु उमड़ आए। उसने गद्‌गद् स्वर में कहा—"भैया जी, मैंने आप पर अविश्वास भी तो कब किया है? मैं आपकी यह बातें सुनकर एक अलौकिक आनन्द का अनुभव कर रही हूं।"

कमलकान्त ने कहा—"तो तुम्हारी भी तो अनुमति है न? मैं उन से दीक्षा ग्रहण कर लूं क्या?"

शीला ने भाई की बलैया लेते हुए कहा—"पर अकेले नहीं, मुझे भी अपने साथ रखना होगा।"

कमलकान्त ने कहा—"तुम तो पहले से ही उनके भीतर घूसी हुई हो।"

शीला ने उत्तर दिया—"अब तक मैं केवल उनकी सखी थी। भविष्य में उनकी शिष्या बनकर उनकी आज्ञा से एक विश्वस्त कार्य-कर्त्री के रूप में कार्य करने की साध है।"

इतने में अंजना वापिस आ गई। शीला ने पूछा—"कहिए, हो आई क्या ?"

अंजना ने संकेत में ही उत्तर दे दिया और रमा को सम्बोधित करते हुए कहा—"आओ, रमा बहिन ! कुछ समय के लिए बाहर चलेंगे। वस्त्र बदल लो।"

रमा के उठकर निकट आते ही अंजना उसे साथ लेकर ऊपर एक कोठरी में जा पहुंची। रमा ने प्रश्न किया—"कौन आया था, क्या मैं जान सकती हूं ?"

अंजना ने सरल भाव से कहा—"हां-हां, नहीं; प्रवेश जी थे। वह बता गए हैं कि यहां से लगभग चार मील के अन्तर पर ज़िला अधिकारी ने एक छावनी बनवानी आरम्भ कर दी है। जननायक के आदेशानुसार हमें किसी साधारण पर, विश्वस्त व्यक्ति को वहां भेज कर उनका ठीक ठीक समाचार प्राप्त करना चाहिए। कल प्रातःकाल भागवत यहाँ पहुंचेगा। मेरे विचार में उसे ही क्यों न वहां भेज दिया जाए ?"

रमा ने आपत्ति की—"नहीं अंजना जी ! भागवात को तो वह लोग देखते ही पहचान लेंगे। मेरे विचार में आप वहां प्रो० कमलकान्त जी को क्यों नहीं भेजतीं ?"

अंजना ने सोचते हुए कहा—"भेज तो दें, पर वह क्या इस जलती आग में कूदना पसन्द करेंगे ? काम ज़रा जोखम का है। थोड़ा सा भी सन्देह होने पर प्राण जाने की सम्भावना हो सकती है। क्या वह सचमुच मुझसे इतना प्रभावित हो गए कि इतना बड़ा संकट वह अपने ऊपर लेने को उद्यत हो जाएंगे ?"

रमा ने आशाजनक स्वर में उत्तर दिया—"क्यों नहीं ! वह तो आपके संकेत मात्र पर प्राण तक न्यौछावर करने को तैयार हैं। आपकी युक्तियों ने उन्हें इतना प्रभावित कर दिया है कि वह आपसे दीक्षा ग्रहण करने को कटिबद्ध हुए बैठे हैं।"

अंजना ने पुनः प्रश्न किया—"पर, शीला तो हमारे इस प्रस्ताव का विरोध ही करेगी।"

रमा ने कहा—"इससे भी आप निश्चिन्त रहें। वे दोनों भाई बहिन ही आपके शिष्य होने के लिए लालायित हो रहे हैं। आपके कहने भर का विलम्ब है। कहें तो बुलाऊँ दोनों को ?"

अंजना ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया—"अभी रहने दो। सम्भव है नीरू और हरिया आज आ पहुंचें। अभी चलो, शीला और प्रोफैसर साहब से ही कुछ बात-चीत करेंगे। सूर्य अस्त होने से पूर्व ही हम इस बात का निर्णय कर लेंगे।"

दोनों वहां से शीला और कमलकान्त के पास आ बैठीं। कमलकान्त ने उठते हुए कहा—"अंजना जी ! मुझे तो आध घण्टे का अवकाश प्रदान कीजिए।" और वह वहां से उठ कर चला गया। उसके बाहर निकलते ही आनन्द निवास के द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि नीरू नाम का एक व्यक्ति फूला देवी और रधिया रानी से मिलना चाहता है।

शीला ने सत्तापूर्ण स्वर में कहा—"जाओ, उसे भेज दो।"

दो ही क्षण के पश्चात् नीरू उसके सम्मुख उपस्थित था। अंजना ने उसके अभिवादन का उत्तर देते हुए पूछा—"नीरू ! हरिया नहीं आया क्या ?"

नीरू ने पहले शीला की ओर देखा, परन्तु रमा का संकेत पाकर वह निःशंक भाव से कहने लगा—"मैं उसे शहर से बाहर एक जगह छोड़ आया हूं। अवसर पड़ने पर वह स्वमेव उपस्थित हो जाएगा।

अब हमारे लिये क्या आज्ञा है।"

अंजना ने उत्तर दिया– "नीरू! कल प्रातःकाल मैं राधालाल सेठ के काम करूंगी। रमा यहीं रहेगी। तुम परसों मध्याह्न के पश्चात् एक ग्रामीण के वेश में मेरे भाई बनकर वहां आ जाना; मैं तुम्हें भी सेठ के यहां नौकर करवा दूंगी।"

रमा ने कहा—"यदि सेठ ने नौकरी देने से इन्कार कर दिया तो?"

अंजना ने विश्वासपूर्ण स्वर में कहा—"यह नहीं होने का। मेरे एक बार वहां पहुँचने की देर है। राधालाल का मस्तिष्क मेरी ही इच्छा पर चलेगा। तुम निःशंक होकर वहां पहुँचना भैया। आगे जो होगा, मैं सम्भाल लूंगी और भविष्य में भी जो करना होगा, तुम्हें वहीं समझा दूंगी। और हां, मेरा यह नाम न भूलना। अब तुम जाओ, और कुछ देर विश्राम करो। फिर मैं तुम्हें बुला कर कुछ और बातें भी समझाऊंगी। अपनी समस्त योजना से हरिया को भी अवगत कर देना ताकि वह ठीक समय पर हमें सहायता पहुँचा सके। शीला बहिन! यहां का सारा कार्यक्रम तुम्हारे ऊपर रहा। ये लोग यहां तुम्हें मिलते रहेंगे। मैं समझती हूं हमारे शंखों की ध्वनि तुम्हारे यहाँ तक सुगमता से पहुँच जाएगी। उसके अनन्तर जो कुछ करना होगा, वह तुम्हें भी समझा दिया जाएगा। अब तुम जाओ, इसके यहां ठहरने का प्रबन्ध करवा दो।"

नीरू और शीला के चले जाने पर अंजना ने अपने झोले में से कुछ पत्र और आवश्यक पदार्थ रमा को दे दिये। तदनन्तर रमा से कहा—"चलो बहिन! शाम हो चुकी। इस आनन्द-निवास में ही इधर से उधर चक्कर लगाकर कुछ टहला जाए। फिर खा-पीकर कल प्रातःकाल का कार्य-क्रम निश्चित करके सोया जाये।"

मनुष्य परिस्थिति के वश होकर जघन्यतम कार्य करता है तो वह अपने अन्त:करण की सूक्ष्म ध्वनि (Small voice) को अनसुनी करके उस जघन्यता में सत्य और न्याय का आभास पाता है। जैसे चोर चोरी करता है निश्चय ही उसका यह कार्य जघन्य है, किन्तु वह अपनी घोर आवश्यकताओं के आधार पर अपना मत निर्धारित करता हुआ कहता है कि समाज में सभी चोर और लुटेरे हैं। सभी धनराशी बढ़ाने के लिए चोरी करते हैं। सभी लालसा और महत्वकाक्षा के दास हैं; पर मैं तो जीवन की अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए ही चोरी करता हूं। ठीक यही अवस्था सेठ राधालाल और उसके समर्थकों एवं सहयोगियों की थी। वह सदैव अपने मित्रों में बैठकर कहता—"भई, मैं तो जो कुछ भी कर रहा हूं जनता के लिए कर रहा हूं। क्योंकि यदि मुक्ति-प्रदेश के चक्र-व्यूह में हम भी फंस गए तो हमारा सारा उद्योग-धन्धा समाप्त हो जाएगा। जब कोई मालिक ही न रहेगा तो कामगारों को वेतन ही कौन देगा; बेचारे भूखों न मर जायेंगे ?"

प्रात:काल के समय वह दैनिक समाचार पत्र पढ़ रहे थे कि ज़िला अधिकारी और उसके चार साथी वहां आये तो सेठ ने कहा—"लीजिये, अधिकारी साहिब, आज का नया समाचार। मुक्ति-प्रदेश के जननायक ने इस बात की घोषणा की है कि नैनीताल और अलमोड़ा के निकटवर्ती समस्त क्षेत्र में परसों बुधवार के दिन दस बजे प्रात:काल गणतन्त्र का वार्षिकोत्सव धूमधाम से मनाया जाएगा। जननायक की सवारी इन सभी स्थानों पर से गुज़रेगी। जनता से निवेदन किया गया है कि

वह अपने अपने घरों के आगे अभिनन्दन के लिए उपस्थित रहें। तो इससे क्या तात्पर्य निकलता है?"

ज़िला अधिकारी ने कहा—"तात्पर्य और क्या हो सकता है? हम लोगों को अपनी शक्ति का प्रदर्शन करके चुनौती दे रहे हैं। इससे प्रकट है कि नैनीताल और अल्मोड़ा तक को भी वह अपने विधान के अन्तगत ला चुके हैं। आप लोगों का सेठियापन समाप्त हो गया। जब मुक्ति-प्रदेश का विधान लागू हो गया तो उसके अनुसार मुद्राओं का तो कोई मूल्य ही नहीं रह गया। चलिये, आप भी कमर कस लीजिए, सेठ जी! मैं हल चलाऊंगा, तुम खलिहानों को पानी से सींचना। जब तक मैं जीवित हूं, इतना तो कर सकता हूं कि आपका अधिक कार्य मैं कर लूं, और सीधा-सीधा कार्य आप करें।"

इसके साथ ही वह व्यंग्य पूर्ण हंसी भी हंस दिया। उनके एक साथी ने आगे बढ़कर कहा—"पर अधिकारी साहब! उनके विधान में उद्योगों के लिये निषेध तो नहीं किया गया। हां, आपसे मोटर, बंगले अवश्य छिन जायेंगे। नौकर, चाकर एवं ड्राईवर भी साथ छोड़ जायेंगे। क्योंकि जब वेतन की आशा न रहेगी, तो काम कौन करेगा? कामगार मिलों में काम करेंगे। आप उनके संरक्षक मात्र ही रह जायेंगे। दूसरे शब्दों में मुक्ति-प्रदेश के विधानानुसार कार्य-कर्त्ता और श्रमिक तो देश के स्वामी कहलायेंगे। और आप कहलायेंगे मात्र निरीक्षक अर्थात् उनके सेवक।"

ज़िला अधिकारी ने और भी अपनी बात को बल देते हुए कहा—"सेठ जी, आज तक जो समाज सेवियों ने सभी प्रकार की मौज उड़ाई है उसका कणमात्र भी अब की प्राप्य न होगा।"

सेठ के माथे पर पसीना आ गया हाथ पांव फूल गए बेचारे के। करुण स्वर में कहने लगा—"भई, हम अपने कारखानों में ही काम करते रहें, इसका भी क्या ठिकाना है। जब उन्होंने हमें सताने

का व्रत ले ही लिया है तो हमें किसी सड़क के पत्थर कूटने पर भी तो लगा सकते हैं।"

अधिकारी ने कहा—"हो सकता है, क्योंकि उनका यह भी तो नियम है कि व्यक्ति को योग्यतानुसार काम सौंपा जाए। वह बड़ी सरलता से कह देंगे कि—सेठ जी तो बिलकुल अनपढ़ हैं। इनसे तो मज़दूरी भी निम्नतम कोटि की लेनी चाहिए। क्या सुना नहीं, बलरामपुर के राजा साहब की क्या दुर्गति की है इन्होंने ?"

सेठ ने भवें चढ़ाते हुए कहा—"क्या ? मैंने तो कुछ नहीं सुना। क्या उनसे भी राज्य छीन लिया ?"

अधिकारी ने शोक प्रकट करते हुए कहा—

"अजी, राज्य ही क्या, उनका तो सर्वस्व ही छीन लिया। और जब उन्होंने अपने और अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए कुछ मांगा, तो बड़े ही कोमल और मधुर स्वर में शशांक भैया जी ने कहा—"राजा साहब ! जिस प्रकार वहां और सब लोग अपने परिवार का पालन-पोषण करते हैं, वैसे आप भी कीजिए। सामन्तशाही का युग बीत गया। अब तो सभी को कार्य करना होगा।" राजा साहब तो बेचारे पिछले दिनों इसी शोक में घुल-घुल कर स्वर्गवास हो गए। सुना है महारानी जी को दिन भर पत्र वितरण का कार्य करना पड़ता है और सप्ताह में एक बार प्रचंड दण्डनायक प्रवेश से सप्ताह भर के लिए खाद्य-सामग्री और जीवन सम्बन्धी अन्य पदार्थ सामान्य निवासियों की ही भाँति पंक्तिबद्ध होकर ग्रहण करने पड़ते हैं।"

अब की तो सेठ जी की आंखें आश्चर्य से कपाल तक चढ़ गईं, और गिड़गिड़ा कर बोले—

"भई, यह तो बड़ी अन्धेर गरदी हो गई। कुछ तो करना ही होगा। नहीं तो सच कहता हूं भैया, मुझे तो जिस समय कोई ऐसी-वैसी आज्ञा मिली, मेरी तो उसी समय हृदय गति रुक जाएगी। कुछ

भी करो भैया, जो भी खर्च हो कर डालो। इस संकट से बचने का उपाय ढ़ूंढ़ो।"

ज़िला अधिकारी के साथियों ने उत्साह बढ़ाते हुए कहा—"अभी दो दिन और दो रातें बीच में हैं। घबराने से कुछ न होगा। कोई न कोई स्थूल कार्य करना होगा। देखिए, हम लोग भी आप ही की तरह उद्योगधन्धे करते हैं। जो दशा आपकी होगी, हमारी भी हो सकती है। सच पूछिए, तो इन अधिकारी महाशय को तो इतनी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। पढ़े-लिखे व्यक्ति हैं। कहीं न कहीं मुक्ति-प्रदेश में भी इन्हें अच्छा काम धन्धा ही सौंपा जाएगा। मरेंगे तो हम जैसे ही। इसी लिए तो हम लोग आप के पास आए हैं। आपने सदैव ही हमारा नेतृत्व किया है। इस बार भी कीजिए। हम आपका अनुकरण करेंगे।"

सेठ ने व्यस्त भाव में कहा—"पर कोई ढंग भी करूं तो किस बल पर? आप लोग ढंग बताइए, मैं सब प्रकार से तैयार हूं।"

अधिकारी ने निकट आते हुए कहा—"तब कोई चिन्ता नहीं, आप निश्चिन्त रहिए। जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं आपका कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। आप इसी तरह यहां विश्राम कीजिए। केवल चार करोड़ रुपया हमें दिलवा दीजिए; फिर देखिए हम क्या करेंगे। जितना भी ढोंग जननायक महाशय ने रच रखा है, दो ही क्षण में भस्म हो जाएगा।"

सेठ ने कुछ चमक कर कहा—"तो क्या विदेश से भी कोई टैंक-वैंक अथवा युद्ध सामग्री·····?"

ज़िलाधिकारी ने तुरन्त संकेत द्वारा मौन कराते हुए कहा—"अजी सेठ जी, आप भी क्या संकट मोल लेने की सोचते हैं!"

सेठ ने हंसते हुए कहा—"अरे साहब, इस विषय में आप निश्चिन्त रहिए, यहां कोई पराया व्यक्ति नहीं है। आप लोग सभी

अपने ही तो हैं ! और फिर सारा पुलन्दा तो आपकी जेब में है।

ज़िला अधिकारी ने कहा—"नहीं सेठ जी ! भूले न रहिए। मुक्ति-प्रदेश के दूत छिपकलियों के वेष में मकान की छतों से चिपटे रहते हैं। धूर्त एक नम्बर के बहुरूपिये हैं। कुछ दिन हुए सोमदेव कह रहा था कि उसने अजयसिंह को जीवित देखा है। यहां तक कि उससे बातें भी की हैं। पर उस पट्ठे ने इस प्रकार अपना रूप बदल रखा है कि कोई नि ट सम्बन्धी भी न पहचान पाए।"

सेठ ने प्रश्न किया—"तो उसने कैसे पहचान लिया उसे ?"

अधिकारी ने कहा—"वह उसके राज्य-काल में प्रायः सप्ताह में एक बार अवश्य उससे मिलता था। वह भी उसने तब पहचाना जब बहुत निकट से बातें कीं।"

सेठ ने कहा—"यह अजयसिंह भी एक मूर्ख है। भला उसे किस बात की कमी थी। बड़े मज़े से राज्य करता। कहां राजमहलों का सुखी जीवन और कहां चोरों व बदमाशों की भांति लुक-छिप कर मारा-मारा फिरता होगा।"

एक व्यक्ति ने कहा—"इसमें भी रहस्य है। वास्तव में बात यह है कि वह अपने छोटे भाई कर्णसिंह के सम्मुख क्षुद्र कीट के समान है; पहली व्यवस्था में कर्णसिंह के भय से उसे राज्य करना तो एक ओर, राजमहलों में सोना और बैठना भी कठिन था। एक दम भौंड़ा और भीरू सा व्यक्ति है। प्रशासन सम्बन्धी तो क, ख भी वह नहीं जानता। राजमहल में झाड़ू देने वाला भङ्गी भी निश्चय ही उससे अधिक प्रभावशाली और तेजवान होगा। परन्तु वह धूर्त्त अवश्य है। वास्तव में यह सब बखेड़ा उसी ने ही खड़ा किया है। जननायक को तो तुम जानते ही हो, उसका पुराना सेनापति है। वह निःसंदेह कूटनीतिज्ञ है। सुना है कि उसने अजयसिंह को शिवालक ता

शिवालक समस्त राष्ट्र का एकछत्राधिकारी बना देने का वचन दिया है ।''

ज़िला अधिकारी ने बात सम्पूर्ण करते हुए कहा—''और यह मुक्ति-प्रदेश उसकी इस योजना का प्रथम सोपान है, यही न ? मैं सोपान को जला कर भस्म कर दूंगा । मैं केवल गुरुदेव-कुमारगिरि के आदेश का प्रतीक्षक हूं । नहीं तो कभी का यह उपद्रव समाप्त कर दिया होता । मैं तो समझता हूं यह सब उनकी कोमलता का परिणाम है ।''

सेठ ने दार्शनिक बनते हुए कहा—''गुरुदेव के विषय में ऐसा कहना, तो मैं समझता हूं अन्याय होगा । अन्त में शत्रु को भी इतना ढीला और निकम्मा समझ लेना भी तो भूल होती है ।''

ज़िला अधिकारी ने अनायास विषय पलटते हुए अपने निकट बैठे हुए साथी से कहा—

''भाई, देखना बाहर, कोई नौकर हो तो कुछ मंगवाया जाए ।''

सेठ ने ठिठोली करते हुए कहा—''क्यों आज फिर पीने की सूझी है ?''

अधिकारी ने कौच पर पीठ तानते हुए कहा—''सेठ साहब ! आज पीने को ही नहीं; सब कुछ करने को जी चाहता है । पहले कुछ खाएं-पीएंगे, फिर कुछ खेलेंगे भी । और·········।''

सेठ ने उसकी ओर धूर्तता पूर्ण दृष्टि से देखकर हंसते हुए कहा—''हां भई, कौन जाने कल क्या होने वाला है ? आज की रात बीच में है । अच्छा है, जितनी मौज उड़ा ली जाए ।''

एक ने कहा—''अजी साहब, आज की रात ही क्यों, अभी तो कल की रात भी हम मौज उड़ा सकते हैं । और सच-सच पूछिए सेठ जी, हमें करना ही क्या है ? सब कार्य अधिकारी जी ही तो करेंगे न।''

अधिकारी ने कहा—''हां जी, क्यों नहीं, ओह मैं तो भूल ही गया था । क्यों भाई था कोई बाहर ?''

साथी ने कहा—"हां, घूंघट ओढ़े एक स्त्री बाहर फूलों में पानी दे रही है, उससे कह दिया है। बस समझो, अभी कुछ न कुछ लेकर आती ही होगी।"

अधिकारी के कान खड़े हो गये। उसने चोंकते हुए प्रश्न किया—"सेठ जी! क्या कोई नई दासी रखी है, आपने तो हमें बताया ही ही नहीं ?"

सेठ ने विवशता सी दर्शाते हुए कहा—"अरे हां भाई, आज प्रातः ही आई है। जान पड़ता है कोई राजस्थानी है। अत्यन्त लजीली है। बस, यह समझ लो कि आदेश पाते ही कठपुतली की तरह कार्य कर देती है और चुपचाप कमरे से बाहर हो जाती है।"

सामने बैठे साथी ने विनोद पूर्ण स्वर में कहा—"भाई, कुछ भी हो, सेठ जी हैं गुप्त भीम·········।"

इस पर ज़िला अधिकारी के अतिरिक्त अन्य सभी व्यक्ति खिलखिला कर हंस दिए। ज़िला अधिकारी ने चिन्तिन स्वर में कहा—

"मैं इसी लिए कहता था, कि धीमे बात किया करो, पर आप लोग·········।"

सभी मौन होकर उसकी ओर देखने लग गए। सेठ ने प्रश्न किया—"तो क्या यह नई दासी कोई ऐसी वैसी·········?"

अधिकारी ने कहा—"क्या कहा जा सकता है? मैंने उसकी शक्ल तो देखी नहीं। क्या मालूम किस समय कौन व्यक्ति हमारा अनिष्ट कर जाए। सच पूछिए तो मैं मुक्ति-प्रदेश के गुप्तचरों से अवश्य विचलित हो उठता हूं। पता नहीं कहां से सूचना पा जाते हैं। तभी पता चलता है कि कोई न कोई दुर्घटना हो जाती है।"

सेठ ने अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा—"तो इसकी परीक्षा ले डालो न।"

अधिकारी ने प्रश्न किया—"वह तो एक दम बन्द गोभी है। मुंह पर से परदा हटाए तो पता चले।"

सेठ ने कहा—"अरे भाई, वीर पुरुष हो। क्या इतनी सी बात पर घबरा गए। परदा ही है पहाड़ तो नहीं। वह न हटाए तो तुम अपने हाथ से हटा लेना।"

अधिकारी ने कहा –"सो कैसे ?"

सेठ ने कहा –"आधी रात को तुम्हारे पास एक पत्र देकर भेज दूँगा। बस········।"

अधिकारी ने सिर हिलाते हुए कहा—"जैसे आपकी इच्छा।"

इतने में घूँघट ओढ़े दो दासियां कुछ जलपान की सामग्री रख गईं। और सभी खाने में जुट गए। अधिकारी ने कई बार दोनों दासियों को जिज्ञासा पूर्ण नेत्रों से देखा, परन्तु कुछ भी समझ न आने पर चुपचाप खाता-पीता रहा।

लगभग आध घण्टा तक खाने-पीने का यह कार्य-क्रम चलता रहा। अभी वह लोग हाथ ही धो रहे थे कि घूँघट ओढ़े हुए दासी ने आकर विनीत स्वर में कहा—"मालिक; आपने मुझे नौकरी देकर बड़ी दया की है। मेरा एक बड़ा भाई है, वह भी बेकार है। कोई काम-धन्धा नहीं मिला। कई दिन से हम दोनों भूखों मर रहे थे। कहें तो उसे भी आपकी सेवा में उपस्थित करूँ, उसे भी रख लीजिए। ग़रीब की आत्मा आशीर्वाद देगी। आज्ञा हो तो बुलाऊं, बाहर खड़ा है।"

सेठ ने अधिकारी की ओर देखा और कहा—"हां–हां, अवश्य बुलाओ। नौकर तो एक चाहिए ही है। जाओ उसे यहीं ले आओ।"

दासी ने बाहर जाकर दो ही तीन क्षण में एक गंवार युवक को मालिक के सम्मुख उपस्थित कर दिया। सेठ के संकेत से अधिकारी ने उससे प्रश्न किया—"क्यों भई, पहले भी कहीं नौकरी कर चुके हो ?"

युवक ने उत्तर दिया—"नहीं मालिक, ऐसी विपदा तो कभी नहीं

पड़ी हमारे ऊपर । हम लोग वास्तव में इन्हीं निकटवर्ती पर्वतों में रहने वाले ब्राह्मण हैं । जब से मुक्ति-प्रदेश बना है तब से हम लोगों पर तो विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा । वहां तो न कोई धर्म-कर्म, न ब्राह्मण सेवा । अजी मालिक क्या पूछो, और तो और बहु-बेटी की मर्यादा तक का तो भरोसा नहीं रहा । हम ठहरे पूजा-पाठी ब्राह्मण, इसके अतिरिक्त और कोई कार्य हमें आता नहीं । और वहां क्या है । जब मैंने दण्डनायक से कहा—'कि भई, मुझे तो कोई काम-धन्धा नहीं आता ।' तो उसने तड़ाक से उत्तर दिया—'अच्छा कोई बात नहीं । हम पर्वत काट कर कुछ नई सड़कें बना रहे हैं । चलो वहां कंकरी कूटा करो ।''

इस बार तो जैसे वह रो सा दिया । आंखें पोंछता हुआ बोला—"कुछ न पूछो मालिक, कुछ दिन यह भी करना पड़ा । हाथों में छाले पड़ गए । यह देखिए, बड़ी कठिनाई से ठीक हो पाया हूं ।"

अधिकारी ने कुछ समय चिन्तन करने के पश्चात् आश्वासन देते हुए कहा—"कोई बात नहीं भई ! क्या किया जा सकता है ? यह तो सभी पर बीत रही है । तुम निश्चिन्तता पूर्वक यहीं रहो, सेठ जी की सेवा करो और खाओ-पीओ । किसी बात का कष्ट हो तो कह देना । जाओ दासी ! इसे इसके ठहरने का कमरा दिखा दो और कुछ काम धन्धा भी समझा दो । सेठ जी ने इसे रख लिया है । हां, तुम्हारा नाम तो पूछना भूल ही गया ।"

युवक ने झुकते हुए कहा—"जी मालिक, मेरा नाम हीरा है और यह मेरी छोटी बहिन फूला है । ईश्वर आपको बहुत दे ।"

और वह अपनी बहिन के पीछे पीछे द्वार से बाहर हो गया । उनके वहां से जाते ही सेठ ने प्रश्न किया—"क्यों अधिकारी जी, क्या विचार है ?"

अधिकारी ने सिर खुजलाते हुए कहा—

"देखने में तो एकदम गंवार और फूहड़ जान पड़ता है, पर कुछ

कहा नहीं जा सकता। समय बहुत सतर्क रहने का है। फिर भी मैंने उसे नौकर रख लेना ही उचित समझा। और नहीं तो आपकी दासी का मन ही रह जायेगा, क्यों ?"

इस बात पर लगभग सभी हंस दिये। सेठ ने भी हंसी में योग देते हुये कहा—

"तुम हो बहुत विलक्षण। बात बात पर शरारत सूझती है तुम्हें। और कोई छींटा-कसी करे तो करे, तुम भी मुझे नहीं छोड़ते।"

तत्पश्चात् दूसरी दासी ने प्रवेश किया, और जूठे बर्तन उठाकर चली गई। सेठ ने कुर्सी पर से उठते हुये कहा—"चलिये, कुछ देर सब लोग पिंग-पौंग खेलेंगे।"

और अगले ही क्षण सभी उठकर चल दिए।

× × ×

रात के ठीक साढ़े बारह बजे जिला अधिकारी के कमरे पर किसी ने द्वार खटखटाया। वह उठ बैठा और द्वार खोलकर देखा कि नई दासी पूर्व-वत् लम्बा सा घूंघट काढ़े सहमी सी सिकुड़ी सी झुकी हुई एक पत्र हाथ में लिये खड़ी है। उसने विनीत स्वर में कहा—"मालिक! यह सेठ जी ने एक आवश्यक सन्देश भेजा है आपके लिये।"

अधिकारी ने पत्र उसके हाथ से लेकर सहज भाव से कहा—"भीतर आ जाओ, मैं अभी इसका उत्तर दिये देता हूं।"

दासी आशंका से कांप सी उठी। परन्तु अधिकारी के प्रस्ताव को अस्वीकृत करने का सामर्थ्य एकत्रित न करते हुये चुपचाप भीतर जाकर एक कोने में धरती पर ही बैठ गई। अधिकारी ने तुरन्त उसका हाथ पकड़ कर उठाते हुये कहा—"अर-र-र, तुम नीचे क्यों बैठ गईं! यहां बैठ जाओ पलंग पर।"

दासी ने अपने आपको छुड़ाने का प्रयत्न करते हुये कहा—"नहीं मालिक, हम लोगों को पलंग पर बैठना शोभा नहीं देता। यह तो

मालिकों के लिये होता है।"

अधिकारी ने पुनः उसके हाथ को दृढ़ता से पकड़कर अपनी ओर खींचते हुये कहा—

"अरी, पर रोज़ इस पर मालिक सोते हैं आज मालकिन भी सही। आओ, बैठो, हठ न करो।"

दासी ने चुपचाप एकदम आगे बढ़कर हाथ छुड़ा लिये और तड़ाक से एक थप्पड़ उसने सीधे गाल पर जड़ दिया। इसके साथ ही मुंह पर से घूंघट हटाती हुई कड़े स्वर में बोली—

"अधिकारी महाशय! कई बार तुम हमारे हाथ से बच गये हो। आज बच पाओ तो जानूं।"

अधिकारी एकाएक विपत्ति पड़ने पर जैसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा हो उठा। फिर वह कोई आत्म-रक्षा का सा साधन ढूंढने के लिए द्वार की ओर भागा, तो देखा कि वही गंवार नौकर द्वार पर पिस्तौल लिये खड़ा है। अधिकारी ने कुछ देर विचार किया। फिर पास खड़े फूलदान को हाथ में उठाकर नौकर पर दे मारने के लिए उद्यत हो उठा। अभी तक वह फूलदान पूर्ण रूप से ऊपर भी न उठा पाया था कि तड़ाक से एक गोली पिस्तौल से निकली और उसके गले को पार कर गई। 'आह' कह कर अधिकारी जी औंधें मुंह धरती पर आ गिरे और कुछ क्षण तड़फड़ा कर ठण्डे हो गये। दासी ने नीचे झुक कर उसके शरीर को भली प्रकार देखा, तो गोली चलाने वाले नौकर ने कहा—

"अंजना जी, शीघ्र कीजिये, अब इसमें कुछ नहीं रहा। भाग चलो।"

इतने में वहां से कुछ अन्तर पर और तीन चार गोलियों की आवाज़ सुनाई दी अंजना ने तुरन्त उठकर चलते हुए कहा—"चलो, जल्दी चलो हरिया। शायद सेठ राधालाल की भी कपाल-क्रिया हो गई।"

हरिया ने त्वरित गति से चलते हुये कहा—"हां, नीरू शाम से ही सेठ के शयनकक्ष में जा छिपा था।"

दोनों व्यक्ति वहां से भाग निकले।

रात्रि के अन्धकार में हरिया और अंजना अपने आपको छिपाते हुए काले वस्त्र लपेटे नैनीताल की गलियों को पार करके एक घाटी के पीछे जा पहुँचे, जहां पर नीरू और उसके साथी पहले से ही सेठ राधालाल व उसके कुछ साथियों के मृतक सामने भूमि पर रखे बैठे हुये थे। अपनी ओर दो काली परछाईं को बढ़ते हुये देख कर नीरू ने कड़क कर पूछा—"कौन है ?"

हरिया व अंजना ने स्वर पहचान कर मुंह पर से आवरण हटा दिये। पर, अन्धेरा अधिक होने के कारण नीरू उन्हें न पहचान सका। उसके पुनः उच्च स्वर में पूछा—"कौन है ? परिचय दो, नहीं तो गोली मार दूंगा।"

अंजना ने वहीं रुक कर सांकेतिक भाषा में अपना परिचय दिया। नीरू ने तुरन्त प्रकाशवाहिनी जलाई और अभ्यर्थना के लिए वह और उसके साथी उठ खड़े हुये। अंजना ने आगे बढ़ कर सेठ राधालाल आदि के शवों को देखते हुये कहा—"नीरू भाई ! इन्हें जला दो। और शीघ्र अगली घाटी में चलो।"

आदेश पाते ही नीरू ने मृतकों पर घास-फूंस डाल कर आग लगा दी और आदेश-दात्री के साथ अगली घाटी में पहुँचे। उनके वहां पहुँचने से पूर्व ही शीला, रमा व प्रो० कमलाकांत पहले से ही कुछ घोड़े व आवश्यक सामग्री तैयार लिये बैठे थे। अंजना के वहां पहुँचते ही सभी ने स्नेहपूर्वक उसका स्वागत किया। आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् अंजना ने अपनी गत रात्रि की समस्त कार्यवाही सविस्तार सुनाई। फिर कुछ देर चिन्तन करने के पश्चात् उसने ओज-पूर्ण स्वर में कहा—"शीला बहिन ! मुक्ति-प्रदेश का प्रत्येक प्राणी

तुम्हारी और भाई साहब की सहायता के लिये कृतज्ञ रहेगा। सच पूछिये तो यहां की विजय का सारा श्रेय आप दोनों भाई बहिन पर ही है। आपके स्नेह से प्रेरित होकर मेरे अन्तःकरण से आपके लिए निमन्त्रण फूटते हैं। किंचित् व्यवस्था ठीक हो जाने पर आपको मैं वहां के लिए निमन्त्रण देती हूं अभी से; अवश्य पधारना। वैसे तो भविष्य में यह सारे का सारा क्षेत्र ही मुक्तिप्रदेश कहलायेगा। और यह भी न भूलियेगा कि इस क्षेत्र की व्यवस्था का भार भी आपको सौंपा जायेगा।"

प्रो० कमलाकांत ने विनीत स्वर में कहा—

"आपकी प्रत्येक आज्ञा का हम सहर्ष पालन करेंगे।"

फिर अंजना ने रमा से गले मिलते हुये कहा—"रमा बहिन! मैं तुम्हारे भी सहयोग को न भुला पाऊंगी। आप लोगों की इस मूक कर्त्तव्यनिष्ठा ने ही हमें सफलता दी है।"

इसके बाद उसने रमा से विदा होते हुये सत्कार पूर्ण स्वर में कहा—'अब आप लोग अपने अपने घरों को लौट जाईयेगा। रमा बहिन! जो बन्दी तुम्हारे भवन में पड़े हैं, उन्हें भी यथाशीघ्र हमारे वहां पहुँचा देना।'

रमा ने उत्तर दिया—"जो आज्ञा बहिन! हां, गणतन्त्र दिवस के समारोह के विषय में क्या आज्ञा है?"

अंजना ने कहा—"वह सब कुछ नहीं। जब तक सभी शत्रु अपने अधिकार में नहीं हो जाते, तब तक के लिए यह समारोह स्थगित कर दिया है। अच्छा, अब तुम लोग चलो।"

अभी उसने वाक्य भी समाप्त न किया कि एक अश्वारोही घोड़ा दौड़ाता हुआ आ पहुँचा। अंजना ने उसे पहचानते हुये प्रश्न किया—"क्यों केसरी, क्या समाचार है?"

केसरी ने घोड़े पर से नीचे उतरते हुए कहा—"हमारी योजना

पूर्ण रूप से सफ़ल रही। महाराज अजयसिंह जी निकटवर्ती सभी क्षेत्रों पर अपना अधिकार प्राप्त करते हुये आध घण्टे के भीतर ही यहां पहुँच जायेंगे। उन्होंने शत्रु के सभी कारखानों और मोर्चों को हस्तगत कर लिया है।"

अंजना ने पूछा—"और हमारे लिये कोई संदेश ?"

केसरी ने कहा—'हां, है। उनका आदेश है, कि शीघ्र ही कुछ व्यक्तियों को साथ लेकर मां के पास जा पहुँचें।"

अंजना ने पिता का आदेश पाते ही कहा—"ठीक है। नीरू और हरिया ! तुम लोग प्रो० साहिब की सहायता से यहां का प्रबन्ध करो। मैं सीधी मां के पास जा रही हूं। और तुम्हारे लिये क्या आज्ञा है केसरी भैया ?"

केसरी ने घोड़े पर पुनः सवार होते हुए कहा—"यहीं ठहर कर उनकी प्रतीक्षा करनी होगी। आप लोग चलियेगा।"

बिना कुछ और बात चीत किये केसरी व कुछ अन्य सैनिकों के अतिरिक्त सभी वहां से प्रस्थान कर गये।

अंजना और उसके साथियों ने घोड़े बढ़ाये तो केसरी ने कहा—"दक्षिणी मार्ग से जाना अधिक हितकर होगा। स्थान-स्थान पर इस मार्ग में आपको अपने ही व्यक्ति मिलेंगे।"

अंजना ने कहा—"बहुत अच्छा। हां, यह लो कुछ पत्र, अधिकारी महाशय की जेबों से मिले थे।"

पत्रों का पुलन्दा केसरी को देकर उसने घोड़े को एड़ लगा दी।

नैनीताल में ज़िला अधिकारी और सेठ राधालाल इत्यादि प्रमुख कार्य-कर्त्ता एवं नैनीताल के निकटवर्ती समस्त प्रदेश अजयसिंह के अधिकार में आने की सूचना मिलते ही कुमारगिरि क्रोध से क्षुब्ध हो उठा। उसने घाव खाए हुए फनियर सर्प की भांति फुंकारते हुये अपने सम्मुख खड़े कार्य-कर्त्ताओं की भर्त्सना करते हुये कहा—"मूर्खो तुम्हारी ही मन्द-बुद्धि का चमत्कार है जो सब बना बनाया खेल बिगड़ गया। कहां आज शत्रु शिविरों में शोक छाया होता। समस्त मुक्ति-प्रदेश हमारे चरणों में होता। वहां के उद्दण्ड और दुष्ट अधिकारी मेरी दया के भिखारी होते। और कहां हमारी समस्त शक्ति अस्त-व्यस्त हो गई। अधिकारी जैसे मेधावी कार्य-कर्त्ता समाप्त कर दिये गये और तुम लोग हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। अब तुम्हारी क्या आवश्यकता ? डूब मरो चुल्लू भर पानी में। तुम जैसे निकम्मे और मूर्ख अधिकारियों को तो गोली मार देनी चाहिये।"

सम्मुख खड़े व्यक्ति ने शांत स्वर में कहा—"युद्ध में तो ऐसा हुआ ही करता है राजगुरु ! विरोधी की सैन्य शक्ति इतनी अधिक है कि उसके समक्ष हमारा वश नहीं चलता। अजयसिंह के सैनिकों ने हमें चारों ओर से घेर लिया था। हमने अधिकारी जी के पास दूत भेजे, तो पता चला कि उनकी और उनके सहयोगियों की अंजना द्वारा हत्या हो चुकी है। हमें किसी ओर से भी सहायता न मिल सकी। तो बताइए इसमें हमारा क्या दोष ?"

कुमारगिरि ने जैसे वस्त्र फाड़ करके बाहर निकल कर पांव पटकते हुए कहा—

"हां जी, दोष तो मेरा था। मैं स्वयं वहां पहुँचता, तभी तो हमारी विजय हो पाती। और तुम्हारे दुर्भाग्य से अंजना व अजयसिंह

भी मरे मराए जी उठे। जाओ, अपना मुंह काला करो। चले जाओ यहां से। तुम जैसे अपाहिजों और बकवादियों के लिये मेरे यहां कोई स्थान नहीं। निकल जाओ यहां से। सन्ध्या होने से पूर्व ही मेरी सीमा से बाहर हो जाओ। तुम्हारा घर-बार, तुम्हारी सारी पूंजी ज़बत कर ली गई।"

यह कहकर वह उसी तरह फुंकारता हुआ और बार-बार अपनी केशहीन खोपड़ी को अपने दायें हाथ से मसलता हुआ शिविर के भीतर चला गया। वहां पहुँचते ही कर्णसिंह ने उत्सुकता पूर्ण स्वर में पूछा—"क्या कोई और सूचना मिली?"

कुमारगिरि ने क्षुब्ध स्वर में कहा—"अब सूचना के लिए बचा ही क्या है? तुम्हारा दुर्भाग्य कर्णसिंह! अजयसिंह और उसकी लड़की अंजना की ही यह सब कार्यवाही है। अब क्या किया जा सकता है? चारों ओर से हम घिरे बैठे हैं। अधिक समय तक चुपचाप भी तो नहीं बैठ सकते। और नहीं तो कुछ समय पश्चात् हमें भूखों मरना होगा।"

कर्णसिंह ने कुमारगिरि के चरणों में बैठते हुए गिड़गिड़ा कर कहा—"कुछ भी करिए गुरुदेव! हम इस प्रकार कुत्तों की मृत्यु नहीं मरना चाहते। कोई भी साधन निकालिए।"

कुमारगिरि ने निश्चिन्त और गम्भीर स्वर में कहा—कर्णसिंह! केवल एक ही साधन बचा है। उसे भी परख लेना चाहिए।"

कर्णसिंह ने उत्साह प्राप्त करके उठते हुए पूछा—"क्या साधन है गुरुदेव?"

कुमारगिरि ने उसके कानों के निकट आकर नितान्त क्षीण स्वर में कहा—"बुड्ढे की हत्या। इससे निश्चय ही मुक्ति-प्रदेश में चारों ओर भगदड़ मच जाएगी। ऐसी अवस्था में सम्भव है हम उन पर एकाएक आक्रमण करके सफलता प्राप्त कर सकें।"

कर्णसिंह ने कहा—"तो शुभस्य शीघ्रम् गुरुदेव! यदि एक बार

अवसर मिल जाए तो मैं मुक्ति-प्रदेश की ईंट से ईंट बजा दूंगा। और......।"

कुमारगिरि ने तिरस्कार पूर्ण स्वर में मुंह फेरते हुए कहा—"समय आ लेने दो। फिर जो जी में आए कर लेना।"

फिर उसने पिछले द्वार पर खड़े हो कर कहा—"द्वारपाल ! सोमदेव को तुरन्त मेरे पास भेज दो, और कहो कि जाने की तैयारी करके आए। मैं यहीं बैठा हूं।"

द्वारपाल शीश झुका कर वहां से भाग लिया। कुमारगिरि ने पुनः कर्णसिंह को सम्बोधित करके कहा—"कर्णसिंह ! जाओ, अपने हृदय में धधकती ज्वाला को शान्त करो। इस बार तुम्हारा एक एक पग तुम्हारी नियति की रेखाओं को उज्ज्वल करता हुआ अथवा सदैव के लिए मिटाता हुआ आगे बढ़ेगा। जाओ मेरी शुभ कामनाए तुम्हारे साथ हैं। जिस समय मुक्ति-प्रदेश के निवासी उस बूढ़े सामन्त के शोक में उद्विग्न एवं अस्त-व्यस्त हों, उसी समय अपनी सुरंगों द्वारा ईंट से ईंट बजा लेना।"

कर्णसिंह की आंखें चमक उठीं। उसने दो बार झुक कर कुमारगिरी के चरणों में प्रणाम किया और कहने लगा—"गुरुदेव ! सफलता मिली, तो विजय की दुन्दुभी बजाता हुआ आपके दर्शन करूंगा, अन्यथा आपको जीवित न मिलूंगा।"

कुमारगिरि ने आगे बढ़ कर उसकी पीठ थपथपाई और कहा—"जाइए महाराज ! राजतिलक का कुंकुम-पात्र हाथ में लिए मैं भी आप की प्रतीक्षा करूंगा। जय एकलिङ्ग !"

× × ×

अगले दिन से ही कर्णसिंह ने स्थान स्थान पर आक्रमण करके जनता को लूटना और मारना आरम्भ कर दिया। स्त्रियों और बालकों के लिए पुनः एक बार प्रलय मच गई। त्राहि-त्राहि करके सभी नैनी-

ताल जा पहुँचे। मध्याह्न के समय अजयसिंह और केसरी बैठे कुछ आवश्यक पत्र व्यवहार कर रहे थे कि नीरू ने आकर सूचना दी—"श्रीमान्! कुछ ग्रामीण बाहर खड़े हैं। बहुत दुःखी जान पड़ते हैं। उनका कहना है कि कुमारगिरि की अनुमति से कर्णसिंह ने उनका सर्वस्व छीन लिया है। उनकी स्त्रियां और बच्चों तक को भी चुन चुन कर मार डाला है। उनका कहना है कि उसकी योजना समूचे देश को जला कर भस्म कर देने की है।"

अजयसिंह ने उठते हुए कहा—"नीरू भाई! उन्हें भीतर ले आओ।"

नीरू के बाहर जाते ही केसरी ने कहा—"यह तो बहुत बुरा हो रहा है सरदार! इस प्रकार तो कुछ ही दिनों में हमारा देश ऊजड़ और कङ्काल बन जाएगा।"

अजयसिंह कुछ कहने ही जा रहे थे कि अनेकों ग्रामीण त्राहि-त्राहि करते हुए नीरू के नेतृत्व में भीतर आ पहुँचे। अजयसिंह ने उन्हें संकेत द्वारा चुप करा कर आश्वासन देते हुए कहा—

"नीरू! इन लोगों के रहने और खाने-पीने का प्रबन्ध कर दो। हम अतिशीघ्र उन क्षेत्रों की रक्षा के लिए पहुँचेंगे। दुष्ट कर्णसिंह को दण्ड देना ही होगा।"

इस प्रकार ग्रामीणों को नीरू के साथ विदा करते हुए कहा—"केसरी! अंजना और उसके साथियों के विषय में सूचना नहीं मिल पाई।"

"केसरी ने कुछ पत्रों को उलटते हुए कहा—

"आज ही कल में वहां की सूचना अवश्य मिल जाएगी। मार्ग एकदम निष्कंटक था।"

अजयसिंह ने श्वास लेते हुए कहा—

"हुँ...दुष्ट अत्याचारी, हिंसक पशु! जब जीतने की कोई आशा

न रही तो असहाय जनता को कुचलना आरम्भ कर दिया। सच पूछो तो केसरी भैया ! प्रवेश ने ठीक कहा था, इन हिंसक पशुओं के लिए दण्ड अत्यन्त आवश्यक है। पर क्या किया जाए; जननायक को यह कदापि अभीष्ट नहीं। वह अतिमानव तो शत्रु से प्रेम बढ़ाने का पाठ पढ़ाता है। यदि उसी समय कर्णसिंह को शूली पर चढ़ा दिया जाता तो यह सब बखेड़ा न खड़ा होता । उस एक की हत्या से यह अनेकों हत्याएं बच जातीं ।"

केसरी ने कहा—"अब भी उनसे इस विषय में कह देखना चाहिए। मुझे तो भय है कि इस बार भी यदि कुमारगिरि और कर्णसिंह जीवित पकड़े गए तो वह उन्हें क्षमा न कर देंगे !"

अजयसिंह ने निश्चिन्त स्वर में कहा—

"यह तो निश्चिन्त ही है केसरी भाई ! जैसे उनकी इच्छा। हमसे तो अच्छा ही सोचेंगे। कुछ भी हो हमें यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि उनकी और मां की सूझ जहां तक पहुँचती है, वहां तक तो हम दो तीन जन्म और भी साधना कर लेने पर न पहुँच पायेंगे। शशांक कहा करते हैं, भैया ! बापू का व्यक्तित्त्व आडू के समान है। ऊपर से सरल, प्रशान्त पर, भीतर से हिमालय की भांति दृढ़ संकल्पी एवं आत्मविश्वासी। वह दयालु अवश्य हैं, किन्तु शत्रु को भुलाते नहीं। हा-हत्या से घृणा करते हैं, पर किसी भी रूप में शत्रु को ऐसा दण्ड देना जानते हैं कि उसका अणु-अणु आत्मग्लानि से चीत्कार कर उठे।" वह कहा करते हैं कि शारीरिक पीड़ा से मानसिक पीड़ा कहीं असह्य होती है। शारीरिक पीड़ा से मनुष्य शीघ्र छुटकारा पा लेता है पर, मानसिक पीड़ा से उसे घुट-घुट कर और गल-गल कर प्राण त्यागने पड़ते हैं। यहां तक वह शरीर त्यागने के उपरान्त भी शान्ति नहीं प्राप्त कर पाता।"

केसरी ने भी इस बार समर्थन करते हुए कहा—"यह तो है ही

साधारण व्यक्ति उस महाप्राण को क्या समझेगा।"

तदनन्तर कुछ देर चिन्तन करने के पश्चात् अजयसिंह ने कहा—"यह जो ग्रामीण अभी अभी आए हैं इनसे भी सतर्क अवश्य रहना होगा। यथासम्भव इनसे वहां का भेद अवश्य ही ज्ञात हो सकेगा।"

इतने में दो सैनिकों ने चीत्कार करते हुए प्रवेश किया। अजयसिंह और केसरी भी किसी भावी आशंका से विचलित हो उठे। आगन्तुक सैनिकों ने क्रन्दन करते हुए कहा—"अनर्थ हो गया श्रीमान! सोमदेव ने जननायक पर गोली चला दी। उनका स्वर्गवास हो गया।"

और वह निरन्तर रोता रहा। अजयसिंह के तो पांव तले से पृथ्वी सरक गई। आश्चर्य और दुःख से अनेक नेत्र खुले रह गए। एक भी शब्द उनके मुख से न निकल पाया। पाषाण-प्रतिमा की भांति बिटर-बिटर देखते रहे। केसरी ने जैसे हलाहल का घूंट निगलते हुए पूछा—"कहां, कब? सोमदेव कहां है?"

सैनिक ने रोते हुए कहा—"जननायक आज प्रातःकाल शशांक भैया के साथ ज्यों ही कर्णसिंह के भवन के पास से गुज़रे तो बहुत बड़ा जनसमूह उनके साथ था। अकस्मात् सोमदेव ने बिजली की तरह जनसमूह को पार करके उनके कलेजे में गोली दाग दी। हत्यारा भगदड़ का लाभ उठा कर भागना चाहता था, पर जनता ने उसे वहीं पकड़कर मार डाला। जननायक को अस्पताल ले जाया गया। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने शांत भाव से तीव्र श्वास लेते हुए कहा—'शशाँक! मुझे इसी प्रकार छोड़ दो और तुरन्त जाकर गृह व्यवस्था को संभालो। ऐसा न हो कि इस भगदड़ से शत्रु लाभ उठा जाए। समय बहुत भयानक है। जाओ यह मेरा आदेश है'।"

कविवर के वहां से सरकते ही उन्होंने एक बार झुक कर भूमि को स्पर्श करके मातृभूमि को प्रणाम किया और सदा के लिए नेत्र मुंद लिए।

अजयसिंह ने उद्विग्न स्वर में पूछा—"मां की क्या अवस्था है ?"

सैनिक ने उत्तर दिया—"जननायक की मृत्यु का समाचार पाते ही उनकी दशा भी बहुत बिगड़ गई थी, पर डाक्टरों ने ठीक समय पर उनका उपचार करके उन्हें बचा लिया। डाक्टरों का कहना है कि मां के हृदय पर जननायक की मृत्यु से बड़ा भारी आघात लगा है। उन्हें किसी भी ढङ्ग से आश्वासन प्राप्त होना चाहिए। और सच पूछिए तो मां को इस मृत्यु से भी अधिक मुक्ति-प्रदेश की चिन्ता हो रही है। शशांक और प्रवेश भैया ने तो रो-रोकर अपने आप को हैरान कर लिया है, परन्तु अंजना जी पूर्ण शान्त और स्वस्थ हैं। मां ने मुक्ति-प्रदेश का समस्त उत्तरदायित्व उसी के कन्धों पर डाल दिया है। उसने भी इस भार को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया है। अतः उनकी आज्ञा है कि मुक्ति-प्रदेश का कोई भी कार्यकर्त्ता इस शोक से द्रवित होकर ढीला और अनुत्तरदायी न बने। उन्होंने आदेश दिया है कि दाएं-बाएं, आगे-पीछे सतर्क दृष्टि से देखकर अपना कार्य किए जाइए। अपनी सीमाओं को और कड़ा कर देने की भी आज्ञा हुई है।"

केसरी ने प्रश्न किया—"हमारे लिए क्या आज्ञा है सैनिक ?"

सैनिक ने उत्तर दिया—"उन्होंने प्रवेश जी को आपके पास तुरन्त पहुँच जाने का संकेत कर दिया है। उनके यहां पहुँचते ही आप महाकाल की भांति शत्रु शिविरों में घुस जाइए। उनका आदेश है कि कोई भी शत्रु नहीं बचना चाहिए इस बार। विशेषकर कुमारगिरि और कर्णसिंह को जीवित या मृतक किसी भी अवस्था में बन्दी बनाने का उत्तरदायित्व आप पर छोड़ा है।"

अजयसिंह ने सैनिक को बाहर जाने का संकेत किया और कुछ क्षण के लिए एक चौकी पर बैठ कर विचार करने लगे। उनके मस्तिष्क में एक विचार आया। तुरन्त उठकर नेत्र पोंछे और द्वार की ओर बढ़े। तो आगे से प्रवेश भीतर प्रविष्ट होते हुए मिला। अजयसिंह

ने बिना किसी शिष्टाचार के ओजपूर्ण स्वर में कहा—"प्रवेश भैया ! एक पल भी नष्ट करना हितकर नहीं। चलो मैं तैयार हूं। हमें इसी समय कर्णसिंह और कुमारगिरि का पीछा करना होगा। केसरी, तुम अपने सैनिकों के साथ शत्रु-प्रदेश में जाकर वहां की जनता की रक्षा करो। नीरू और कमलकान्त को इस क्षेत्र की रक्षा का भार सौंपा जाता है। चलो, प्रवेश भैया !"

उचित और अनिवार्य प्रबन्ध करने के पश्चात् दोनों वीर अपने एक एक पग से धरती को कंपाते हुए शत्रु-शिविरों की ओर आंधी और तूफ़ान की तरह बढ़ गए।

२५

सायंकाल का समय था, आकाश की लालिमा धरती के पदार्थों को भी रक्त-रंजित बना रही थी। मृत्यु की सी स्तब्धता अपना काला आंचल पसारे धरती को अपने बीच में समेटने आ रही थी। कुछ समय पूर्व के मानवी संघर्ष ने वनस्पतियों और पशु-पक्षियों तक को भी भयभीत सा कर दिया था। इस मूक वातावरण में यदि कोई स्वर सुनाई दे रहा था तो लौहिक-यन्त्रों का और कर्णसिंह का आतंकमय आदेश। वह अपने कार्यकर्त्ताओं के पीछे हाथ धोकर पड़ा था। उसके लिए एक क्षण का भी विलम्ब मृत्यु जैसा प्रतीत होता था। मुक्ति-प्रदेश और उसके निर्माताओं एवं निवासियों को एक क्षण में भस्म कर देने वाले द्रव्य और विस्फोटक पदार्थ लम्बी-लम्बी सुरंगों द्वारा बिछाए जा रहे थे। कार्य लगभग पूर्ण होने को था। कुमारगिरि ने कर्णसिंह के निकट अपना अश्व रोकते हुए कहा—"क्यों, कितना समय शेष है?"

कर्णसिंह ने उद्विग्न होते हुए कहा—

"गुरुदेव! आपके यहां ठहरने में किसी आपत्ति की आशंका हो सकती है। मैं सिपाही हूं, मुझे अपने प्राणों का मोह नहीं। परन्तु आपके बिना सारी योजना पर पानी फिर जाएगा। आप इस विध्वंसक क्षेत्र से दूर निकल जाइए। मैं बैट्रियों की व्यवस्था करके शीघ्र आपके पास पहुँचूंगा, फिर नियत समय पर आपकी आज्ञानुसार बैट्रियों को परस्पर सम्बद्ध करके बटन दबा दिए जाएंगे।"

उसने कुछ और भी कहने के लिए जो मुंह मोड़ा, तो कुमारगिरि के स्थान पर भागवत दोनों हाथों में दो पिस्तौल ताने खड़ा था। उसके दाएं बाएं दोनों ओर अजयसिंह और प्रवेश खड़े थे। अजयसिंह ने तिरस्कार पूर्ण स्वर में प्रश्न किया—"कहिए महाराज कर्णसिंह

जी ! बटन दबाने में कितना समय शेष रह गया है ? घबराइए नहीं, अब आपको कष्ट नहीं करना पड़ेगा । जाओ प्रवेश, भाई साहब का स्वागत करो । क्या करें कर्णसिंह भैया ! इस ऊजड़ बन में ऐसे पदार्थ भी तो उपलब्ध न होंगे, जिन से तुम्हारा उचित समादर किया जा सके । चलो, अपने शिविर में ही ले जाकर आपका अभिषेक किया जा सकेगा ।"

कर्णसिंह सिर झुकाए खड़ा था । परन्तु कभी कभी इधर उधर दृष्टि अवश्य डाल लेता था । उसने ज्यों ही अपनी जेब में हाथ डालना चाहा, भागवत ने तुरन्त ही उसके हाथ पर गोली चला दी और कड़क कर कहा—"हाथ ऊंचे करो कर्णसिंह !"

कर्णसिंह ने हाथ ऊंचे कर लिए तो तीनों व्यक्ति उसके निकट पहुँचे । अजयसिंह ने आगे बढ़ कर उसकी सारी जेबों में से जो जो कुछ प्राप्त हुआ, निकाल लिया । प्राप्त सामग्री में दो भरे हुए रिवाल्वर, चार छोटे बम और कुछ तारें थीं । समस्त सामग्री को अपने जेबों में भरते हुए अजयसिंह ज्यों ही पीछे हटा तो झाड़ियों के पीछे से दो बार धाएं-धाएं की भयंकर ध्वनि हुई । प्रवेश ने झपट कर कर्णसिंह को पटक कर धर दबाया । अजयसिंह ने पीछे मुड़ कर देखा, तो बन्दूक की दोनों गोलियां भागवत की पसलियों को पार करती हुई निकल गई थीं । और वह रक्त से लथ-पथ पृथ्वी पर पड़ा दम तोड़ रहा था । अब तक प्रवेश ने कर्णसिंह को भली प्रकार बांध लिया था । वह और अजयसिंह इधर-उधर देख ही रहे थे कि उनके दस-बारह साथी सैनिक वहां आ पहुँचे । अजयसिंह ने सत्तापूर्ण स्वर में कहा—"हरिया ! तुम लोग इस धूर्त्त को इसी प्रकार बंधे बंधाए अपने शिविर में ले जाओ । हम अभी थोड़ी ही देर में तुम्हें मिलेंगे ।"

यह कहते ही वह जिधर से गोलियां बरसी थीं, उसी ओर त्वरित गति से जाते हुए कहने लगा— "आओ प्रवेश ! चलो हम

सायंकाल का समय था, आकाश की लालिमा धरती के पदार्थों को भी रक्त-रंजित बना रही थी। मृत्यु की सी स्तब्धता अपना काला आंचल पसारे धरती को अपने बीच में समेटने आ रही थी। कुछ समय पूर्व के मानवी संघर्ष ने वनस्पतियों और पशु-पक्षियों तक को भी भयभीत सा कर दिया था। इस मूक वातावरण में यदि कोई स्वर सुनाई दे रहा था तो लौहिक-यन्त्रों का और कर्णसिंह का आतंकमय आदेश। वह अपने कार्यकर्त्ताओं के पीछे हाथ धोकर पड़ा था। उसके लिए एक क्षण का भी विलम्ब मृत्यु जैसा प्रतीत होता था। मुक्ति-प्रदेश और उसके निर्माताओं एवं निवासियों को एक क्षण में भस्म कर देने वाले द्रव्य और विस्फोटक पदार्थ लम्बी-लम्बी सुरंगों द्वारा विछाए जा रहे थे। कार्य लगभग पूर्ण होने को था। कुमारगिरि ने कर्णसिंह के निकट अपना अश्व रोकते हुए कहा—"क्यों, कितना समय शेष है?"

कर्णसिंह ने उद्विग्न होते हुए कहा—

"गुरुदेव! आपके यहां ठहरने में किसी आपत्ति की आशंका हो सकती है। मैं सिपाही हूं, मुझे अपने प्राणों का मोह नहीं। परन्तु आपके बिना सारी योजना पर पानी फिर जाएगा। आप इस विध्वंसक क्षेत्र से दूर निकल जाइए। मैं बैट्रियों की व्यवस्था करके शीघ्र आपके पास पहुँचूंगा, फिर नियत समय पर आपकी आज्ञानुसार बैट्रियों को परस्पर सम्बद्ध करके बटन दबा दिए जाएंगे।"

उसने कुछ और भी कहने के लिए जो मुंह मोड़ा, तो कुमारगिरि के स्थान पर भागवत दोनों हाथों में दो पिस्तौल ताने खड़ा था। उसके दाएं बाएं दोनों ओर अजयसिंह और प्रवेश खड़े थे। अजयसिंह ने तिरस्कार पूर्ण स्वर में प्रश्न किया—"कहिए महाराज कर्णसिंह

जी ! बटन दबाने में कितना समय शेष रह गया है ? घबराइए नहीं, अब आपको कष्ट नहीं करना पड़ेगा । जाओ प्रवेश, भाई साहब का स्वागत करो । क्या करें कर्णसिह भैया ! इस ऊजड़ बन में ऐसे पदार्थ भी तो उपलब्ध न होंगे, जिन से तुम्हारा उचित समादर किया जा सके । चलो, अपने शिविर में ही ले जाकर आपका अभिषेक किया जा सकेगा ।"

कर्णसिह सिर झुकाए खड़ा था । परन्तु कभी कभी इधर उधर दृष्टि अवश्य डाल लेता था । उसने ज्यों ही अपनी जेब में हाथ डालना चाहा, भागवत ने तुरन्त ही उसके हाथ पर गोली चला दी और कड़क कर कहा--"हाथ ऊंचे करो कर्णसिह !"

कर्णसिह ने हाथ ऊंचे कर लिए तो तीनों व्यक्ति उसके निकट पहुँचे । अजयसिह ने आगे बढ़ कर उसकी सारी जेबों में से जो जो कुछ प्राप्त हुआ, निकाल लिया । प्राप्त सामग्री में दो भरे हुए पिस्तौल, चार छोटे बम और कुछ तारें थीं । समस्त सामग्री को अपने झोलों में भरते हुए अजयसिह ज्यों ही पीछे हटा तो झाड़ियों के पीछे से दो बार धाएं-धाएं की भयंकर ध्वनि हुई । प्रवेश ने झपट का कर्णसिह को पटक कर धर दबाया । अजयसिह ने पीछे मुड़ कर देखा, तो बन्दूक की दोनों गोलियां भागवत की पसलियों को पार करती हुई निकल गई थीं । और वह रक्त से लथ-पथ पृथ्वी पर पड़ा दम तोड़ रहा था । अब तक प्रवेश ने कर्णसिह को भली प्रकार बांध लिया था । वह और अजयसिह इधर-उधर देख ही रहे थे कि उनके दस-बारह साथी सैनिक वहां आ पहुँचे । अजयसिह ने सत्तापूर्ण स्वर में कहा—"हरिया ! तुम लोग इस धूर्त्त को इसी प्रकार बंधे बंधाए अपने शिविर में ले जाओ । हम अभी थोड़ी ही देर में तुम्हें मिलेंगे ।"

यह कहते ही वह जिधर से गोलियां बरसी थीं, उसी ओर त्वरित गति से जाते हुए कहने लगा— "आओ प्रवेश ! चलो हम

दोनों ही आक्रमणकारी को खोज निकालेंगे। हां, हरिया ! हमारे पहुँचने पर ही भागवत भैया का दाह संस्कार किया जाएगा। यह वीर पुरुष भी हमें ऐसे संकट-काल में छोड़ गया।"

दूसरे ही क्षण प्रवेश और अजयसिंह के घोड़े विद्युत गति से झाड़ियों में जा घुसे प्रवेश ने उस झुटपुटे में ही अग्रगामी अश्वारोही को पहचानते हुए कहा— "अजयसिंह जी, यह कुमारगिरि था। वह देखो, धूर्त्त भागा जा रहा है। चलिए आज इसे नहीं छोड़ेंगे।"

इसके पश्चात् आखेट और आखेटकर्त्ता सिर हथेली पर रख कर अपने अपने अश्वों को उड़ाए लिए जा रहे थे कि एकाएक उन्हें कुमारगिरि का अश्व रुकता हुआ दिखाई दिया। उन्होंने सीधे उसका पीछा करने की अपेक्षा बाईं ओर से एक घाटी की ओट में से होकर उसे बन्दी बनाने के लिए घोड़े बढ़ा दिए। ज्यों ही वे कुमारगिरि से लगभग दस पग के अन्तर पर घाटी के पीछे खड़े हुए, तो उन्हें एक तीखा स्वर सुनाई दिया। जैसे कोई व्यंग्य पूर्ण तीक्ष्ण स्वर में कह रहा था— "बहुत भाग चुके गुरुदेव ! अब अधिक भागने का कष्ट न करना होगा।"

कुमारगिरि ने रोषपूर्ण स्वर में कहा—"हट जाओ हरिभाऊ ! शत्रु मेरा पीछा कर रहा है।"

हरिभाऊ ने उलाहना देते हुए कहा— "तो कापुरुषों की भांति पीठ दिखा कर क्यों भागते हो ? समस्त साथियों को मरवाकर, सारे देश में आग लगवाकर अब कौन सी योजना चले हो ? मैं तुम्हें नहीं भागने दूंगा।"

इस पर कुमारगिरि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर ओजपूर्ण स्वर में गरजते हुए कहा— 'मेरे मार्ग से हट जाओ हरिभाऊ ! नहीं तो व्यर्थ में जान गंवाओगे।'

हरिभाऊ ने कहा—"तुम्हारी कुमन्त्रणा से मानवता के प्रति

जितने अपराध व अत्याचार मैंने किए है, उनके बदले यदि मृत्यु भी आ जाए तो क्या शोक है ? अब मैं जीकर ही क्या करूंगा ? मेरे और मेरे भाई बन्धुओं का सर्वस्व तुम्हारी इच्छा और महत्वाकांक्षा पर न्यौछावर हो गया। अब की तुमने एक पग भी आगे बढ़ाया, तो यह मत भूलना कि मेरी पिस्तौल में भी सभी की सभी गोलियां तुम्हारे लिए सुरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त तुम्हारी गंजी खोपड़ी में इन्हें घुसते हुए भी कोई अधिक परिश्रम न करना होगा।''

अभी वह अपना वाक्य भी पूर्ण रूप से न कह पाया था कि कुमारगिरि की पिस्तौल से एक सनसनाती हुई गोली निकल कर उसकी जांघ में जा घुसी। तदनन्तर दोनों ओर से एक एक गोली और चली तथा उसके साथ ही दोनों व्यक्ति पृथ्वी पर लेटते हुए दिखाई दिये।

लगभग दो तीन क्षण घाटी की ओट से चुपचाप इन दोनों गुरु-शिष्यों का कौतुक देखने के पश्चात् अजयसिंह ने किञ्चित् आगे बढ़ते हुए कहा -"चलो प्रवेश ! शत्रु अपने आप ही समाप्त हो गया।'

प्रवेश ने अजयसिंह को पकड़ते हुए कहा—"सावधान, अजयसिंह जी ! यह कुमारगिरि है। क्या मालूम मरा मराया जी उठे। कुछ क्षण और यहीं ठहरकर देखते जाइए।"

प्रत्युत्तर में अजयसिंह ने बड़े बड़े दो पत्थर उठा कर दोनों मृतकों के दे मारे। मृतक तो अन्त मृतक ही थे। जब दोनों में से किसी को भी पत्थर लगने की कोई पीड़ा अनुभव न हुई तो प्रतिक्रिया का प्रश्न ही नहीं उठता। अजयसिंह ने प्रवेश का हाथ पकड़ कर घंसीटते हुए कहा—"आ जाओ भैया, अब तो दोनों ही ठण्डे हो गये। एक एक को घोड़ों पर लाद कर ले चलो अपने शिविर की ओर। और नहीं तो कर्णसिंह अपने गुरु के अन्तिम दर्शन तो कर लेगा। भई, वह मेरा भाई जो हुआ। भला मैं उसकी इस इच्छा को क्यों न पूर्ण करूंगा।''

तत्पश्चात् दोनों मुस्कराते हुए और सतर्क दृष्टि से देखते हुए मृतकों के समीप जा पहुंचे। उन्हें हिला-डुला कर देखा, फिर उनके वस्त्रों की छान-बीन की और घोड़ों पर लाद कर वहां से चल दिए।

२६

कुमारगिरि और हरिभाऊ का दाह संस्कार कर चुकने के बाद प्रवेश और अजयसिंह, कर्णसिंह तथा उसके गण्यमान्य सहयोगियों को साथ लेकर मुक्ति-प्रदेश के मुख्य नगर में आ पहुँचे जहां जनता पहले से ही अजयसिंह और प्रवेश का स्वागत करने के लिए एकत्रित हो कर चौपाल में खड़ी थी। बन्दियों को केसरी और नीरू के निरीक्षण में वन्दीगृह ले जाने की आज्ञा देकर अजयसिंह प्रवेश का हाथ पकड़ कर जनसमूह के ठीक बीच में जा पहुँचे। अनेक निश्चित स्वरों में उनका और मुक्ति-प्रदेश का जय-जयकार हुआ। कुछ देर तक इसी प्रकार उत्सव सा चलता रहा। फिर अजयसिंह ने ऊंचे स्थान पर खड़े हो कर शान्त व गम्भीर स्वर में कहा—

"हमने गत संघर्ष में बहुत कुछ खो कर गणतन्त्र की रक्षा की है। मुक्ति-प्रदेश निःसंदेह हम सब के मिश्रित परिश्रम से आदर्श गणतन्त्र बन जाएगा। किन्तु हमारे दुर्भाग्य से इस गणतन्त्र के निर्माता हमारे बीच में न रहे। हमारी असावधानी अथवा समय की विकटता ने हमें इस प्रकार अस्त-व्यस्त सा कर दिया था, कि हम कई कई सप्ताह तक अपने भाग्य-विधाता के दर्शन करने के भी अयोग्य हो गए थे। और तो और हमें उनके अन्तिम दर्शन भी न हो पाए।"

अन्तिम शब्दों के साथ ही उसके नेत्रों में अश्रु छलछला आए। कण्ठ रुक जाने के कारण एक भी शब्द और उनके मुख से न निकल सका। प्रवेश की आंखों में जननायक की स्मृति आ जाने पर अश्रु तो न आए, पर स्फुलिङ्ग अवश्य निकलने लगे। उसने क्षुब्ध तथा क्रुद्ध स्वर में कहा—

"यह बापू की अति मानवता का परिणाम है। इससे बड़ा आघात इस नवजात मुक्ति-प्रदेश पर और क्या हो सकता है? वास्तव

में शत्रु ने अपने जीवन के अन्तिम प्रहरों में भी हमारी कटि-भंग कर देने का प्रयास किया है। क्या ऐसे देश-द्रोहियों और दुष्टों के लिए कड़े से कड़ा दण्ड अनिवार्य नहीं ?''

जन-समूह ने मिश्रित स्वर में प्रवेश के वाक्यों का समर्थन करते हुए कहा— ''ऐसे हत्यारों को शूली पर चढ़ाना चाहिए। प्रवेश भैया ! हम मुक्ति-प्रदेश के कर्णधारों से अनुरोध करते हैं कि इस प्रकार हा-हत्या और नृशंसता का प्रसार करने वालों के लिए भी प्रदेश के विधान में कोई धारा बनाई जाए।''

फिर एक दो व्यक्तियों ने तो जैसे चीखते हुए कहा—''प्रवेश भैया ! हम आपसे और सरदार अजयसिंह से प्रार्थना करते हैं कि असहाय ग्रामीणों और नागरिकों पर दिनों-दिन बढ़ते जा रहे अत्याचारों की रोक थाम कीजिए। लुटेरों और हत्यारों के हमारे ऊपर निर्दयता व निर्लज्जता पूर्ण आक्रमण होते हैं। हम लोग कई महीनों से निराश्रित एवं पीड़ित हैं।''

अजयसिंह ने प्रश्न किया— ''क्या हमारे इस क्षेत्र में भी आपके पोषण की व्यवस्था नहीं हो सकी ?''

एक व्यक्ति ने कहा— ''नहीं सरदार ! इसमें मुक्ति-प्रदेश के इस क्षेत्र का दोष नहीं। वास्तव में हम जैसे अनेकों व्यक्ति शत्रु द्वारा अधिकृत क्षेत्रों से धकेले गए हैं। शीघ्रातिशीघ्र हमारे लिए कुछ न कुछ व्यवस्था कीजिए।''

इसी प्रकार अन्य कई व्यक्तियों ने भी करुण स्वर में सहायता के लिए प्रार्थना की। अजयसिंह ने उन लोगों को सान्त्वना देते हुए कहा—''आप लोग निश्चिन्त रहिए। जो कुछ भी हम आपके लिए कर सकेंगे शीघ्र करेंगे। आज ही हम लोग परस्पर विचार विनिमय करके कल मध्याह्न से पूर्व ही अपना निर्णय सुना देंगे।''

यह कहते ही दोनों व्यक्ति वहां से चल दिए। और लगभग एक

घण्टा नगर का निरीक्षण करने के पश्चात् मां के समक्ष जा उपस्थित हुए। प्रणाम करने के उपरान्त अजयसिंह ने मां के चरणों में बैठते हुए कहा—"मां ! तुम्हारे पुत्रों ने मुक्ति-प्रदेश के शत्रुओं को परास्त कर दिया है परन्तु जननायक........।"

मां ने एकाएक रुग्ण शैय्या से उठते हुए कहा— "जननायक हमसे छीन लिए गए। निश्चय ही उनका अभाव हमें प्रतिक्षण खलता है। परन्तु हमारे लिए यह गौरव की बात भी है कि हमारा नेता कर्मभूमि में निडरता से कार्य करता हुआ गया है। उस महामानव के अन्तिम वाक्य जो शशांक ने मुझे बताए थे, वह अब भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं। उन्होंने मृत्यु शैय्या पर अन्तिम श्वास लेते हुए कहा था— 'मुझ जैसे सहस्रों जननायक न्यौछावर करके भी यदि मुक्ति-प्रदेश के असंख्य प्राणियों की रक्षा हो सके, और यह प्रदेश शत्रु-विहीन होकर समृद्धिशील, उन्नत एवं शान्तिमय बन सके, तो भी कोई मंहगा सौदा नहीं। मेरी ममता में फंसकर अपने कर्त्तव्य का विस्मरण न करो।' इस लिए मेरे बच्चो ! यदि तुम्हारे हृदय में कणमात्र भी श्रद्धा उस महाप्राण के लिए है, तो अपने नेत्रों में उमड़ रहे अश्रुओं को रोक लो, इस बहते हुए स्नेह जल से गत संघर्ष द्वारा सन्तप्त व पीड़ित प्राणियों को सन्तोष तथा शान्ति प्रदान करो।"

प्रवेश ने मां के अति निकट हो कर चीत्कार सा करते हुए कहा—"मेरे कलेजे में तो आग धधक रही है मां ! जिन्होंने हमारे बापू को हम से छीन लिया, भोले-भाले, असहाय नर-नारियों पर जी खोल कर अत्याचार किया, उनसे एक बार अच्छी तरह निबटने को जी चाहता है। मां, मुक्ति-प्रदेश के विधान में अत्याचारियों और आतताइयों के लिए दण्ड क्यों नहीं रखा।

मां अभी उत्तर देने को ही थी, तो शशांक ने प्रविष्ट होते हुए कहा—"क्योंकि जननायक प्रतिकार और प्रतिहिंसा की भावना से

उदासीन थे। वह हत्यारे की हत्या करने की अपेक्षा उसे प्रेम का पाठ कर क्षमा कर देना ही उत्तम मानते थे।"

प्रवेश ने तर्क करते हुए कहा—"इसी लिए तो उनकी इस क्षमा ने ही उन्हें हड़प कर लिया। यदि एक भूल उन्होंने की है तो उस का परिणाम देखकर भी क्या उस भूल का निवारण न करेंगे? वह हमारे पूज्य थे। उनके ही बताए मार्ग पर चलना हम अपना कर्त्तव्य मानते हैं। परन्तु मां, उनकी इस अतिमानवता को हम कहां तक निभा पाएंगे यह हमें नहीं मालूम।"

मां ने शान्त स्वर में पूछा—"तो फिर क्या चाहते हो?"

प्रवेश के उत्तर देने से पूर्व ही शशांक ने विनीत स्वर में कहा—"मां! जो प्रश्न तुमने हम से किया है, उसी का उत्तर पाने के लिए तो हम तुम्हारी शरण में आए हैं। हमारे लिए अब क्या आज्ञा है?"

प्रवेश ने एकाएक कहा—"अजयसिंह जी! कुछ भी हो, हमें जनता को न्याय देना ही होगा। कर्णसिंह और उनके सहयोगियों ने जो क्षति उसे पहुँचाई है उसकी पूर्ति भी तो करनी होगी।"

शशांक ने प्रश्न किया—"तो क्या कर्णसिंह आदि को दण्ड दे देने से वह पूर्त्ति हो जाएगी?"

प्रवेश ने इस बार अजयसिंह की ओर देखा। अजयसिंह कुछ कहने को ही था कि अंजना ने भीतर पहुँचकर ओजपूर्ण स्वर में कहा—

"अवश्य हो जाएगी। ऐसे समय में अपराधी को उसके अपराध का दण्ड देना क्षति-ग्रस्तों को निःसंदेह सन्तोष प्रदान करेगा और उस सन्तोष से उसकी किसी न किसी अंश में पूर्त्ति अवश्य हो जाएगी?"

उसके बाद उसने अपने पिता अजयसिंह के निकट जाकर अभिवादन किया और आशीर्वाद पाया। फिर प्रवेश को सम्बोधित करती हुई बोली—

"कर्णसिंह और उसके सहयोगियों को कड़े निरीक्षण में रखा है न

प्रवेश जी ?"

प्रवेश ने कहा—"क्यों नहीं। वे तो इस समय हमारे लिए अमूल्य पूंजी के समान हैं। केसरी और नीरू जैसे बलिष्ठ व्यक्तियों के निरीक्षण में रखा है। आज तो काश्मीरी और हरिया भी आ गए हैं।"

इतने में रमा, शीला और प्रो० कमलकान्त ने प्रविष्ट होते हुए कहा—"और हम लोग भी।"

तत्पश्चात् सभी ने मां को झुककर प्रणाम किया। फिर शशांक, अजयसिंह, प्रवेश एवं अंजना को भी अभिवादन करते हुए सबके सब यथास्थान बैठ गए। बैठते ही प्रो० कमलकान्त ने प्रश्न किया—

"तो इस समय कौन से विषय पर वाद-विवाद चल रहा है ? क्या हमें भी सुनने का अधिकार है न ?"

मां ने गद्गद् स्वर में उत्तर दिया—

"आत्मीयता और गोपनीयता तो एक साथ नहीं रह सकती। तुम लोग सब आत्मीय हो। फिर छुपाव कैसा ? प्रत्युत् कुछ न कुछ विचार ही तो दोगे। विद्वान् व्यक्ति हो। मैं तो अनपढ़ हूं.........।"

प्रो० कमलकान्त ने उक्त शलाध्या से लज्जित से होकर कहा—"जो विद्या आपने पढ़ी है उसके लिए तो हमें सात जन्म तक और साधना करनी पड़ेगी।"

इस पर सभी मुस्करा दिए। प्रवेश ने एकाएक अपने विषय पर आते हुए प्रश्न किया—

"प्रोफेसर साहब ! लीजिए आप ही से पूछते हैं। कर्णसिंह और उसके सहयोगियों के साथ क्या व्यवहार करना चाहिये ? इसके अतिरिक्त देश के कोने कोने में जो अराजकता बढ़ती जा रही है, उसकी रोक-थाम के लिए कैसा पग उठाना चाहिए ?"

प्रो० कमलकान्त के उत्तर देने से पूर्व रमा ने कहा—"इस बार तो उन्हें कड़े से कड़ा दण्ड देना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों को क्षमा करके

पश्चात्ताप करना होता है।"

अंजना ने बात पर ज़ोर देते हुए कहा—"पश्चात्ताप तो हम अब भी कर रहे हैं बहिन, पर इससे क्या होता है ? मैं समझती हूं, हमें इस विवाद को अधिक दीर्घ न करते हुए संक्षेप में ही निर्णय कर लेना चाहिए।"

कमलकान्त ने कहा—"इसके लिए तो मेरा यही प्रस्ताव है कि प्रदेश के विधान में दण्ड की उचित व्यवस्था भी कर देनी चाहिए। उसी के अन्तर्गत इन अपराधियों का भी स्वमेव निर्णय हो जाएगा। दण्ड के बिना अनुशासन नहीं रहता। अत: मेरी प्रार्थना है कि इस पर अवश्य विचार किया जाए।"

इस पर अंजना ने शान्त स्वर में मां से प्रार्थना करते हुए कहा—"मां! प्रशासन-विहीन राष्ट्र की जड़ें सदा ही खोखली रह जाती हैं। तुम दयामयी हो। बापू की अतिमानवता का भी तुम पर विशेषकर प्रभाव पड़ा है। परन्तु यह समय की पुकार है, युग की मांग है। हमें इस गण-तन्त्र प्रणाली को जीवित और उन्नत रखने के लिए अराजकता दूर करनी होगी, और वह हाथ जोड़ने से नहीं होगी; दण्ड से होगी। जनता का पालन-पोषण कीजिए। उसकी सुख शान्ति के लिए हमें अपना सुख-चैन त्याग देना होगा। परन्तु अपने विधान को सत्ता द्वारा ही स्वीकृत कराया जा सकता है!"

मां ने चिन्तित होते हुए कहा—"तो क्या हम जननायक के मार्ग को छोड़ देंगे ? तुम्हारी दृष्टि में उनका विश्वास क्या वृथा था ?"

प्रवेश ने उत्तर दिया—"हम उनके विश्वास को नहीं झुठलाते मां, और न ही हमारा उद्देश्य उनके विचारों के विपरीत चलने का है। परन्तु यह मानना ही होगा कि इस विषय में उनके मार्ग पर अग्रसर होकर हम देश को सुव्यवस्थित न कर सकेंगे। प्रत्युत उन्हीं की भांति मिटा दिए जाएंगे। और मैं समझता हूं, ऐसी विकट परिस्थिति में

हमारा इस प्रकार मिटना अत्यन्त ही मूर्खतापूर्ण सिद्ध होगा।"

इस बार अजयसिंह ने प्रवेश का समर्थन करते हुए कहा—"निःसंदेह, जननायक की शत्रु-वत्सल भावना हमारे लिए घातक सिद्ध होगी। इस समय तो हमें साम-दाम, दण्ड-भेद किसी भी प्रकार से गणतन्त्र को बनाए रखना होगा, नहीं तो हमारे शासन की दयालुता अनेकों कर्णसिंह और कुमारगिरि उत्पन्न कर देगी।"

इस बार मां ने सभी को तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"परिस्थिति के अनुसार मैं तुम्हारे दण्ड विधान को स्वीकार करती हूं, परन्तु मेरे मस्तिष्क में यह बात अवश्य खटकती है, कि इस दण्ड का सर्वसाधारण पर क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या वह इसे तानाशाही न कहेंगे?"

अंजना ने कहा—"वह कैसे मां? यदि हम जनता की अनुमति से चलेंगे तो उसके हृदय में शंका क्यों उत्पन्न होवेगी? इस बात का विश्वास रखो मां! हम कोई भी ऐसा कार्य नहीं करेंगे, जिससे जनता में हमारे प्रति अविश्वास उत्पन्न हो। हमें तो इस विधान के अन्तर्गत निर्दोष सर्वसाधारण को नहीं, अपितु उसके अपराधी को दण्ड देना होगा। और फिर जब व्यवस्था ठीक हो जाएगी, तो यह अवसर ही नहीं आने का। क्योंकि मुद्राओं के बहिष्कार से हमारी जनता तो निश्चय ही निर्लोभ और श्रमप्रिय होगी। साधारण झगड़े तो पल-पल पश्चात् खड़े नहीं होंगे।"

इसके पश्चात् मां कुछ क्षण तक आंखें मूंद कर लेटी रहीं। अजयसिंह ने धीमे स्वर में अंजना से पूछा—"क्या इनका स्वास्थ्य अभी ठीक नहीं हुआ?"

अंजना ने कहा—"बापू के निधन ने इनके हृदय पर गहरा आघात किया है। कई बार तो समाप्त होते होते बची हैं। अभी थोड़ी देर हुई आपके आने से पूर्व ही कुछ क्षण संज्ञाहीन सी पड़ी रहीं।"

एकाएक मां ने नेत्र खोल दिए और उठकर गम्भीर स्वर में कहने लगीं—"अंजना बेटी ! मुझे तुम पर विश्वास है। तुम निश्चय ही ऐसा कोई कार्य नहीं करोगी; जिससे कि हमारे आदर्श लांछित हों। इस विषय में मैं तुम्हें पूर्ण अधिकार देती हूं। जैसे भी उचित समझो, इन सब लोगों के सहयोग से देश की व्यवस्था में सुधार करो। मेरा शरीर इतना अशक्त हो गया है कि अब कोई भी बोझा उठाने के लिए असमर्थ है। मैं तो केवल तुम सबको एक बार अपने अपने कर्त्तव्य में जुटे हुए देखना चाहती हूं।"

इस पर शशांक ने मां को एक औषधि पिलाते हुए कहा–"तुम तो अमर हो मां ! तुम्हारे ओज से ही तो शक्ति प्राप्त करके हम कुछ कर पाते हैं। तुम भी कहीं बापू की तरह हमें मार्ग में ही न छोड़ देना।"

इस पर लगभग सभी की आंखों में आंसू उमड़ आए। शशांक ने पुनः कण्ठ साफ़ करते हुए कहा—"मां, तुम सदैव हमारी आंखों में उमड़ते हुए आंसुओं का निषेध करती हो। परन्तु यह भी तो न भूलो कि यदि यह अश्रु नेत्रों से उमड़ने की अपेक्षा धूम्र बनकर हमारे अन्तःस्तल पर जम गए तो हम जड़वत् मूक और विक्षिप्त बन जाएंगे। हमारी चेतना उद्विग्न हो उठेगी।"

अंजना ने कवि के विषय को परिवर्तित करते हुए कहा—"तो मां ! हम कल ही अपने विधान से सर्वसाधारण को सूचित कर देंगे। इसके लिए मैं सभी उपस्थित सहयोगियों के सम्मुख तुम्हारे चरण छू कर शपथ ग्रहण करती हूं, कि मन, वचन और काया से मुक्ति-प्रदेश की जनता और उसके आदर्श का संरक्षण करूंगी।"

तदन्तर मां के सम्मुख झुक कर पुनः कहने लगी—'मुझे आशीर्वाद दो मां ! मैं तुम्हारे और बापू के स्वप्न को सत्य करने के लिए सामर्थ्य प्राप्त कर सकूं।"

फिर उसने अन्य उपस्थित व्यक्तियों की ओर देख कर कहा—"मैंने आप लोगों के विश्वास पर ही यह उत्तरदायित्व ग्रहण किया है। क्या मैं आशा रखूं कि निराशा-पूर्ण अमावस्या के अन्धकारवत् वातावरण को पार करके उज्ज्वल और आशापूर्ण स्वर्ण-विहान में प्रविष्ट होने में आप भी मन, वचन और काया से मुझे सहयोग देंगे !!"

शशांक, अजयसिंह, प्रवेश आदि सभी ने मिश्रित स्वर में उर्ध्वबाहु होते हुए कहा—"हम भी इन पुनीत चरणों को स्पर्श करके शपथ ग्रहण करते हैं कि हम आपके आदेश का अक्षरश: पालन करेंगे।"

इसके पश्चात् मां ने भी दोनों हाथ ऊपर उठा कर आशीर्वाद देते हुए कहा—"तो आओ, मेरे बच्चो, अब तुम्हें कोई भी शक्ति असफल नहीं बना सकेगी ! जाओ और अभी से अपने अपने कार्य में जुट जाओ। इस समय का एक एक क्षण तुम्हारे लिए अमूल्य है। आगे बढ़ो, सुखद स्वर्णिम विहान तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। वह अवश्य ही तुम्हारा पथ आलोकित करेगा। जय-जननायक !"

मां का आशीर्वाद प्राप्त करके प्रो० कमलकान्त और शीला के अतिरिक्त सभी वहां से उठ कर चल दिए। शशांक ने पुन: एक बार लौट कर कमलकान्त से कहा—"प्रो० साहब ! यह औषधि पड़ी है और इसके लिए लिखित समय विभाग। मां को पिला देना। हमें कुछ समय लग जाएगा।"

और वह तीव्र गति से चला गया।

अगले दिन मध्याह्न के पश्चात् अंजना के नेतृत्व में मुक्ति-प्रदेश के विशाल गणतन्त्र भवन में एक वृहत् सभा आयोजित हुई। सर्वसाधारण को भी इस सभा में निमन्त्रित किया गया था। नीरू और केसरी के निरीक्षण में कर्णसिंह आदि बन्दी एक चबूतरे पर बैठे थे। अंजना के दोनों पार्श्वों में शशांक, प्रवेश, अजयसिंह एवं कमलकान्त प्रभृति मुक्ति-प्रदेश के प्रमुख अधिकारी तथा अतिथि विराजमान थे। जन-समूह में से कुछ व्यक्तियों ने उच्च स्वरों में अनेक प्रकार के जय-घोष किए। बीच में से एक बलिष्ठ व्यक्ति ने चबूतरे की ओर बढ़ते हुए दायां हाथ ऊपर उठा कर ओजपूर्ण स्वर में जयघोष किया—"महादेवी अंजना की जय ! महादेवी अंजना की जय !!"

अंजना ने गंभीर दृष्टि से अपनी दोनों ओर बैठे व्यक्तियों को देखा, फिर सम्मुख खड़े बलिष्ठ व्यक्ति की ओर जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"सदाशिव ! जयघोष ही करना है तो मुक्ति-प्रदेश का करो। मानव की अपरिमित शक्ति से इसकी अमरता का वरदान मांगो। मेरा अस्तित्व तो मानवता की परिधि में ही लवलीन हो जाने को आतुर रहता है। वास्तव में गणतन्त्र का विधान मानव को देवी और देवता की उपाधि न देकर केवल उसे मानव की संज्ञा देने की ही आज्ञा देता है। जननायक के निधन के पश्चात् हम और आप तो कार्यकर्त्ता मात्र हैं। हमें इन देवी-देवताओं की आडम्बरमय उपाधियों से अपने आपको मुक्त रखना है। मैं ऊँची चौकी पर किसी राजतन्त्र की अधिष्ठात्री अथवा एकाधिकारिणी बन कर नहीं बैठी। मेरा कार्य-क्षेत्र राजमहलों में सीमित नहीं है। मुझे तो आप लोगों के ही साथ पग मिलाकर उन्नति की ओर अग्रसर होना है। सदाशिव भाई ! राजतन्त्र के राजसी शिष्टाचारों से अवकाश प्राप्त करके सरल और स्वाभाविक ढङ्ग से

एक दूसरे के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार करना होगा। पूज्य मां के आदेश से प्रदेश में बढ़ रही अराजकता को दूर करने के लिए कुछ नवीन योजनाएं निर्मित की गई हैं। उनके विषय में कविवर शशांक आपको अभी बताएंगे। यदि आप लोगों की भी अनुमति प्राप्त हो सकी, तो इन प्रस्तावों को विधान में समाविष्ट कर दिया जाएगा, अन्यथा नहीं। देश की अव्यवस्था का विचार करते हुए आपको अत्यन्त दूरदर्शिता और गम्भीरता से इन प्रस्तावों का निर्णय देना होगा। ध्यान रहे मुक्ति प्रदेश के विधानानुसार किसी भी प्रस्ताव को कार्यान्वित नहीं किया जा सकता, जब तक उस पर सर्वसाधारण की स्वीकृति की छाप न लग जाए। अब मैं कविवर से अनुरोध करती हूं कि वह उक्त प्रस्तावों को आपके सम्मुख प्रस्तुत करें।"

अंजना का संकेत प्राप्त करके शशांक उठ खड़ा हुआ। उसने अतीव शान्त व मधुर स्वर में जनता की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से निहारते हुए कहा—

"राष्ट्रमाता के सन्देश से जननायक के निधन के पश्चात् अंजना देवी को जननेत्री घोषित किया जाता है और आज से प्रदेश का विधान इन्हीं के संरक्षण में प्रचलित किया जाता है। इस बार विधान में अपराधियों के लिए दण्ड के समाविष्ट किए जाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है। जननेत्री का विचार है कि देश की व्यवस्था सुधारने के लिए अपराधियों को कड़े से कड़ा दण्ड दिया जाए। आततायियों, अत्याचारियों एवं हत्यारों के लिए प्रत्येक नगर और प्रत्येक ग्राम के चौराहे में शूली गाड़ दी जाए। इसके अतिरिक्त इस प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर युद्ध-बन्दियों का न्याय-विचार किया जाएगा।"

अभी वह कुछ और कहने को ही था कि कर्णसिंह ने भीषण हुँकार करते हुए उत्तेजक स्वर में कहा—"मैं तुम लोगों से पूछता हूं

क्या यही है तुम्हारा मुक्ति-प्रदेश ? इसमें और राजतन्त्र में अन्तर ही क्या है ? उसमें तो फिर भी किसी सीमा तक युद्ध-बन्दियों से सद्व्यवहार किया जाता है। परास्त नृपति प्रायः अबध्य माने जाते हैं और यहां मैं देखता हूं कि पुराने वैमनस्य के कारण हम लोगों की हत्या करके अपना मार्ग निष्कंटक बनाने के लिए ही तुम लोगों ने अहिंसा व्रत को भंग करते हुए विधान में दण्ड का समावेश किया है। मैं कहता हूं, क्या जरूरत थी इतना बड़ा आडम्बर रचाने की ? जननेत्री और राष्ट्रमाता आदि नए नए शब्दों का आविष्कार करने की ? यह तो सीधी सी बात है तुमने मुझे पराजित किया है, इसी लिए तुम्हें विजेता के अधिकार भोगने की सुविधा है। इस समय तुम जो चाहो कर सकते हो। भोली-भाली जनता को क्यों चक्कर में डालते हो ? सीधे से क्यों नहीं कह देते कि हम राजा हैं और हमारे प्रति विद्रोह करने वाले को शूली पर चढ़ा दिया जाएगा।"

शशांक ने ओज पूर्ण गम्भीर वाणी में कहा—"राजतन्त्र में किसी भी प्रस्ताव पर जनता से अनुमति नहीं प्राप्त की जाती। परन्तु हमारे तो यहां कोई भी धारा जनता की उपेक्षा करने पर नहीं लागू की जा सकती।"

कर्णसिंह ने वाक्योच्छेद करते हुए कहा—"तभी तो तुम्हारे सभी कार्यों में कृत्रिमता फूट-फूट कर दिखती है। जनता की अनुमति तो मात्र कहने भर को होती है। इतने बड़े प्रशासन में और शूली की की छत्र-छाया में शासकों के प्रस्ताव को अस्वीकृत करके कौन सर्वनाश को निमन्त्रण देगा ? वास्तव में तो हत्यारे तुम हो, जो शताब्दियों से चले आ रहे शिवालक के राजसिंहासन को नष्ट करके अपना आधिपत्य स्थापित करने में संलग्न हो। असंख्य प्रजा-जनों की हत्या का भार तो तुम्हारे कन्धों पर है, परन्तु यह सब कहना व्यर्थ है। इस समय तुम सत्ता के मद में अन्धे हो रहे हो। तुम्हारा प्रतिहिंसक

हृदय विरोधी को शूली पर लटकाने के लिए मचल रहा होगा। तुम्हें इसी में श्रेष्ठता दिखाई दे रही होगी। मैं जनता से पूछना हूं कि मुक्ति प्रदेश के बन जाने से उन्हें आज तक ऐसा कौन सा सुख मिला, जो हमारे राज्यकाल में प्राप्य नहीं था ?"

जनता में से एक व्यक्ति ने उत्तर दिया—

"तुम्हारे राज्यकाल में जनता को तुम्हारे और पूंजीपतियों के सम्मुख भिखारी बनकर गिड़गिड़ाना होता था। कृषकों और श्रमिकों की खाल नोच-नोच कर तुम उनसे बेगार लेते थे। हम तुम्हारे क्रीत-दास थे। गणतन्त्र में हम स्वाधीन हैं। अपने परिश्रम पर हमें पूर्ण अधिकार प्राप्त है। और फिर तुमने ही कौन सी सौजन्यता दिखा दी ? जनता का कल्याण चाहने वाला क्या निरीह और असहाय नर-नारियों को नृशंसता से कुचलेगा ? उनके अबोध दुधमुहें बच्चों को भाले की नोक पर उछालेगा ? क्या अपने अत्याचारों की कहानी इतनी जल्दी भूल गए ? उत्तर-पश्चिमीय तलहटियों में सड़ रहे कंकालों से पूछो कि उनकी दृष्टि में तुम्हारी सौजन्यता का क्या मोल है ? यदि तुम्हें समय पर बन्दी न बना लिया जाता, तो प्रदेश की बची खुची जनता भी तुम्हारे और कुमारगिरि के उपक्रम से भस्म हो जाती।"

कर्णसिंह ने धृष्टतापूर्वक हंसते हुए कहा—"परास्त होना ही सबसे भयङ्कर अपराध है। आज मैं विजयी होता और तुम बन्दी बन कर मेरे सम्मुख उपस्थित होते, फिर मैं न्यायी होता और तुम अपराधी होते। अब तो कुछ भी विवाद करना व्यर्थ की मत्था-पच्ची है। मैंने जो कुछ किया, अपने अधिकार के लिए किया। अजयसिंह के असमर्थ होने पर इस प्रदेश के राज्य पर मेरा पूर्ण अधिकार था और अपने अधिकार के लिए लड़ना कहां का अपराध है ? फिर युद्ध में हा-हत्या तो हुआ ही करती है। क्या झरनों का बांध खोलकर हमारे

शिविरों को नष्ट नहीं कर दिया गया था ?"

शशांक ने कहा—"तुम्हारे शिविरों में अबोध शिशु और असहाय स्त्रियां नहीं थीं। वहां तो नर-रक्त के प्यासे तुम्हारे अत्याचारी सैनिक थे, जो इस प्रदेश की ईंट से ईंट बजा देना चाहते थे। क्या उन सैनिकों ने निःशस्त्र जनता का निर्दयतापूर्वक रक्त नहीं बहाया था ? जिस प्रदेश की तुम ईंट से ईंट बजाने के इच्छुक थे उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ?"

कर्णसिंह को एकाएक उत्तर न सूझा, उसने फिर भी धृष्टतापूर्ण स्वर में कहा--

"फिर भी मैंने अजयसिंह की तरह अपना स्वाभिमान नहीं बेचा किसी के आगे। अपनी शक्ति से अपने राज्य को न संभाल कर उसने तुम्हारे तलुवे चाटने·········।"

शशांक ने कठोर दृष्टि से उसे देखा और बात काट कर कहा—"कर्णसिंह ! तुम्हारी बुद्धि पर तुषारपात हो गया जान पड़ता है। क्यों स्वाभिमान की पवित्र भावना को कलुषित करते हो ? स्वाभिमान का एक भी कण तुम में यदि शेष होता तो अपने ही वंश पर इस प्रकार निर्लज्जता-पूर्ण आघात करने की चेष्टा न करता। तू ने कितनी बार इन्हें मृत्यु के मुख में ढकेलने का प्रयत्न किया।"

कर्णसिंह ने तिरस्कार से पांव पटकते हुए कहा—"तुम विभीषण को भक्त और श्रेष्ठ कह सकते हो, मैं तो उसे भ्रातृ-द्रोही ही मानूंगा, और वंश-द्रोही के लिए तो कहीं भी कोई प्रायश्चित् नहीं।"

शशांक ने कहा--"परन्तु द्रोह किसने किया, तुमने या अजयसिंह ने ?"

कर्णसिंह ने कहा—"यह हमारा भाई-भाई का झगड़ा था। तुम लोगों को क्या अधिकार था इसमें हस्तक्षेप करने का ?"

शशांक ने कहा—"तुम्हारे झगड़े का प्रायश्चित् तो जनता को

करना पड़ता था। और इससे दिनों-दिन यहां की व्यवस्था बिगड़ती जा रही थी। क्योंकि तुम्हारा संघर्ष तुम तक ही सीमित न रहकर समस्त प्रदेश पर विपत्ति का पर्वत बनकर टूट पड़ने को था। जनता दो पाटोंमें पिस रही थी। इसलिए उसने अपनी निष्कृति का मार्ग खोज निकाला कि राज्याकांक्षा के मूल कारण को ही अस्तित्वहीन बना दिया जाए। और फिर वास्तव में तुम्हारे व अजयसिंह जी के संघर्ष का कारण भी तो विभिन्न दृष्टिकोण था। तुम जनता को व्यक्तिगत सम्पत्ति मानते थे और अजयसिंह जी ने जनता को उसका स्वाभाविक अधिकार दे देना चाहा। यह जनता को स्वतन्त्र व समृद्धिशीला एवं सबला देखना चाहते थे और तुम उनसे बैलों व घोड़ों की तरह हंटरों से पीट-पीट कर काम लेना चाहते थे।"

कर्णसिंह कुछ कहना ही चाहता था कि जनता ने एक स्वर में कहा—"कर्णसिंह को शूली पर चढ़ाया जाए, यह हत्यारा है!!"

इसी प्रकार कर्णसिंह के विरुद्ध और भी अनेकों स्वर गूंज उठे। जननेत्री अंजना ने सत्तापूर्ण स्वर में आदेश दिया—"कविवर! व्यर्थ के विवाद में समय नष्ट न करके दण्ड की व्याख्या कर दी जाये। जनता न्याय चाहती है। कर्णसिंह के प्रति अपना न्याय सुनवा दिया जाए।"

शशांक ने स्वस्थ चित्त से कहा—

"जनता की अनुमति से और मुक्ति-प्रदेश की जननेत्री के आदेश से विधान में दण्ड समाविष्ट किया जाता है और उसी के अनुसार प्रदेश के प्रथम दण्डनायक प्रवेश जी को नियुक्त किया जाता है। इस दण्ड विधान की अनुमति से दण्डनायक को आदेश दिया जाता है कि कर्णसिंह व अन्य बन्दियों को कल प्रातःकाल सूर्योदय के साथ ही शूली पर चढ़ा दिया जाए।"

आज्ञा सुनते ही केसरी व नीरू बन्दियों को वहां से ले गए।

अंजना ने उठ कर दृढ़ स्वर में कहा— "मुक्ति-प्रदेश प्रत्येक निवासी को स्वतन्त्रता प्रदान करता है अपने देश के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ और सच्चरित्र बनने के लिए; परन्तु अत्याचारी, व्यभिचारी और हत्यारे के लिए यहां कोई स्थान नहीं। उसके लिए मृत्यु दण्ड से कम कोई दण्ड नहीं होगा। प्रदेश का विधान जननायक से लेकर एक सामान्य व्यक्ति तक पर समान रूप में लागू पोगा। नई योजना के अनुसार स० अजयसिंह जी को यहाँ की पंचायतों के संगठन का कार्य सौंपा जाता है और कविवर शशांक को यहां की उपज तथा उसके वितरण का भार सौंपा जाता है। प्रति पांच वर्षों के पश्चात् इन पदों का चुनाव हुआ करेगा। जिसे भी आप लोग योग्य समझें, बिना किसी दल का विचार किए उसे चुन सकते हैं। आपकी वाणी पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता किन्तु कोई भी ऐसा कार्य जिससे देश में अराजकता व अशान्ति प्रसारित हो, न किया जा सकेगा। किसी भी धारा का विरोध सुनने के लिए हम किसी भी समय तत्पर रहेंगे। कोई भी आन्दोलन वैधानिक न माना जाएगा, जिसके लिए प्रदेश के प्रधान (जननायक व जननेत्री) की अनुमति प्राप्त न होगी।"

एक व्यक्ति ने दीन स्वर में प्रश्न किया— "हम शरणार्थियों के लिए आपने क्या सोचा है? हमारी स्त्रियों और बच्चों को तड़पा तड़पा कर मार डाला गया है। हमारे घर जला दिए गये हैं।"

अंजना ने अनुभूतिपूर्ण स्वर में कहा— "तुम्हारी दिवंगता स्त्रियों और बच्चों को तो हम नहीं लौटा सकेंगे। हमें आप लोगों से सहानुभुति है। आपके घर जल गए, इसकी आप क्यों चिन्ता करते हैं? मुक्ति-प्रदेश में किसी का कुछ भी व्यक्तिगत नहीं है। यहां की धरती पर आपका भी अधिकार है। वह आपका भी पेट भरेगी। यहां के सब मकान आपके भी हैं। यहां के बच्चों को ही अपने बच्चे समझो। आप अपने अपराधियों को कल प्रातः शूली पर लटके तो देख लेंगे। निःसंदेह

पूज्य बापू ने तो प्रतिकार की भावना का घोर विरोध किया था फिर भी हम युग की मांग देख कर प्रतिकार व प्रतिहिंसा की इस घृणित भावना को पनपने की अनुमति दे रहे हैं। आपको भी अब सन्तोष करना होगा।"

इतने में एक घुड़सवार ने आकर अंजना के हाथ में एक पत्र पकड़ाया। अंजना ने पत्र पढ़कर व्यस्त भाव में कहा—

"राष्ट्रमाता का स्वास्थ्य प्रति पल गिर रहा है। यह शीला जी का पत्र है। हमें यह कार्य-क्रम समाप्त करते ही शीघ्र वहां पहुँचना होगा। मुक्ति-प्रदेश ज़िन्दाबाद !"

जनता ने मिश्रित स्वर में जयघोष किया—"जननेत्री ज़िन्दाबाद! मुक्ति-प्रदेश अमर रहे !!"

और अंजना, अजयसिंह, शशांक एवं प्रवेश आदि अधिकारियों के पीछे-पीछे जनता भी राष्ट्रमाता को देखने चल दी।

× × ×

अंजना के नेतृत्व में सभी मां को देखने द्वार पर पहुँचे और भीतर प्रविष्ट होने लगे तो रमा ने सभी को रुक जाने का संकेत करते हुए कहा—"इस समय राष्ट्रमाता विश्राम कर रही हैं। जननेत्री अंजना जी, कविवर, सरदार अजयसिंह जी तथा प्रवेश जी के अतिरिक्त किसी को भी भीतर प्रविष्ट होने की आज्ञा नहीं है। आशा है सायङ्काल तक वह आप सब लोगों को दर्शन देने के योग्य हो सकेंगी। तब तक के लिए मैं शेष सभी उपस्थित व्यक्तियों से क्षमा चाहती हूं। आप लोग अपने अपने घरों को पधारिए।"

शशांक ने जिज्ञासा की—"कहां पर हैं ?"

रमा ने क्षीण स्वर में उत्तर दिया—"अपने कमरे में। आप लोग वहां बैठना चाहें तो बैठ सकते हैं।"

चारों व्यक्ति जब मां के कमरे में प्रविष्ट हुए तो मां ने नेत्र खोल

दिए और शीला के आश्रय से बैठते हुए कहने लगी--"शीला! बेटी, तुम कुछ क्षण के लिए दूसरे कमरे में चली जाओ। मैं बुला भेजूंगी, तब तक के लिए विश्राम करो। प्रातः से मेरे सिरहाने बैठी हो, थक गई होगी।"

शीला के चले जाने के पश्चात् शशांक और अजयसिंह के साथ उसने वार्तालाप आरम्भ कर दिया। कुछ देर मूक बैठे रहने के पश्चात् अंजना ने प्रवेश को उठाते हुए कहा—"चलिए कुछ देर दूसरे कमरे में बैठा जाए। तब तक यह लोग बातचीत करें।"

मां ने उन्हें रोकते हुए कहा—"बैठो बेटी! क्या थक गईं!"

अंजना ने कहा—"हां, मां! कुछ थकान तो अनुभव कर रही हूं। चलो प्रवेश जी! कुछ आप से भी बातचीत की जाए।"

मां ने कहा—"तुम जाओ बेटी! यह भी आ जाएगा।"

अंजना ने कोई विरोध नहीं किया और चुपचाप कमरे से बाहर हो गई। उसके जाते ही मां ने कहा—"अजयसिंह! वास्तव में तुमने देश को अमूल्य रत्न प्रदान किया है।"

फिर शशांक और प्रवेश की ओर देखकर बोली—"शशांक! मेरे प्रस्ताव पर कब विचार करोगे? बेटा, जीवन के अन्तिम श्वास पूर्ण कर रही हूं। अब अधिक शक्ति नहीं शरीर में। मुक्ति-प्रदेश को अंजना जैसी कर्मठ जननेत्री और तुम जैसे कार्य-कर्त्ताओं के मिल जाने से मेरी समस्त चिन्ता जाती रही। बस, एक ही लालसा रह गई मेरे हृदय में, तुम लोगों का विवाह भी हो जाए।"

शशांक ने दो क्षण विचार करके उत्तर दिया—"कुछ समय की और अवधि नहीं प्राप्त हो सकेगी?"

मां ने कड़े होकर कहा—"नहीं, तुम्हें आज ही किसी समय सन्ध्या-काल से पूर्व ही मुझे अपना निर्णय बताना होगा।"

इस पर दोनों उठ खड़े हुए। शशांक ने विनीत स्वर में कहा—

"तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य मां ! क्यों प्रवेश ! क्या विचार है ?"

प्रवेश ने लज्जा से सिर झुकाते हुए कहा—

"जो कह दिया, सो ठीक है। तुम ही जानो भैया, इन बातों को ! अच्छा मां, मैं चल दिया।"

शशांक ने कहा—"चलो मैं भी चलता हूं। मुझे यहां के पंच को मिलना है। देखो एक घण्टे तक लौट आऊंगा। आते ही तुम्हारा निर्णय सुनना चाहूंगा।"

प्रवेश ने चुटकी काटते हुए कहा—

"अच्छा चलो, सुन लेना भैया !"

दोनों मित्रों के चले जाने के पश्चात् मां ने अजयसिंह को उपालम्भ के स्वर में कहा—

"क्यों अजय ! बिटिया भी तो चौबीसवां पार कर चुकी है। इसके लिए भी तो कुछ सोचो।"

अजयसिंह ने कहा—"तुम जो हो, यह सब सोचने को। मुझे क्या पता, जो उचित समझो, वह कर डालो; अंजना तो आपकी आज्ञा का उल्लंघन न करेगी।"

मां ने पुलकित स्वर में कहा—"शशांक कैसा रहेगा उसके लिए ?"

अजयसिंह की आंखें चमक उठीं। गद्गद् स्वर में बोला—"मां, मैं तो प्रवेश और शशांक दोनों को एक ही दृष्टि से देखता हूं। यदि शशांक धरती का चन्द्रमा तो प्रवेश धरती का सूर्य।"

मां ने उसकी ओर पुनः अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा और कहा—"पहले दोनों का निर्णय सुन लूं। वैसे मेरी दृष्टि में शशांक अंजना के लिए अधिक योग्य है।"

अजयसिंह अकस्मात् कोई विचार मस्तिष्क में आ जाने से चौंक कर कहने लगा—"अच्छा मां ! मुझे भी सन्ध्या तक अवकाश दो। मैं

रमा जी को यहां भेज देता हूं।"

अभिवादन करते हुए जब वह चलने लगे, तो मां ने कहा—"शशांक और प्रवेश के आने तक पहुँच जाना बेटा!"

अजयसिंह ने रुकते हुए कहा—"जो आज्ञा मां"

और अगले ही क्षण वह द्वार से बाहर हो गया।

× × ×

प्रवेश जब अंजना के कमरे में पहुँचा तो अंजना ने कौतुहल भरे स्वर में चुटकी लेते हुए कहा—"क्यों महाशय! क्या कहा मां ने? बड़ी सोच में पड़े दिखते हो, क्या कोई नई आज्ञा हुई है?"

प्रवेश ने चौकी पर बैठते हुए चिन्तित स्वर में कहा—"हां, आज सायंकाल से पूर्व ही मुझ से और शशांक से निर्णय भी मांगा है।"

अंजना ने कहा—"ऐसा कौन सा मुकदमा आन पड़ा?"

प्रवेश ने कहा—"हम दोनों के विवाह का। उनकी आज्ञा है कि हम दोनों यथाशीघ्र इस विषय पर अपना निर्णय उन्हें सुनाएं।"

अंजना ने प्रश्न किया—"तो कविवर महाशय से मन्त्रणा नहीं की?"

प्रवेश ने उत्तर दिया—"नहीं।"

अंजना ने हंसी दबाते हुए कहा—"ऊं—हूं...मुझे आप से वास्तव में सहानुभूति है। पर, इसमें हानि ही क्या है? कर डालो ब्याह। हमें भी एक साथिन और मिलेगी। क्यों क्या विचार है?"

प्रवेश ने जैसे समस्त बल एकत्रित करके कहा—"अंजना! क्या तुमने कभी किसी से प्यार नहीं किया है?"

इससे अंजना एकाएक चौंक उठी, पर तुरन्त संभल कर कहा—"हां, क्यों नहीं। मैं असीम से प्यार करती हूं।"

प्रवेश ने जिज्ञासा की—"क्या यह भी कोई मनुष्य है?"

अंजना ने हंसते हुए कहा—"तो क्या कोई शेर या भालू मेरा

प्रिय होगा ? मेरा प्रिय तो बहुत सून्दर है।"

प्रवेश के मुख से अनायास निकल पड़ा—"मुझसे भी अधिक ?"

और साथ ही वह लज्जा से रोमाञ्चित हो उठा।

अंजना ने एक क्षण उसकी ओर देखकर कहा—"असुन्दर तो आपको भी नहीं कहा जा सकता। पर, वह इतना ऊंचा है कि कोई भी अन्य मनुष्य उस तक नहीं पहुँच सकता। दूसरे, मैंने तो अपने आप को बहुत देर हो चुकी, उसके चरणों में समर्पित कर दिया है।"

प्रवेश ने कातर स्वर में कहा—"तब वह निश्चय ही कोई आकाश का देवता होगा।"

यह कहते ही उसने मुंह फेर कर निःश्वास छोड़ा। और मूक बठा रहा।

अंजना ने प्रश्न किया—"हां, तो क्या निर्णय किया ?"

प्रवेश ने उठते हुए कहा—"इसीलिए उठकर जा रहा हूं।"

अंजना ने रोकते हुए कहा—"कहां जायेंगे इस समय ? थोड़ी देर यहीं विश्राम कर लीजिए। आप भी तो बहुत थक गए होंगे। फिर कल प्रातःकाल और भी व्यस्त हो जायेंगे। मुझसे पूछें तो मैं इतनी थक चुकी हूं कि उठकर बैठना भी कठिन है।"

प्रवेश ने कहा—"मंजिल पर पहुँच कर सभी को थकान अनुभव हुआ करती है। मेरी मंजिल अभी न जाने कहां है ?"

अंजना ने चुटकी ली—"क्यों, आपकी मंज़िल तो कविवर हुआ करते हैं। आपने ही तो कहा था एक बार, कि शशांक मेरी मंज़िल है। अर्थात् मैं प्रत्येक उलझन को सुलझा लेता हूं उसके पास जाकर।"

प्रवेश ने अपनी अनुभूतियों को कुचलते हुए कहा—"परन्तु मेरी वह मंजिल बहुत समय पूर्व ही किसी ने छीन ली है।"

अंजना ने कहा—"कौन है निर्मम लुटेरा ?"

प्रवेश ने द्वार की ओर बढ़कर चीखते हुए कहा—"यह मत पूछो

अंजना ! यह मत पूछो !"

अंजना ने संयत स्वर में कहा—"यह आपकी भूल है। जब तक आप उस मंज़िल के प्रवेश द्वार हैं, तब तक आप उसे अपनी मंज़िल ही समझिएगा। और यह भी स्मरण रखें कि मंज़िल सदा ही उदार, विशाल एवं सुखद हुआ करती है।"

इन वाक्यों ने जैसे प्रवेश के बढ़ते हुए पांव को वहीं का वहीं जकड़ दिया। उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से अंजना की ओर देखा और कहा—"देवी ! तुम और तुम्हारे प्रिय वास्तव में महान् हो; विशाल और विस्तृत हो। मुझे जाने दो देवी ! मैं अधम हूं।"

अंजना ने कहा—"परन्तु आपको सन्ध्या से पूर्व मां के सम्मुख उपस्थित होना होगा। इसके लिए आपको उसकी शपथ जिससे आपने कभी प्यार किया हो।"

प्रवेश ने बाहर जाते हुए कहा—"ऐसा ही होगा। तुमने मुझे जगा दिया देवी ! मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूं।"

उसके चले जाने पर अंजना के मुख से आकस्मात् निकल गया—"मन को अपने वश में करना भी कितना दुष्कर है। यही अन्तर है इसमें और शशांक में। वह किसी भी अवस्था में कर्त्तव्य-च्युत व स्वार्थी नहीं होता।"

इतने में शशांक ने पीछे से प्रविष्ट होते हुए पूछा—"कौन क्या नहीं होता ? क्या सोच रही हो ?"

अंजना ने शशाँक को अपने सम्मुख खड़ा देखकर तुरन्त सम्हलते हुए कहा—"कोई विशेष बात नहीं। अभी-प्रवेश जी आए थे। क्या आपको नहीं मिले ?"

शशाँक ने कहा—"नहीं तो, क्यों, क्या कोई........?"

अंजना ने कहा—"कहा न, कि ऐसी कोई बात नहीं। कह रहे थे कि माँ ने हम दोनों को विवाह करने की आज्ञा दी है। और शाम का

ही निर्णय भी मां को सुनाना है।"

शशाँक ने प्रश्न किया—"तो तुमने क्या कहा ?"

अंजना ने उत्तर दिया—"मैंने कहा, तो कर डालो ब्याह, इसमें बुरा ही क्या है ? मुझे भी एक साथिन मिल जाएगी।"

शशाँक ने पूछा—"तो फिर उसने क्या कहा ?"

अंजना ने बैठते हुए उत्तर दिया—"मुझसे प्रश्न किया, कि अंजना ! तुमने कभी किसी से प्यार किया है ? मैंने कहा, 'हां; मेरा प्रिय अति सुन्दर है।' फिर उसने पूछा, 'क्या मैं सुन्दर नहीं ?' तो मैंने कहा, 'आपको असुन्दर तो नहीं कहा जा सकता पर, मेरे प्रिय अति विशाल हैं।' इस पर न जाने क्या हो गया उनको, दुःखी से होकर चल दिए।"

शशांक ने निःश्वास त्यागकर कहा—"उसे मैं ही समझ सकता हूं। पर, तुमने रोका क्यों नहीं ?"

अंजना ने सान्त्वना देते हुए कहा—"वह सायंकाल से पूर्व मां के वहां पहुँचने का वचन दे गए हैं।"

शशांक ने एकाएक प्रश्न किया—"अंजना ! क्या मुझ पर विश्वास कर सकती हो ?"

अंजना ने उसके चरण छूकर कहा—"यह क्या पूछते हो कवि ? मैं तो कभी से तुम्हारे समक्ष आत्म-समर्पण कर चुकी हूं। पर, तुम इतने विस्तृत हो कि तुम्हारा ओर-छोर पाना मेरे लिए कठिन हो रहा है।"

शशांक ने कहा—"तो मैं कुछ मांग भी सकता हूं ?"

अंजना ने उत्तर दिया—"मेरा सर्वस्व तुम्हारा है। मेरे मन, वचन और काया पर तुम्हारा पूर्ण अधिकार है। तुम मेरे साथ जो भी व्यवहार करोगे, मैं उसी में सन्तुष्ट रहूंगी।"

शशांक ने दृढ़ स्वर में कहा—"तो तैयार हो जाओ, मैं मांगता हूं।"

अंजना ने निःशंक भाव से कहा—"मांगो।"

शशांक ने उसी प्रकार दृढ़ स्वर में कहा—"मैं तुम्हें प्रवेश के लिए मांगता हूं।"

और उसने हाथ आगे फैला दिए। अंजना को एकाएक मूर्छा आ गई। शशांक ने उसके मुख पर जल छिड़का। स्वस्थ होकर उसने शशांक के चरणों पर गाल टेक दिए और अश्रुजल से पाद् प्रक्षालन करते हुए बोली—"कवि! माना कि तुम असीस हो। तुम्हारी शक्ति अपरिमित है। पर, मैं तो तुच्छ मानवी हूं।"

शशांक ने कहा—"अंजना! मानवी कभी तुच्छ नहीं होती। मानवी तो भयंकर विस्फोटक शक्ति है; इसके अतिरिक्त जननी शक्ति भी। पर, तुम्हारे अश्रुओं से क्या तात्पर्य लगाऊं? क्या मांग पूर्ण होगी?"

अंजना ने संयत होने का प्रयत्न करते हुए कहा—"कवि! मैं तैयार हूं।"

शशांक ने कहा—"पर, मैं अश्रु-सिक्त भिक्षा न लूंगा।"

अंजना ने नेत्र पोंछ डाले और जी कड़ा करके कहा—'लो कवि! तुम्हारी भेंट तैयार है। जहां चाहो दे डालो।"

शशांक ने कहा—"तो ठहरो, मैं अभी लौट कर आता हूं।"

यह कहकर वह त्वरित गति से चला गया। द्वार से लगभग पचास पग भी वह न गया होगा कि उसे प्रवेश दिखाई दिया। उसने उसके पास जाकर कहा—"प्रवेश! तुम्हें मां के पास चलना होगा।"

प्रवेश ने प्रश्न किया—"कब?"

शशांक ने कहा—"अभी; देखो, अजयसिंह जी को भी साथ ले लेना। मैं भी वहीं पहुँचता हूं।"

प्रवेश को किसी प्रकार का प्रश्न करने का साहस न हुआ। उसने चुपचाप स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

× × ×

लगभग बीस मिनट पश्चात् शशांक अंजना को अपने साथ लेकर मां के सम्मुख जा उपस्थित हुआ। प्रवेश और अजयसिंह भी पहले से ही वहां पर बैठे थे। मां ने तुरन्त प्रश्न किया—"क्यों शशांक ! पहले तुम ही बताओ, क्या निर्णय करके आए हो।"

शशांक ने कहा—"मां, मैंने निर्णय कर लिया है। तुम और अजयसिंह जी आर्शीवाद देने को तैयार हो जाओ।"

अजयसिंह ने चकित होते हुए कहा—"भई, कुछ समझाओ तो जानें।"

शशांक ने कहा—"अभी लीजिए, इधर आओ प्रवेश !"

प्रवेश उसके पास आकर खड़ा हो गया।

शशांक ने कहा—"लो मां ! यह रहा अपना प्रवेश और यह रही तुम्हारी बहू।"

अजयसिंह और मां के मुख से आश्चर्यातिरेक से एक साथ निकल पड़ा—"शशांक !!"

शशांक ने नाट्य करते हुए कहा—"हां मां ! यही मेरा निर्णय है।"

प्रवेश ने शशांक की ओर देखा, श्रद्धा से नेत्र झुक गए। शशांक और अंजना के अतिरक्त सभी नेत्रों में अश्रु थे। अंजना ने झुक कर मां को और पिता को प्रणाम किया। पिता ने उसके सिर पर सस्नेह हाथ फेरते हुए रुद्ध कण्ठ से कहा—"बेटी ! तुम्हारी प्रसवदात्री ने मृत्यु-शैया पर अन्तिम श्वास विर्सजित करते हुए कहा था कि मेरी अंजना किसी नर-श्रेष्ठ का वरदान बनेगी। आज उसकी भविष्य वाणी सत्य हो गई।'

प्रवेश ने कहा—"पर मैं तो स्वार्थी व अधम पुरुष हूं। शशांक ! तूने अपने और अंजना के प्रति अन्याय......।"

शशांक ने बात काटते हुए कहा—"इसे अन्याय मत कहो प्रवेश,

तुम तो मेरे जीवन के प्रवेश द्वार हो। मैंने जो किया है, इसमें भी मेरा स्वार्थ ही तो है। जब भी इस द्वार में प्रवेश करूंगा, तभी देवी का प्रसाद पाया करूंगा।"

प्रवेश ने भावातिरेक में कहा—"फिर भी......।"

और वह शशांक से लिपट गया। शशांक ने उससे जी भर कर प्यार किया और मां के निकट जाकर कहा—"मां! तुम क्यों चुप हो अपने बच्चों को अशीर्वाद दो न मां!"

मां ने विस्फारित नेत्रों को उस पर गाड़ते हुए कहा—"शशांक! तुम सचमुच अतिमानव हो। तुमने अपनी कर्मठता को एक निराला ही रूप दे दिया है।"

एकाएक उसका श्वास उखड़ गया। उसने फिर भी अपना कथन जारी रखते हुए कहा—"बेटा! तुमने अपने लिए कभी कुछ नहीं सोचा।"

शशांक ने कहा—"मेरे लिए तुम जो रात दिन सोचती हो मां!"

मां ने बड़ी कठिनता से अपने आपको संयत करते हुए कहा—"पर, मैं तो अब जा रही ....।"

वाक्य पूर्ण करने से पूर्व ही उसका कण्ठ रुक गया। वह एक शब्द भी और न बोल सकी। चुपचाप अश्रु-प्लावित नेत्रों से शशांक को देखती रही। शशांक ने आगे बढ़ कर मां के चरणों को अपने दोनों हाथों में समेट कर उस पर गाल टेक दिए। अजयसिंह ने अकस्मात् चीख़ते हुए कहा—"शशांक! मां हमें छोड़ गई।"

सभी एक साथ चीत्कार कर उठे। पर शशांक ने उसी प्रकार मां के चरणों को अपने कलेजे से चिपकाये हुए आनन्द विह्वल स्वर में कहा—"नहीं, अजयसिंह जी! मां हमें कभी नहीं छोड़ सकती। वह तो अमर है।"

इसके साथ ही उसने मां के चरण चूम लिए।